बन्दों के हक़

लेखक

बिन्तुल इस्लाम

अनुवादक

एस० ख़ालिद निज़ामी

विषय-सूची

बन्दों के हक़ की अहमियत 9

वैवाहिक जीवन की अहमियत और फ़ायदे 13

1. इज़्ज़त व आबरू की हिफ़ाज़त 14
2. इनसानी नस्ल की हिफ़ाज़त और तालीम व तरबियत 15
3. मर्द और औरत की सलाहियतों का विकास 17
4. दीन फैलाना 19

दूसरे फ़ायदे 19

मियाँ-बीवी के आपसी रिश्ते की गहराई 21

शौहर का हक़ 23

1. इताअत, फ़रमाँबरदारी और ख़ुश रखना 23
2. शुक्रगुज़ारी 29
3. हिफ़ाज़त 31
5. तलाक़ का हक़ 32
6. औरत का बनाव-श्रृंगार करना 34

दूसरे हक़ 36

बीवी के हक़ 38

1. कफ़ालत (भरण-पोषण) 38
2. महर 39
3. अच्छा बर्ताव 40
4. इनसाफ़ 45
5. ख़ुलअ का हक़ 46
6. जायदाद का हक़ 48

माँ-बाप के हक़ 49
1. अच्छा बरताव 49
2. माँ के बारे में ख़ास हिदायतें 53
3. बाप के बारे में हिदायतें 57
4. माँ-बाप के लिए दुआ करना 58
5. माँ-बाप की बद्दुआ से बचना 59
6. माँ-बाप के रिश्तेदारों से अच्छा बरताव 59
7. विरासत का हक़ 60
8. एक अफ़सोसनाक कशमकश 60

औलाद के हक़ 64
1. परवरिश 64
2. दूध पिलाना और सरपरस्ती करना 67
3. इनसाफ़ और बराबरी 68
4. तालीम व तरबियत 70
5. प्यार और मुहब्बत 78
6. दुआ 80
7. विरासत का हक़ 82
8. दूसरे हक़ 83
9. मौजूदा ज़माने में दीनी तालीम व तरबियत की ज़रूरत 84
10. बेटी की अहमियत 85

रिश्तेदारों के हक़ 87
1. रिश्तों को जोड़ने और अच्छे बरताव की ताकीद 88
2. रिश्तों को जोड़ने और अच्छे बरताव की फ़ज़ीलत 90
3. रिश्तेदारों से ताल्लुक़ तोड़ने की मनाही 94
4. रिश्तेदारी कैसे बाक़ी रखी जाए 95

पड़ोसियों के हक़ 97

1. पड़ोसियों के साथ अच्छा बरताव 98
2. पड़ोसियों की क़िस्में 102
3. पड़ोसी को तकलीफ़ पहुँचाने की निन्दा 104

गुलाम और ख़िदमत करनेवालों के हक़ 106

1. ताक़त के मुताबिक़ काम लेना 106
2. इनसाफ़ करना 107
3. माफ़ करना 110
4. अच्छा बरताव 111
5. सख़्ती करने की मनाही 112
6. गुलाम आज़ाद करने की फ़ज़ीलत 113
7. गुलामों का दरजा 115

यतीम और बेवा के हक़ 118

1. यतीम की सरपरस्ती और उससे अच्छे बरताव की ताकीद और फ़ज़ीलत 119
2. यतीम के माल की हिफ़ाज़त 120
3. यतीम से बुरा सुलूक करने की मनाही 125
4. बेवा (विधवा) के हक़ 128
   - I. दूसरा निकाह 130
   - II. रिश्ता चुनने का इख़्तियार 131
   - III. साज-सज्जा और शृंगार का हक़ 132
   - IV. बेवा से हमदर्दी और अच्छे बरताव की फ़ज़ीलत 132

मुहताज, ग़रीब, मजबूर और परेशानहाल के हक़ 134

हाकिम और जनता के आपसी हक़ 141

1. जनता के हक़ 142
2. हुक्मराँ (शासक) के हक़ 146

औरत के हक़ **150**
1. पनाह देना 156
2. बाहर निकलना 156
3. मसजिद में जाना 156
4. नेकी और भलाई की मजलिसों में शरीक होना 157
5. जिहाद में शामिल होना 158
6. औरतों को तालीम देना 159
7. औरत का कमाना 160

इस्लामी बिरादरी के हक़ **162**
1. मुहब्बत, ख़ैरख़वाही और एहतिराम 162
2. हमदर्दी और आपसी मदद 165
3. आपसी सुलह व मेलजोल 167
4. एक-दूसरे की इस्लाह करना 169
5. क़ाफ़िर कहने और बनाने की मनाही 170
6. एक-दूसरे को तकलीफ़ पहुँचाने से परहेज़ 171

कुछ दूसरे हक़ **172**
मेहमान और मेज़बान के हक़ 172
बीमार के हक़ 174
क़र्ज़ लेनेवाले और क़र्ज़ देनेवाले के हक़ 175
मज़दूर के हक़ 178
ज़िम्मी के हक़ 178
इनसानी बिरादरी के हक़ 179

दो शब्द

इस्लाम हमारे ख़ालिक़ व मालिक अल्लाह का वह दीन है जो हमारी पूरी ज़िन्दगी की रहनुमाई के लिए भेजा गया है। एक तरफ़ इस्लाम ने हमारी रहनुमाई इस पहलू से की है कि हम अपने अल्लाह की बन्दगी व इबादत कैसे करें वहीं उसके बन्दों के साथ हमारा व्यवहार कैसा हो इस बारे में भी हमारी रहनुमाई की गई है। एक सच्चा मुसलमान बनकर रहने के लिए यह ज़रूरी है कि अल्लाह के हक़ अदा करने के साथ-साथ बन्दों के हक़ भी अदा किए जाएँ।

कुरआन और हदीस से मालूम होता है कि बन्दों के हक़ अदा करने के सिलसिले में कोताही अल्लाह की नज़र में नाक़ाबिले माफ़ी है। और हक़ीक़त यह है कि अल्लाह के बन्दों के हक़ अल्लाह की हिदायत के मुताबिक़ अदा करना हमें अल्लाह का प्यारा बन्दा बनाने का बेहतरीन ज़रिया है।

इस किताब में क़ुरआन मजीद, नबी *(सल्ल॰)* की हदीसों, सहाबा किराम (रज़ि॰), ताबिईन, तब-ए-ताबिईन और बुज़ुर्गों (रह॰) की कथनी और करनी की रौशनी में उन हक़ों और अधिकारों को तफ़सील से बयान करने की कोशिश की गई है जो एक मुसलमान को अपने कुम्बे, अपने समाज, अपने देश और पूरे आलम के सिलसिले में अदा करने होते हैं, और जिन्हें अदा किए बिना वह एक सच्चा मुसलमान कहलाने का हक़दार नहीं हो सकता। और न ही अल्लाह की ख़ुशनूदी उसे हासिल हो सकती है।

विषय का ख़याल रखते हुए इस किताब में ज़्यादातर हक़ों और अधिकारों ही की बात कही गई है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है

कि फ़र्ज़ को नज़रअन्दाज़ किया गया है । सच तो यह है कि हक़ और ज़िम्मेदारियाँ बयान करने का मतलब ही यही होता है कि फ़र्ज़ और ज़िम्मेदारियाँ बयान की जा रही हैं । मिसाल के तौर पर जब हम कहते हैं कि बच्चे का यह हक़ है कि उसको पाला-पोसा जाए और उसको अच्छी तरबियत दी जाए तो इसका मतलब यही होता है कि यह माँ-बाप का फ़र्ज़ है कि बच्चे का हक़ अदा करें । इसलिए इस किताब में अलग-अलग तबक़े के हक़ और अधिकार बयान किए गए हैं ताकि इससे फ़र्ज़ और ज़िम्मेदारियाँ भी साथ ही साथ बयान होती रहें ।

अल्लाह तआला से दुआ है कि जिस मक़सद के लिए यह किताब लिखी जा रही है, अपनी रहमत से उसे आसान और पूरा करे । आमीन !!!

—प्रकाशक

'बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम'

(शुरू अल्लाह के नाम से जो रहमान और रहीम है।)

बन्दों के हक़ की अहमियत

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "क्या तुम जानते हो कि मुफ़लिस (निर्धन) कौन है?" नबी (सल्ल॰) के सहाबा (रज़ि॰) ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल ! हमारे यहाँ तो मुफ़लिस वह होता है जिसके पास न रुपया-पैसा हो और न कोई सामान ।" अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि मेरी उम्मत में मुफ़लिस (निर्धन) वह है जो क़ियामत के दिन नमाज़, रोज़ा और ज़कात लेकर आएगा, मगर इस हालत में आएगा कि किसी को गाली दी होगी, किसी पर भूठा इलज़ाम लगाया होगा, किसी का (नाहक़) माल खाया होगा, किसी का ख़ून बहाया होगा और किसी को मारा होगा । फिर वह बैठेगा और उसकी कुछ नेकियाँ, उसके ज़ुल्म के बदले के तौर पर, एक (मज़लूम) ले लेगा और कुछ दूसरा (मज़लूम) ले लेगा । फिर अगर उसकी नेकियाँ उसकी ख़ताओं का बदला अदा करने से पहले ही ख़त्म हो गईं, तो फिर उसके मज़लूमों (जिनका हक़ मारा गया है) की ख़ताएँ ले ली जाएँगी और उस (ज़ालिम) पर डाल दी जाएँगी । फिर उस (ज़ालिम) को जहन्नम में डाल दिया जाएगा ।" (तिरमिज़ी)

यह कौन बदनसीब होगा जिसने नमाज़ें भी पढ़ी होंगी, रोज़े भी रखे होंगे, ज़कात भी दी होगी, यानी अल्लाह तआला के ये तीनों अहम हक़ पूरे किए होंगे, मगर इसके बावजूद जहन्नम में डाल दिया जाएगा !!

खुदा के हक़ को अदा करते रहने के बावजूद वह जहन्नम में क्यों डाल दिया जाएगा—?

वह इसलिए जहन्नम में डाला जाएगा, क्योंकि उसने अल्लाह के हक़ तो अदा किए होंगे, मगर अल्लाह के बंदों के हक़ नहीं अदा किए होंगे। उसके इनसानी भाइयों का उसपर यह हक़ था कि वह बेवजह उन्हें ज़ुल्म व सितम का निशाना न बनाता, मगर उसने:

- किसी को गाली दी,
- किसी पर झूठा इलज़ाम लगाया,
- किसी का अनुचित माल खाया,
- किसी का ख़ून बहाया, और
- किसी को मारा।

इसलिए उसने अल्लाह के जो हक़ अदा किए थे, वे उसे अल्लाह की मख़्लूक़ पर ज़ुल्म करने की सज़ा से नहीं बचा सकेंगे, क्योंकि अल्लाह को अपनी पैदा की हुई मख़्लूक़ से बहुत ही मुहब्बत है।

हज़रत उमर बिन ख़त्ताब (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) की ख़िदमत में कुछ क़ैदी लाए गए। क़ैदियों में से एक औरत किसी को तलाश कर रही थी। अचानक क़ैदियों में उसे एक बच्चा मिल गया। उसने तुरंत उस बच्चे को पेट से चिमटा लिया और उसे दूध पिलाने लगी। (इसपर) अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने हमसे पूछा कि क्या तुम्हारे ख़याल में यह औरत अपने बच्चे को आग में फेंक देगी? हमने कहा, "नहीं, ख़ुदा की क़सम, जहाँ तक इसका बस चलेगा वह इसे आग में नहीं फेंकेगी।" (यह सुनकर) अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "जितनी यह औरत अपने बच्चे पर मेहरबान है, अल्लाह इससे ज़्यादा अपने बन्दों पर रहम करनेवाला है।" (मुसलिम)

ऐसा मेहरबान ख़ालिक़ (स्रष्टा) यह कैसे गवारा कर सकता है कि इनसान उसके हक़ को तो अदा करे, लेकिन उसके बन्दों को लापरवाही, ज़ुल्म व सितम और बेइनसाफ़ी का निशाना बनाए रखे। इसलिए जो नमाज़ पढ़नेवाला, रोज़े रखनेवाला, ज़कात देनेवाला अल्लाह के बन्दों को ज़ुल्म का निशाना बनाता रहा होगा; उसे इसी क़ाबिल समझा जाएगा कि उसकी नेकियाँ उसके ज़ुल्म व सितम के फ़िदये के तौर पर उन लोगों में बाँट दी जाएँ जिनके हक़ उसने मारे हैं और अगर उसकी नेकियाँ

कम और उसके ज़ुल्म और ज़्यादतियाँ ज़्यादा हों तो फिर उसके मज़लूमों के किए हुए गुनाह उनसे लेकर उस ज़ालिम के सिर पर डाल दिए जाएँ और उसे आग में झोंक दिया जाए !

मुहम्मद (सल्ल०) की यह हदीस बन्दों के हक़ और अधिकारों की अहमियत (महत्व) को बहुत ही अच्छी तरह वाज़ेह (स्पष्ट) कर देती है । हक़ीक़त यह है कि इनसान जो दुनिया में अल्लाह का नायब (प्रतिनिधि) बनकर आया है, अपनी नियाबत (प्रतिनिधित्व) की ज़िम्मेदारी उस वक़्त तक बख़ूबी अदा नहीं कर सकता, जब तक कि वह इनसानों के साथ अच्छा बरताव न करे । और इनसानों के आपसी सम्बन्धों का अच्छे ढंग से क़ायम रहना इस बात पर निर्भर है कि इनसान एक-दूसरे के हक़ और अधिकार अदा करें ।

इनसानों के हक़ अदा करने के सिलसिले में एक ज़रूरी बात को सामने रखना चाहिए वह यह कि एक इनसान को बहुत सारे लोगों के हक़ अदा करने होते हैं, मगर किसी इनसान के लिए यह मुमकिन नहीं कि वह उन सारे हक़ों को (समान रूप से) अदा कर सके, इसलिए इस्लाम ने हक़ के मामले में तरतीब को भी खोलकर बयान कर दिया है और तरतीब का उसूल यह है कि जो आदमी आपसे ज़्यादा क़रीबी ताल्लुक़ रखता हो, वह इस बात का ज़्यादा हक़दार है कि आप पहले उसका हक़ अदा करें । जैसे — एक शख़्स की माँ बीमार है, पड़ोसी बीमार है और उसका एक हमवतन भी बीमार है । अब उस इनसान का पहला फ़र्ज़ यह है कि वह अपनी माँ की सेवा और देख-भाल करे; क्योंकि माँ का उससे जो रिश्ता है वह पड़ोसी और हमवतन से ज़्यादा क़रीबी है । माँ की सेवा और देख-भाल करने के बाद वह एक और इनसान की सेवा भी कर सकता हो तो वह हमवतन से पहले पड़ोसी की सेवा करे; क्योंकि पड़ोसी का रिश्ता एक आम हमवतन से ज़्यादा क़रीबी है । हाँ, अगर वह तीनों की सेवा कर सकता है तो फिर ज़रूर तीनों ही की सेवा करे, नहीं तो जिसका रिश्ता ज़्यादा क़रीबी हो उसे पहले तरजीह (प्राथमिकता) दे । अब अगर किसी ने अपनी बीमार माँ को छोड़कर पड़ोसी की सेवा शुरू कर दी तो उसने कोई नेकी का काम नहीं किया । क्योंकि उसपर सबसे पहला हक़ उसकी माँ का था, पड़ोसी का नहीं था । माँ की सेवा करने के बाद फिर पड़ोसी की भी सेवा करना तो बहुत सवाब का काम है, मगर ज़्यादा हक़ रखनेवाले को छोड़कर कम हक़ रखनेवाले

की तरफ़ ध्यान देना ऐसा ही है जैसे कोई इनसान पाँच फ़र्ज़ नमाज़ें तो अदा न करे लेकिन बड़ी ही लगन और शौक़ के साथ तहज्जुद पढ़ना शुरू कर दे । ज़ाहिर है उसे कोई भी आदमी 'नमाज़ी' नहीं कहेगा ।

अल्लाह तआला के इस हिकमत भरे उसूल ने कि जो ज़्यादा नज़दीकी ताल्लुक़ रखता है वह ज़्यादा हक़दार है कि उसके हक़ पहले अदा किए जाएँ, इनसानों के हक़ को अदा करने में बड़ी आसानी पैदा कर दी है । क्योंकि हर इनसान जब अपने नज़दीक के माहौल के हक़ की देख-भाल करने की कोशिश में रहेगा, तो फिर पूरे समाज में हर जगह अपने आप ही हक़ की अदायगी होती रहेगी । इसके अलावा यह भी बिलकुल साफ़ और स्पष्ट है कि नज़दीकी ताल्लुक़ रखनेवालों के हक़ को अदा करना ज़्यादा आसान और सहूलत की बात है, इसके मुक़ाबिले में कि दूर के ताल्लुक़ रखनेवालों के हक़ अदा किए जाएँ । इसलिए ज़्यादा आसान काम पहले किया जाए और अगर मुमकिन हो तो मुश्किल काम भी किया जाए । अगले पन्नों में भी अलग-अलग ग्रुपों और वर्गों के हक़ और अधिकार को बयान करते हुए भी इसी उसूल को सामने रखा गया है । पहले उन हक़ों को बयान किया गया है जो एक ख़ानदान के अलग-अलग लोगों को एक-दूसरे के सिलसिले में हासिल होते हैं, फिर समाज के अलग-अलग तबक़ों के आपसी हक़ को बयान किया गया है और आख़िर में यह स्पष्ट किया गया है कि किसी इनसान का सिर्फ़ मुसलमान होना ही उसे इस बात का हक़दार बना देता है कि दूसरे मुसलमान उसके वह हक़ अदा करें जो शरीअत ने उसे दिए हैं ।

एक ख़ानदान में रहनेवाले अलग-अलग लोगों के आपसी हक़ को बयान करने से पहले यह मुनासिब मालूम होता है कि निकाह और वैवाहिक जीवन के बारे में इस्लाम का नज़रिया (दृष्टिकोण) स्पष्ट कर दिया जाए, क्योंकि ख़ानदान की बुनियाद निकाह पर क़ायम होती है ।

वैवाहिक जीवन की अहमियत और फ़ायदे

कुरआन मजीद में कहा गया है —

"तुममे से जो लोग अकेले (बेजोड़ के) हों, उनका निकाह कर दो ।"

(कुरआन, 24:32)

तफ़हीमुल कुरआन, भाग-3 पृ० 397 पर इसी आयत की तशरीह करते हुए बयान हुआ है :

"असल में शब्द 'अयामा' इस्तेमाल हुआ है जिसे आम तौर पर लोग सिर्फ़ बेवा (विधवा) औरतों के मानी में ले लेते हैं, हालाँकि असल में यह ऐसी सभी औरतों और मर्दों के लिए इस्तेमाल होता है जो बेजोड़ (अयुग्म) हों । 'अयामा' 'अय्यिम' का बहुवचन है और 'अय्यिम' हर उस मर्द को कहते हैं जिसकी कोई बीवी न हो और हर उस औरत को कहते हैं जिसका कोई शौहर न हो ।"

इस आयत से साफ़ हो जाता है कि अल्लाह तआला ने मर्दों और औरतों के लिए यही पसंद किया है कि वे निकाह करके वैवाहिक जीवन गुज़ारें और बिला वजह यूँ ही ग़ैर-शादीशुदा नहीं रहना चाहिए । दुनिया में कई ऐसे मज़हब और ज़िन्दगी गुज़ारने के तरीक़े रहे हैं और अब भी हैं, जिन्होंने शादी न करने को नेकी की बात समझा है, मगर ठीक इसके विपरीत इस्लाम ने ग़ैर-शादीशुदा रहने को पसन्द नहीं किया और शादी करने को नेकी की बात बताया है ।

हज़रत आईशा (रज़ि०) बयान करती हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया कि निकाह मेरी सुन्नत है, तो जो कोई मेरी सुन्नत पर न चले तो उससे मेरा ताल्लुक़ नहीं..... । (इब्न माजा)

निकाह के फ़ायदे इसी बात से ज़ाहिर है कि समाज के हर घर की बुनियाद

निकाह पर होती है और 'घर' समाज के लिए रीढ़ की हड्डी की हैसियत रखता है । जिस तरह बूँद-बूँद मिलकर बारिश बन जाती हैं उसी तरह घर और घर मिलकर 'समाज' वुजूद में आता है । इसलिए जो ख़ूबियाँ ज़ाती तौर पर उन घरों में पाई जाएँगी वही उस समाज की नुमायाँ ख़ूबियाँ होंगी, जो उनके घरों की बुनियाद पर क़ायम होंगी । यही वजह है कि इस्लाम ने असली ज़िन्दगी के अलग-अलग पहलुओं पर तफ़सील (विस्तार) से रौशनी डाली है और इनके बारे में ताकीदी हुक्म (आदेश) दिए हैं । मक़सद यह है कि घर के अंदर अनुशासन, अमन और सुकून, आपसी प्यार और मुहब्बत और दीन और ईमान की रूह मौजूद रहे, ताकि उन घरों के मिलने से जो समाज वुजूद में आए उसके अन्दर भी ये ख़ूबियाँ मौजूद हों ।

वैवाहिक जीवन अपनाने पर इस्लाम ने जो ज़ोर दिया है उसको सामने रखते हुए यह बेहतर मालूम होता है कि घर के अन्दर रहनेवाले सभी लोगों के आपसी हुक़ूक़ बयान करने से पहले यह स्पष्ट कर दिया जाए कि वैवाहिक जीवन के वे दीनी और दुनियवी फ़ायदे कौन-से और क्या हैं जिनकी वजह से निकाह को ज़रूरी किया गया है ।

1. इज़्ज़त व आबरू की हिफ़ाज़त

अल्लाह तआला ने जब सबसे पहले इनसान को बनाया था तो औरत को अल्लाह ने मर्द ही से पैदा किया था । इसलिए दोनों जिंसों (जातियों) का एक-दूसरे से अलग होकर ज़िन्दगी गुज़ारना तक़रीबन नामुमकिन है; इसलिए अगर जाइज़ तरीक़े से एक-दूसरे के साथ मिलकर नहीं रहेंगे तो फिर नाजाइज़ तरीक़ा अपनाने पर तुल जाएँगे । दुनिया की कोई व्यवस्था भी इन दोनों को एक-दूसरे से पूरी तरह से अलग रखने में कामयाब नहीं हो सकी । इसलिए जिन मज़हबों और जिन्दग़ी गुज़ारने के तरीक़ों में संन्यास पर ज़ोर दिया गया है, वहाँ इनसान की पाकदामनी को ज़्यादा ही नुक़सान पहुँचा । उनके आश्रमों की अन्दरूनी जिन्दग़ी बड़ी ही घिनावनी रही है और इनसान ने जब भी और जहाँ भी कुदरत के ख़िलाफ़ जंग की, हार हमेशा इनसान ही के हिस्से में आई ।

इस्लाम ने अपने माननेवालों को इस आज़माइश में पड़ने ही नहीं दिया और संन्यास और दुनिया छोड़ने को नापसन्द किया है और निकाह करके पाकदामनी की

ज़िन्दगी गुज़ारने को बहुत बड़ी नेकी बता दिया है, ताकि इनसान उस हालत में घिरने न पाए जो उसके चाल-चलन और इज़्ज़त-आबरू के लिए ख़तरनाक है।

क़ुरआन में निकाह के लिए लफ़्ज़ 'एहसान' इस्तेमाल हुआ है। 'एहसान' के मानी हिफ़ाज़त करने और हिफ़ाज़त की जगह बनाने के हैं। शादीशुदा औरत के लिए लफ़्ज़ 'मुहसना'' इस्तेमाल किया गया है। यानी वह औरत जो क़िले के अन्दर महफ़ूज़ (सुरक्षित) हो। मतलब यह है कि जिस औरत की शादी हो गई वह ख़ुद और उसकी इज़्ज़त-आबरू सब कुछ एक पनाहगाह में सुरक्षित हो गया। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया है —

> "ऐ नौजवानो! तुममें से जो निकाह करने की सकत रख़ता हो वह निकाह कर ले, क्योंकि निकाह आँख को बहुत ज़्यादा नीची रखनेवाला और बदकारी से बहुत ज़्यादा बचानेवाला है ——।" (मुसलिम)

इसी विषय की एक और हदीस है, जो हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत की गई है। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया —

> "तीन आदमी ऐसे हैं जिनकी मदद अल्लाह तआला ज़रूर करेगा। (एक वह) मुजाहिद जो अल्लाह की राह में जिहाद करता है, (दूसरा वह) मुकातब (ग़ुलाम) जो अपने छुटकारे की (उधार) रक़म अदा करने का इरादा रखता है और (तीसरे वह) निकाह करनेवाला जो पाकदामनी का इरादा रखता है।" (तिरमिज़ी)

2. इनसानी नस्ल की हिफ़ाज़त और तालीम व तरबियत

निकाह का दूसरा मक़सद यह है कि इनसानी नस्ल बाक़ी रहे। हर इनसान को अपनी क़ुदरती उम्र पूरी करके दुनिया से चले जाना होता है। इसलिए दुनिया में इनसानियत के बाक़ी रहने के लिए यह ज़रूरी है कि जानेवाले अपनी जगह दूसरे इनसान को छोड़ जाएँ ताकि इनसानियत का सिलसिला चलता रहे। इसपर कुछ तंगनज़र लोग यह कहते हैं कि इनसानी नस्ल तो शादी के बंधनों के बिना भी चल सकती है, सिर्फ़ इस मक़सद को हासिल करने के लिए निकाह को ज़रूरी क्यों ठहराया जाए? इसका जवाब यह है कि मक़सद सिर्फ़ आनेवाली नस्लों को दुनिया में ले आना ही नहीं है बल्कि उनकी हिफ़ाज़त और तालीम व तरबीयत भी है, और

उनकी हिफ़ाज़त और तालीम व तरबीयत के लिए ज़रूरी है कि उन्हें एक सुरक्षित घर दिया जाए जहाँ ऐसे हमदर्द, शुभ-चिंतक और अपनी जान न्योछावर करनेवाले लोग मौजूद हों जो न सिर्फ़ अपने फ़र्ज़ को महसूस करके, बल्कि दिल के जज़्बे और दिली मुहब्बत की वजह से भी उनकी देख-भाल करें ।

इनसान का बच्चा दूसरे प्राणियों के बच्चों की तुलना में बहुत ज़्यादा लाचार और विवश होता है और अपने पैरों पर खड़ा होने में बहुत लम्बा वक़्त लेता है । एक मुर्ग़ी के बच्चें को देखें कि किस तरह अंडे से निकलते ही चलने-फिरने और दाना चुगने लगता है; मगर इनसानी बच्चे की पलने-बढ़ने की रफ़्तार इतनी धीमी होती है कि उसे पालने के लिए कई सालों तक लगातार मेहनत और मशक़्क़त से काम लेना पड़ता है और यह मेहनत और मशक़्क़त माँ की ममता और बाप की मुहब्ब्त ही कर सकती है । इनसानी समाज में और कोई संस्था ऐसी नहीं जिसके रहनेवालों में आपस में इतनी मुहब्बत और लगाव हो जितना इस संस्था के रहनेवालों के बीच क़ुदरती तौर पर बिना किसी परेशानी के पैदा हो जाता है । सिर्फ़ यही एक संस्था है जहाँ सिखानेवाले दिली ख़ाहिश रखते हैं कि सीखनेवाले उनसे आगे बढ़ जाएँ । हक़ीक़त यह है कि ज़िन्दगी गुज़ारने का जो तरीक़ा घरेलू ज़िन्दगी को तबाह करेगा वह इनसानियत के सुकून और सलामती का दुशमन होगा । ज़ो नस्लें घरेलू माहौल में माँ-बाप की मुहब्बत के साये में पलने के बजाए दूसरी संस्थाओं के मशीनी माहौल में पलेंगी उनमें ऊँचे दर्जे की वे ख़ूबियाँ पैदा न हो सकेंगी जो इनसानियत की तरक़्क़ी के लिए ज़रूरी हैं, न फ़य्याज़ी (दानशीलता) और त्याग होगा और न आपसी सहयोग और हमदर्दी और न आपस में मिल-बाँटकर खाने की सलाहियत, न एक-दूसरे के लिए तकलीफ़ें सहने और क़ुरबानी देने का जज़्बा और न ही बेग़रज़ दूसरों के लिए सब कुछ न्योछावर कर देने का शौक़ ।

इमाम ग़ज़ाली (रह०) फ़रमाते हैं कि इस्लाम ने चार बातों के की वजह से औलाद की पैदाइश और उसकी परवरिश पर उभारा है —

(1) अल्लाह की मख़लूक़ (इनसानी नस्ल) बाक़ी रहे ।

(2) अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया कि मैं अपनी उम्मत के बहुतायत की वजह से दूसरी उम्मतों पर फ़ख्र (गर्व) करूँगा ।

(3) औलाद सद्क़-ए-जारिया है (यानी इनसान के मरने के बाद भी उसकी औलाद के भले कामों का सवाब इनसान को मिलता रहता है)।

(4) बचपन में मर जाए तो वह माँ-बाप की बख़शिश के लिए अल्लाह तआला से सिफ़ारिश करेगी।

3. मर्द और औरत की सलाहियतों का विकास

वैवाहिक जीवन का तीसरा अहम फ़ायदा यह है कि यह व्यवस्था मर्दों और औरतों की सलाहियतों का विकास करती है। घरेलू ज़िन्दगी चूँकि ज़िम्मेदारियों की ज़िन्दगी होती है, इसलिए ज़िम्मेदारियों का एहसास बहुत-सी ऐसी सोई हुई ताक़तों और सलाहियतों को जगा देता है कि अगर इन ज़िम्मेदारियों का बोझ न पड़ता तो वे सोई ही रहतीं। इन ज़िम्मेदारियों का बोझ उठाने, सामाजिक हक़ अदा करने और इस सिलसिले में पहुँचनेवाली तकलीफ़ों को बर्दाश्त करने से इनसान के नफ़्स (मन) की तरबियत होती है और रूहानी और अख़लाक़ी सलाहियतों की राह खुलती है।

फिर वैवाहिक जीवन ख़र्च भी बढ़ाता है और जब इन बढ़े हुए ख़र्चों का बोझ पड़ता है तो एक तरफ़ मर्द और ज़्यादा कमाने की कोशिश करते हैं और दूसरी तरफ़ औरतें आमदनी और ख़र्चों में सन्तुलन पैदा करने की कोशिश में सलीक़ा सीख लेती हैं। कभी-कभी देखा गया है कि ऐसे नौजवान जिनके चाल-चलन अच्छे न थे या जो आवारागर्दी के आदी थे, शादी के बाद बिलकुल ठीक हो गए। शादी कोई जादू-मंतर नहीं था कि फूँक मारने से वे ठीक हो गए, बल्कि हक़ीक़त यही है कि ज़िम्मेदारियों के एहसास ने उन्हें ठीक कर दिया।

फिर यह बात भी है कि औलाद हमेशा माँ-बाप की मरज़ी के मुताबिक़ ही नहीं चलती, बचपन में उनकी शोख़ियाँ और शरारतें जो कभी-कभी बेहूदगी की शक्ल भी अपना लेती हैं। जवानी में इनका ग़लत रास्तों पर चलना और आवारगी माँ-बाप के लिए बड़ी ही तकलीफ़देह होती है जिसपर उन्हें धैर्य और सब्र का रवैया अपनाना होता है जिसकी वजह से माँ-बाप के अन्दर सहन-शक्ति, सब्र और धैर्य पैदा होता है क्योंकि बच्चे कितने ही शरारती और उपद्रवी क्यों न हों आम तौर से माँ-बाप उनकी सुधार की कोशिश नहीं छोड़ते और बराबर उन्हें ठीक करने की कोशिश में लगे ही रहते हैं। बच्चे आम तौर पर माँ-बाप को ख़ुदा से नज़दीक करने का ज़रिया भी बन

जाते हैं और वह इस तरह कि उनके दुख, बीमारियाँ और दूसरी तकलीफ़ें माँ-बाप को रंज और ग़म में डालकर उनके दिलों में भी वह नरमी पैदा कर देती हैं जिनसे वे खुदा की तरफ़ झुक जाते हैं।

फिर मियाँ-बीवी भी आम तौर से अलग-अलग ख़ानदानों से होते हैं। हो सकता है कि दोनो ख़ानदानों के तौर-तरीक़ों में बहुत ज़्यादा फ़र्क़ हो। ये अलग-अलग मिज़ाज रखनेवाले इनसान जब मिलकर घर बसाते हैं तो क़दम-क़दम पर आपसी कशमकश का ख़तरा मौजूद होता है। अब अगर इन्हें एक-दूसरे के साथ निबाह करना है तो दोनों को कुछ न कुछ एक-दूसरे के अनुकूल ढलना पड़ेगा और इस तरह वह समझौता वुजूद में आएगा जो निबाह के लिए ज़रूरी है। ज़ाहिर है कि यह सूरतेहाल उन दोनों में यह सलाहियत पैदा कर देगी कि वे एक बड़े मक़सद के लिए अपनी-अपनी निजी रुचियों को एक हद तक दबाते रहें।

इसके अलावा एक आम लड़की के अंदर घर चलाने और घर को बेहतर से बेहतर रूप देने की सलाहियत अकसर मौजूद होती है। माँ-बाप के घर में अकसर इस सलाहियत को पूरी तरह विकसित होने और उभरने का मौक़ा नहीं मिलता, मगर वही लड़की जब एक ऐसे घर की मालकिन बनती है जहाँ उसको अपनी नीति से चलना होता है, तो यह सलाहियत पूरी तरह से सामने आ जाती है।

वैवाहिक जीवन अपना लेने के बाद जब कि मर्द और औरत दोनों ही को कभी-कभी कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है तो औरत इस मामले में कुछ ज़्यादा ही आज़माइशों का शिकार होती है। इसकी वजह यह है कि मर्द तो शादी के बाद भी अपने उसी पुराने माहौल में रहता है जिसका वह पहले से आदी होता है और जहाँ के रहनेवालों के मिज़ाज और तबियतों से वह पहले ही से वाक़िफ़ होता है, मगर औरत शादी के बाद आम तौर से एक बिलकुल अजनबी माहौल में आ जाता है जहाँ उसे सिर्फ़ शौहर ही के नहीं बल्कि उसके अनगिनत रिश्तेदारों के भी मिज़ाज को जानना पड़ता है। अब वह अगर एक नेक और खुदा से डरनेवाली औरत है और रिश्तेदारों के हक़ से वाक़िफ़ है तो उन हक़ों के अदा करने के सिलसिले में उसे जिस तरह अपनी तबियत को दबाना और अपने उन मिज़ाज को ठण्डा रखना पड़ता है, इससे उसके अन्दर पाकी, विशालता और सब्र व संजीदगी

पैदा होती है और उसकी रूह को ताक़त पहुँचती है।

यानी यह कि वैवाहिक जीवन में इनसान एक साल के अन्दर इतना कुछ सीख लेता है और अपना इतना सुधार कर लेता है जो अविवाहित रहने की हालत में शायद वह पूरी उम्र में भी न कर पाता।

4. दीन फैलाना

वैवाहिक जीवन अपना लेने का एक और बहुत अहम फ़ायदा यह है कि इससे इनसान को दीन की ख़िदमत का मौक़ा मिलता है। अल्लाह के कलिमे को माननेवालों की तादाद बढ़ाने के दो तरीक़े है : एक यह कि ग़ैर-मुस्लिमों तक इस्लाम का पैग़ाम पहुँचाया जाए ताकि वे हक़ के माननेवाले बनें और दूसरा यह कि अपनी औलाद को इस्लाम की सही तालीम दी जाए ताकि वह हक़ पर चलनेवाली बने और हक़-परस्तों की तादाद बढ़े। वैवाहिक जीवन इस्लामी समाज के अंदर मुसलमानों की तादाद बढ़ाने का ज़रिया बनकर दीन को ताक़त पहुँचाता है। कलिमा पढ़नेवाला एक शख़्स मरते वक़्त कई और कलिमा पढ़नेवालों को अपनी जगह छोड़ जाता है जो फ़ौरन उसकी कमी पूरी कर देते हैं।

फिर माँ-बाप को चूँकि बच्चों की सिर्फ़ जिस्मानी देखभाल ही नहीं करनी होती, बल्कि उन्हें दीनी, अख़लाक़ी और रूहानी तरबियत भी देनी होती है, इसलिए वे बिना इरादे के भी किसी हद तक दीन को फैलाने का काम करते रहते हैं। बच्चे एक लम्बी मुद्दत के लिए माँ-बाप की मदद के मुहताज रहते हैं। इस मदद की ज़रूरत उन्हें माँ-बाप से चिमटाए रखती है। इसलिए अगर माँ-बाप थोड़ा भी अपनी ज़िम्मेदारी को समझें तो वह इस दौरान में दीन की बहुत-सी बुनियादी बातें बच्चों के दिल और दिमाग़ में उतार सकते हैं। बचपन की छाप इतनी गहरी होती है, इसका अंदाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि आख़िर कोई वजह तो थी कि अल्लाह ने बच्चे की पैदाइश के बाद उसे कुछ खिलाने-पिलाने से भी पहले उसके एक कान में आज़ान और दूसरे में इक़ामत कहने का हुक्म दिया है।

दूसरे फ़ायदे

ऊपर बताए गए फ़ायदे के अलावा भी वैवाहिक जीवन अपने अंदर बहुत ज़्यादा

भलाइयाँ और ख़ूबियाँ रखता है। मिसाल के तौर पर इस निज़ाम (व्यवस्था) की वजह से मर्द और औरत दोनों को एक ऐसा ठिकाना मिल जाता है जहाँ वे सुकून और आराम हासिल करते हैं और बाहर की ज़िन्दगी की बहुत-सी बेचैनियों और उलझनों से दूर रहकर सुकून और आराम से रहते हैं।

इसी व्यवस्था की देन है कि जब बूढ़े माँ-बाप दुनिया छोड़कर जाते हैं तो उन्हें इतमीनान होता है कि उनकी बच्चियों के सिरों पर ऐसे निगराँ मौजूद हैं जो उनकी हिफ़ाज़त करने और उनकी हर तरह की ज़रूरतों को पूरा करने को अपनी असल ज़िम्मेदारी समझते हैं और उनके बेटों के घरों में वह सच्ची हमदर्द हस्तियाँ मौजूद हैं जो दिल और जान से उनके घरबार की हिफ़ाज़त करेंगी, हर तरह से उनके सुख और आराम का ध्यान रखेंगी और ज़िन्दगी के सफ़र में उनकी हमराही का हक़ अदा करेंगी।

फिर अल्लाह तआला ने इस व्यवस्था को रोज़ी को बढ़ाने का साधन भी बनाया है। हमारा ईमान है कि हर इंसान के हिस्से की रोज़ी ख़ुदा की तरफ़ से तय हो चुकी है। कभी-कभी ऐसा होता है कि दो ऐसे इनसान मिलकर ज़िन्दगी का सफ़र इख़्तियार करते हैं जिनमें से किसी एक के हिस्से में अल्लाह तआला ने ज़्यादा रोज़ी लिख दी होती है और फिर उस एक हिस्से की रोज़ी से सारा घर फ़ायदा उठाता है। वैसे भी शादी के बाद काम करनेवाले हाथ बढ़ जाते हैं और जैसे-जैसे वक़्त गुज़रता है बढ़ते चले जाते हैं और जिस औसत से काम करनेवाले हाथों की तादाद बढ़ती है उसी औसत से घर में ख़ुदा की मेहरबानी से रोज़ी में इज़ाफ़ा होता जाता है। समाज में यह मंज़र जगह-जगह देखा जा सकता है कि होनहार औलाद ने ग़रीब घरों की काया पलटकर रख दी है।

ऊपर क़ुरआन मजीद की सूरह नूर की एक आयत बयान की गई है जिसमें अल्लाह तआला ने अविवाहितों और जो बेजोड़े उनके हों के निकाह कर देने का हुक्म दिया है। इसी आयत में आगे फ़रमाया गया है —

> "अगर वे ग़रीब होंगे तो अल्लाह अपनी मेहरबानी से उन्हें मालदार कर देगा। अल्लाह बड़ा ही समाइवाला और जाननेवाला है।"
>
> (क़ुरआन, 24:32)

मियाँ-बीवी के आपसी रिश्ते की गहराई

कुरआन में मर्दों से फ़रमाया गया है –

" वे (औरतें) तुम्हारे लिए लिबास हैं और तुम उनके लिए लिबास हो ।"

(कुरआन, 2:187)

यहाँ मर्द और औरत को एके दूसरे का लिबास इसलिए ठहराया दिया गया है कि –

(1) लिबास और जिस्म दोनों बहुत क़रीब और मिले-जुले होते हैं; इसी तरह शौहर और बीवी को भी एक-दूसरे के क़रीब होना चाहिए और एक-दूसरे पर भरोसा करना चाहिए । जहाँ शौहर और बीवी के बीच मतभेद और दूरी होगी वहाँ एक तरफ़ तो ज़िन्दगी बोझ बन जाएगी और दूसरी तरफ़ उस घर से समाज को जो फ़ायदा पहुँचना होगा वह कम हो जाएगा ।

(2) लिबास जिस्म का राज़दार, परदादार और छिपानेवाला होता है; ऐसे ही शौहर और बीवी को एक-दूसरे का राज़दार, परदादार और परदापोश होना चाहिए । जहाँ शौहर-बीवी का राज़ खोलता है और बीवी शौहर का राज़ खोलती है तो दोनों ही समाज की निगाहों से गिर जाते हैं और साथ ही अपने ख़ुदा की निगाहों से भी ।

(3) लिबास से इनसान को ज़ीनत (शोभा) हासिल होती है; इसी तरह शौहर और बीवी भी एक-दूसरे के लिए ज़ीनत होते हैं । जो काम मिल-जुलकर किया जा रहा हो उसमें दिलकशी पैदा हो जाती है । इसी तरह शौहर-बीवी का भी मिल जुलकर ज़िन्दगी की गाड़ी को चलाना ख़ुद ज़िन्दगी के हुस्न का सबब बनता है। जब ज़िन्दगी का कोई हादसा शौहर-बीवी को एक-दूसरे से अलग कर देता है तो दोनों ही अपनी-अपनी जगह ग़ैर-दिलकश होकर रह जाते हैं ।

(4) लिबास जिस्म की हिफ़ाज़त करने का काम अंजाम देता है और उसे सर्दी- गर्मी के हमलों से बचाता है । इसी तरह शौहर और बीवी भी एक-दूसरे को इनसानों और शैतानों के हमले से बचाते हैं । शौहर-बीवी जहाँ मिल-जुलकर ज़िन्दगी गुज़ार रहे हों वहाँ लोगों को उनके अख़लाक़ और चाल-चलन पर हमला करने की कम ही हिम्मत होती है । इसके मुक़ाबले में अकेले मर्द और अकेली

औरत के लिए लोगों की छींटाकशी, एतिराज़ात और झूठे इलज़ाम का निशाना बन जाना बड़ा आसान होता है।

शौहर-बीवी के एक-दूसरे पर जो हक़ हैं, उनमें पहली चीज़ यही है कि अल्लाह तआला के फ़रमान ने उन्हें एक-दूसरे का लिबास क़रार देकर उनपर जो ज़िम्मेदारियाँ डाली हैं वे उन्हें अच्छी तरह समझें और उन्हें अदा करने की कोशिश करें। क्योंकि अगर —

- शौहर-बीवी एक-दूसरे से खिंचे-खिंचे और अजनबी बनकर रहेंगे,
- एक-दूसरे के राज़ों की हिफ़ाज़त नहीं करेंगे,
- एक दूसरे के लिए ज़ीनत का साधन नहीं बनेंगे, और
- एक-दूसरे को इनसानों और शैतानों के हमलों से बचानें की कोशिश नहीं करेंगे, तो फिर —

वे उन ज़िम्मेदारियों को अदा नहीं कर रहे होंगे जो खुदा ने उनपर डाली हैं और जब वे अपने ऊपर डाली हुई ज़िम्मेदारियों को अदा करने से बचेंगे तो फिर उनकी ज़िन्दगियों में लाज़मी तौर पर तलख़ियाँ और कड़वाहटें घुलकर रहेंगी जिसके वे हक़दार भी होंगे।

वैवाहिक जीवन की अहमियत के सिलसिले में एक और बात दिल में बिठा लेनी चाहिए कि इनसानी रिश्तों में जो रिश्ता सबसे पहले वुजूद में आया, वह शौहर और बीवी ही का रिश्ता था। अल्लाह तआला ने हज़रत आदम (अलै॰) को पैदा किया और फिर उनके साथ के लिए हज़रत हव्वा को पैदा किया। इस तरह जब इनसान एक से दो हुए तो उनके बीच जो रिश्ता अल्लाह तआला ने क़ायम किया वह शौहर-बीवी का रिश्ता था, फिर खुदा ने उन्हें औलाद दी तो माँ-बाप, औलाद और बहन-भाई के रिश्ते वुजूद में आए। फिर जब तीसरी नस्ल दुनियाँ में आई तो दादा-दादी, नाना-नानी, चचा-फूफी, मामूँ-ख़ाला, भतीजा-भतीजी, भांजा-भांजी, पोती, नवासा-नवासी वग़ैरह वुजूद में आ गए। इस तरह इस हक़ीक़त को सामने रखते हुए कि इनसानी रिश्तों में सबसे पहला रिश्ता शौहर-बीवी का था, इस किताब में अलग-अलग रिश्तों के हक़ को बयान करते हुए शुरुआत शौहर-बीवी के हक़ों ही से की गई है। फिर शौहर-बीवी में से भी पहले शौहर के हक़ बयान किए गए हैं, फिर बीवी के और इसके बाद फिर दूसरे लोगों के।

शौहर का हक़

1. इताअत, फ़रमाँबरदारी और ख़ुश रखना

हज़रत उम्मे सलमा (रज़ि॰) बयान करती हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया —

"जिस औरत ने इस हालत में मौत पाई कि उसका शौहर उससे ख़ुश था, वह जन्नत में दाख़िल होगी।" (तिरमिज़ी)

कुछ किताबों में यह हदीस इस तरह बयान हुई है —

"जिस औरत ने इस तरह रात गुज़ारी कि उसका शौहर उससे ख़ुश था, वह जन्नत में जाएगी।"

अब चाहे पहला बयान लिया जाए या दूसरा, दोनों सूरतों में शौहर का यह हक़ बिलकुल वाज़ेह है कि बीवी उसकी ख़ुशी का ध्यान रखे। अब जिसकी ख़ुशी हासिल करनी होगी, ज़रूरी है कि उसकी फ़रमाँबरदारी भी की जाए क्योंकि किसी शख़्स की नाफ़रमानी करके उसकी ख़ुशी हासिल नहीं की जा सकती।

हज़रत अनस (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया —

"औरत जब पाँचों वक़्त की नमाज़ पढ़े और महीने भर के रोज़े रखे और अपनी इज़्ज़त और आबरू की हिफ़ाज़त करे और अपने शौहर की फ़रमाँबरदारी करे तो फिर (उसे हक़ है कि) जन्नत के जिस दरवाज़े से चाहे उसमें दाख़िल हो जाए।" (हुलिया अबू नुऐम)

सवाल पैदा हो सकता है कि औरत को क्यों हुक्म दिया गया है कि वह शौहर की फ़रमाँबरदारी करे?

इसकी मसलिहत और हिकमत को समझने के लिए यह बात दिल और दिमाग़ में बिठाना ज़रूरी है कि जहाँ कहीं भी एक से ज़्यादा लोग मिल-जुलकर रह रहे होंगे वहाँ अनुशासन बनाए रखने और मामलों को सही तरीक़े से चलाने के लिए यह ज़रूरी है कि उनमें से किसी को मुखिया बना दिया जाए । फिर उस मुखिया की ज़िम्मेदारी है कि वह दूसरे लोगों की हिफ़ाज़त करे, उनकी उन ज़रूरतों का भी इन्तिज़ाम करे जिसको वे खुद पूरी न कर सकते हों और इस बात का भी ध्यान रखे कि वे लोग एक-दूसरे के हक़ न छीनने पाएँ और एक-दूसरे पर ज़ुल्म व ज़्यादती न करें । मुख़्तसर यह कि वह मुखिया उस सामूहिक व्यवस्था को अच्छे ढंग से चलाने का ज़िम्मेदार होगा और चूँकि उसके कंधों पर ज़िम्मेदारी का बोझ डाला गया होगा, इसलिए उसे बोझ को उठाने के क़ाबिल बनाने के लिए यह भी ज़रूरी होगा कि उसे कुछ ख़ास क़िस्म के हक़ (अधिकार) भी दिए जाएँ । क्योंकि अगर किसी मुखिया की निगरानी में रहनेवाले लोग उसकी फ़रमाँबरदारी नहीं करेंगे, तो वह मुखिया अपनी ज़िम्मेदारियाँ अच्छे तरीक़े से पूरी नहीं कर सकेगा और नतीजा यह होगा कि उस सामूहिक व्यवस्था में ख़राबी और बिगाड़ पैदा होगा, जिससे उन नाफ़रमानी करनेवालों को भी उतनी ही तकलीफ़ पहुँचेगी जितनी उसे जिसकी नाफ़रमानी की जाएगी ।

अब अगर देखा जाए तो हक़ीक़त में घर भी एक सामाजिक व्यवस्था है । इसमें भी एक से ज़्यादा लोग मिल-जुलकर ज़िन्दगी गुज़ारते हैं । यहाँ भी एक मुखिया (सरदार) की ज़रूरत है जो यहाँ के मामलों को ठीक रखने का ज़िम्मेदार हो और उस ज़िम्मेदार सरदार के लिए भी ज़रूरी है कि उसकी निगरानी में रहनेवाले लोग उसके हुक्म को मानें । मर्द की ख़ास सलाहियतों और उन ज़िम्मेदारियों की वजह से सरदारी का बोझ खुदा ने उसके कंधों पर डाला है, ताकि वह घर की छोटी-सी हुकूमत के मामलों को ठीक रखे और उसमें बिगाड़ न पैदा होने दे । क़ुरआन में फ़रमाया गया है –

> "मर्द औरतों के सरपरस्त और निगराँ हैं इसलिए कि अल्लाह ने उनमें से एक को दूसरे पर फ़ज़ीलत (बड़ाई) दी है, और इसलिए भी कि मर्द अपने माल ख़र्च करते हैं । तो जो नेक औरतें हैं वे फ़रमाँबरदार होती हैं और मर्दों के पीछे अल्लाह की हिफ़ाज़त और निगरानी में उनके हक़ और अधिकारों की हिफ़ाज़त करती हैं ।" (क़ुरआन, 4:34)

अरबी में मर्द के लिए जो लफ़्ज़ 'क़व्वाम' इस्तेमाल हुआ है और उसके बारे में फ़रमाया गया है कि उसे "फ़ज़ीलत" (बड़ाई) दी गई है, तफ़हीमुल कुरआन, जिल्द-1 में इन दोनों लफ़्ज़ों की तशरीह (व्याख्या) करके बताया गया है कि "क़व्वाम" किसे कहा जाता है और "फ़ज़ीलत" से यहाँ क्या मुराद है –

"क़व्वाम या क़ैयिम उस शख़्स को कहते हैं जो किसी शख़्स या इदारे (संस्था) या निज़ाम (व्यवस्था) के मामलों को सही हालत में चलाने, उसकी हिफ़ाज़त व निगरानी करने और उसकी ज़रूरतों को पूरा करने का ज़िम्मेदार हो।"

यहाँ 'फ़ज़ीलत' का मतलब बुज़ुर्गी, बड़ाई और इज़्ज़त नहीं है — जैसा कि एक आम उर्दू-हिन्दी जाननेवाला आदमी इस लफ़्ज़ का मतलब ले सकता है। यहाँ इस लफ़्ज़ का यह मतलब है कि उनमें से एक जाति (मर्द) को अल्लाह ने फ़ितरी तौर पर ऐसी खुसूसियतें और कुव्वतें दीं हैं जो दूसरी जाति (यानी औरत) को नहीं दीं या उससे कम दी हैं। इस बिना पर ख़ानदानी निज़ाम में मर्द ही क़व्वाम (ज़िम्मेदार) होने का हक़दार है और औरत कुदरती तौर से ऐसी बनाई गई है कि उसे ख़ानदानी ज़िन्दगी में मर्द की हिफ़ाज़त और देख-रेख में रहना चाहिए। हदीस में आया है कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया –

"बेहतरीन बीवी वह है कि जब तुम उसे देखो तो तुम्हारा जी खुश हो जाए। जब तुम उसे किसी काम का हुक्म दो तो वह तुम्हारी फ़रमाँबरदारी करे और जब तुम घर में न हो तो वह तुम्हारे पीछे तुम्हारे माल की और अपने नफ़्स की हिफ़ाज़त करे ——।"

कुछ लोगों के सोचने का अंदाज़ ऐसा होता है कि फ़रमाँबरदारी को रुस्वाई के बराबर समझ लेते हैं। उनके ख़याल में जिसे फ़रमाँबरदारी का हुक्म दिया गया है उसे मानो घटिया साबित किया गया है। सोचने का यह अंदाज़ बिलकुल ग़लत है। मुखिया की फ़रमाँबरदारी का हुक्म इसलिए दिया जाता है कि जहाँ लोग मिल-जुलकर ज़िन्दगी गुज़ार रहे हैं वहाँ मामलात ठीक रहें। इसमें रुस्वाई और बेइज़्ज़ती का मतलब कहाँ से पैदा हो गया। घर के तीन अनासिर (तत्वों) में से एक शौहर, दूसरे बीवी और तीसरे बच्चे होते हैं। अब बीवी को तो सिर्फ़ शौहर की

फ़रमाँबरदारी का हुक्म दिया गया है मगर बच्चों के लिए यह लाज़मी ठहराया गया है कि वह बाप और माँ दोनों की फ़रमाँबरदारी करें, तो क्या इससे यह मतलब लिया जाएगा कि बच्चे घर के सबसे गिरे हुए लोग हैं, हालाँकि वही घर की सबसे ज़्यादा क़ीमती दौलत समझे जाते हैं — अगर फ़रमाँबरदारी बच्चों के लिए नीचता और रुस्वाई की वजह नहीं बनती है तो फिर बीवी के लिए शौहर की फ़रमाँबरदारी करने पर नीचता और रुस्वाई का सवाल कहाँ से पैदा हो जाता है? आख़िर वह उसी की फ़रमाँबरदारी तो करती है जो उसकी हिफ़ाज़त करने, उसकी ज़रूरतों को पूरा करने और उसे ज़िन्दगी की हर सख़्ती और नर्मी से बचाने को अपनी असल ज़िम्मेदारी समझता है।

हक़ीक़त यह है कि एक नेक और ख़ुदा को माननेवाली बीवी के लिए शौहर की फ़रमाँबरदारी नीचता और रुस्वाई की नहीं, बल्कि इज़्ज़त और बड़ाई की बात है। शौहर की फ़रमाँबरदारी करके वह अपने घर की छोटी-सी हुकूमत को बेहतर ढंग से चलाने और घर के बच्चों की अच्छी तरबियत में जो मदद पहुँचाती है, वह बड़ी ही क़ीमती होती है और ऐसी नेक औरत के लिए यही ख़ुशख़बरी काफ़ी है कि ख़ुदा और ख़ुदा के रसूल (सल्ल०) ने उसके रवैये को तारीफ़ के क़ाबिल समझा है।

अलबत्ता फ़रमाँबरदारी के बारे में एक बात की वज़ाहत ज़रूरी है कि किसी इनसान को भी यह हक़ नहीं दिया गया कि वह किसी ऐसे हुक्म पर अमल का मुतालिबा करे जो ख़ुदा के हुक्म के ख़िलाफ़ हो। लिहाज़ा शौहर को भी यह हक़ हासिल नहीं है कि वह बीवी को शरीअत के ख़िलाफ़ कोई हुक्म दे और न ही बीवी को शौहर के ऐसे हुक्म को मानना चाहिए। मिसाल के तौर पर अगर कोई शौहर बीवी को शिर्क करने का हुक्म देता है, या किसी गुनाह और ग़लत काम की तरफ़ बुलाता है, या किसी बदचलनी की तरफ़ उसकी रहनुमाई (मार्गदर्शन) करता है तो बीवी को शौहर के ऐसे हुक्म मानने की बिलकुल ज़रूरत नहीं है। क्योंकि इनसान पर सबसे पहला हक़ उसके पैदा करनेवाले ख़ुदा का है और लोगों में से जो शख़्स भी कोई ऐसा हुक्म देगा जो ख़ुदा के हुक्म के ख़िलाफ़ होगा, उसके हुक्म को रद्द कर दिया जाए, चाहे यह हुक्म देनेवाला शौहर ही क्यों न हो!

एक शौहर अगर बीवी को हुक्म देता है कि वह फ़र्ज़ नमाज़ न पढ़े या फ़र्ज़ रोज़ा न रखे या अपने माल की ज़कात न निकाले तो बीवी को इन मामलों में उसकी

बात मानने की कोई ज़रूरत नहीं है। हाँ, प्यारे नबी (सल्ल०) के फ़रमान के मुताबिक़ अगर कोई शौहर बीवी को नफ़्ल इबादत करने से रोके (जैसे: नफ़्ल नमाज़ पढ़ने से या नफ़्ल रोज़े रखने से) तो बीवी को इस मामले में उसकी बात माननी चाहिए।

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया —

"कोई औरत अपने शौहर की मौजूदगी में उसकी इजाज़त के बग़ैर (नफ़्ल) रोज़ा न रखे — ।" (मुसलिम)

बात असल में यह है कि नफ़्ल इबादत न करने से किसी तरह का कोई गुनाह नहीं होता। यह तो इसलिए होती है कि इनसान इससे अपने सवाब में बढ़ोत्तरी कर ले। इसलिए अगर बीवी की कोई नफ़्ल इबादत उसके शौहर के लिए तकलीफ़देह है या वह किसी वजह से नहीं चाहता कि उसकी बीवी नफ़्ल इबादत करे तो एक सवाब की चाहत रखनेवाली बीवी वह नफ़्ल इबादत करके सवाब हासिल करने के बजाए शौहर की इताअत और फ़रमाँबरदारी करके सवाब हासिल करे। उसका मक़सद तो सवाब हासिल करना है और सवाब अल्लाह तआला अता करता है। इसलिए जब वह अल्लाह तआला को ख़ुश करने के लिए नफ़्ल इबादत के मामले में शौहर की इताअत करेगी तो अल्लाह तआला उसे उतना ही सवाब अता फ़रमा देगा जितना उसे नफ़्ल इबादत करने की सूरत में मिलना था।

यह तो शौहर की इताअत की बात थी, अब उसे ख़ुश रखने के मामले में भी यह बताना ज़रूरी है कि वह नेक नीयती के साथ शौहर को ख़ुश रखने की कोशिश करती रहे। अब अगर कुछ शौहर अपनी फ़ितरी बद-मिज़ाजी की वजह से बिला वजह नाराज़ रहते हों। और किसी सूरत से भी ख़ुश होने पर तैयार न हों, तो बीवी को इस मामले में मजबूर समझा जाएगा।

यहाँ इस बुनियादी बात को दिल और दिमाग़ में बिठा लेना चाहिए कि इस्लाम में असल मक़सद ख़ुदा की ख़ुशी हासिल करना है। फिर उसकी ख़ुशी को पाने के लिए वह काम किए जाते हैं जिन्हें ख़ुदा ने अपनी ख़ुशी हासिल करने का ज़रिया क़रार दिया है — और उनमें एक शौहर की इताअत भी है। एक सच्ची ईमानवाली औरत, शौहर की फ़रमाँबरदारी भी इसलिए करती है कि उसके ज़रिये उसे ख़ुदा की

खुशी हासिल हो, जिसकी खुशी उसका असली मक़सद है। अल्लाह तआला उसकी नीयत और कोशिशों को हर वक़्त देख रहा है। इसलिए जब वह सच्चे दिल से शौहर की खुशी हासिल करने की कोशिश करती रहेगी, मगर शौहर बेवजह नाराज़ रहेगा तो अल्लाह तआला शौहर की नाराज़गी के बावजूद उसे अपनी खुशी से मालामाल करेगा और यही उस नेक औरत का असल मक़सद था। कुरआन मजीद में फ़रमाया गया है —

> "औरतों के लिए भी बेहतर तरीक़े पर वैसे ही हुक़ूक़ हैं जैसे मर्दों के हुक़ूक़ उनपर हैं। अलबत्ता मर्दों को उनपर एक दरजा हासिल है, और अल्लाह ज़बरदस्त और हिकमतवाला है।" (कुरआन, 2:228)

कुरआन मजीद की तफ़सीर (टीका) लिखनेवाले उलेमा ने इस एक लफ़्ज़ 'दरजा' के बारे में बहुत कुछ लिखा है जिसका खुलासा यही है कि मर्द को औरत पर एक हद तक बड़ाई हासिल है और इस बड़ाई ही का नतीजा है कि घर की हुकूमत की सरदारी उसे दी गई है। इस आयत के आख़िर में अल्लाह तआला के दो सिफ़ाती नाम बयान किए गए हैं। एक 'अज़ीज़' यानी ज़बरदस्त और दूसरा 'हकीम' यानी हिकमतवाला। कुरआन मजीद में निगाह रखनेवाले बताते हैं कि अगर किसी आयत के आख़िर में अल्लाह तआला के दो सिफ़ाती नाम बयान किए जाते हैं तो उनका उस आयत में बयान की हुई बात से गहरा ताल्लुक़ होता है। निम्नलिखित आयातों में औरतों के हुक़ूक़ और ज़िम्मेदारियों का ज़िक्र करके और मर्दों के उनपर एक दरजा बढ़ा हुआ होने का एलान करके साथ ही जो बता दिया गया है कि खुदा 'ज़बरदस्त' और 'हिकमतवाला' है तो इससे मुराद यह है कि मर्द को जो एक दरजा बढ़ाकर रखा गया है तो उससे वह बढ़कर नहीं हो गया, बल्कि उसके उपर एक और ज़बरदस्त हस्ती मौजूद है जिसने उसे एक दरजा बरतरी अता की है और जो देख रही है कि वह इस 'दरजे' से सही काम ले रहा है या नहीं।

फिर अल्लाह तआला की सिफ़त 'ज़बरदस्त' बयान करने के साथ ही जो उसे 'हिकमतवाला' भी कहा गया है तो इससे मुराद यह है कि उसका दोनों जिंस (जातियों) में से एक को 'दरजा' अता करने में बड़ी हिकमत है और इसी में दोनों जिंसों की भलाई है। जो कोई इस 'दरजा' का इनकार करके इस बात का दावा

करता है कि मर्द और औरत दोनों हर लिहाज़ से एक ही सतह पर हैं, वह मानो (अल्लाह की पनाह) उस हकीम की हिकमत को चैलेंज करता है और उससे बढ़कर हकीम और अक़्लमन्द होने का दावा करता है, और ऐसा करके वह औरत के साथ हमदर्दी नहीं बल्कि दुश्मनी करता है कि उसके कंधों पर वह बोझ लादने की कोशिश करता है जो ख़ुदा ने हिकमत की वजह से उसपर नहीं डाला था। हक़ीक़त यह है कि मर्द को यह 'दरजा' दिया जाना औरत के लिए बहुत ज़्यादा सहूलत और आराम का सबब है और इस तरह वह अपनी असल ज़िम्मेदारियों को कई गुना बेहतर तौर पर अंजाम दे सकती है। इसलिए एक मोमिन औरत जब शौहर के इस 'दरजा' को तसलीम करती और उसकी फ़रमाँबरदारी करती है तो वह हक़ीक़त में उस ज़बरदस्त और हिकमतवाली हस्ती की फ़रमाँबरदारी करती है जिसने अपनी बड़ी मसलहतों और हिकमतों की वजह से शौहर को यह 'दरजा' अता किया है।

2. शुक्रगुज़ारी

हदीस की किताब सहीह मुसलिम में हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि॰) की एक रिवायत बयान हुई है कि अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल॰) ने फ़रमाया —

> "ऐ औरतों के गिरोह ! ख़ुदा की राह में ख़र्च किया करो और कसरत से गुनाहों की बख़्शिश माँगा करो, क्योंकि मैंने दोज़ख़वालों में तुम्हारी ज़्यादा तादाद देखी है।"
>
> (इसपर) उन औरतों में से एक ने, जो ज़ोरदार बात करनेवाली थीं, कहा —
>
> "ऐ अल्लाह के रसूल ! दोज़ख़वालों में हमारी तादाद ज़्यादा क्यों है?"
>
> नबी (सल्ल॰) ने जवाब दिया —
>
> "इसलिए कि तुम बहुत ज़्यादा मलामत करती हो और शौहर की नाशुक्री करती हो—।" (मुसलिम)

इसी सिलसिले की एक हदीस बुख़ारी शरीफ़ में भी है जिसकी रिवायत इब्न अब्बास (रज़ि॰) ने की है। वे कहते हैं कि अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल॰) ने फ़रमाया —

"जब मुझे दोज़ख़ दिखाई गई तो मैंने देखा कि उसमें जो लोग हैं उनमें औरतों की तादाद ज़्यादा है। (वजह यह है कि) वे कुफ़्र (नाशुक्री) करती हैं। नबी (सल्ल॰) से पूछा गया कि क्या वे अल्लाह के साथ कुफ़्र करती हैं? — आप (सल्ल॰) ने कहा कि (नहीं, बल्कि) वे शौहर के साथ कुफ़्र करती हैं और (उसका) एहसान नहीं मानतीं। (ऐ इनसान!) अगर तू उनमें से किसी के साथ बहुत दिनों तक एहसान करता रहे, फिर वह तेरी तरफ़ से कोई ...... (नापसन्दीदा) बात देख ले तो (फ़ौरन) कहेगी कि मैंने तो तुमसे कभी कोई भलाई पाई ही नहीं।"

इस हदीस में मुहम्मद (सल्ल॰) ने एक ऐसी सच्ची बात बयान की है जिसका कोई भी अल्लाह से डरनेवाला और इनसाफ़पसंद इनसान इनकार नहीं कर सकता। हालाँकि नाशुक्रापन इनसान में आम तौर पर बहुत ज़्यादा पाया जाता है और औरतों में तो यह बात कुछ ज़्यादा ही पाई जाती है, ख़ासकर अपने शौहरों के सिलसिले में। अकसर देखने में आता है कि उनकी ज़रा-सी बेइनसाफ़ी को देखकर उनकी उम्र-भर की ख़िदमतों और भलाइयों को भुला दिया जाता है। औरतों का यह ख़ास जुमला आम है कि —

"मैंने तो इस घर में आकर क़भी आराम पाया ही नहीं !"

जो कुछ अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने औरतों से कहा था उससे आपका मक़सद औरतों को अदब सिखाना और उनकी तरबियत करना था। एक सच्ची ईमानवाली औरत के लिए ज़रूरी है कि वह ख़ुदा की शुक्रगुज़ार होने के अलावा उन रिश्तेदारों की भी शुक्रगुज़ार हो जो उसके लिए मेहनत करते हैं और उसे राहत और आराम पहुँचाने और उसकी ज़रूरतों को पूरा करने को अपनी असल ज़िम्मेदारी समझते हैं। शादी से पहले औरत के साथ एहसान करनेवाले उसके माँ-बाप होते हैं और शादी के बाद उसका शौहर। बेशक घर के अन्दर एक औरत के कंधों पर भी बहुत ज़्यादा ज़िम्मेदारियाँ होती हैं और अपनी ज़िम्मेदारी का एहसास रखनेवाली औरत उनको पूरा करने में अपने जिस्म व जान की पूरी ताक़त लगा देने से नहीं झिझकती, लेकिन इस सच्चाई को सामने रखना भी ज़रूरी है कि जिस सुरक्षित माहौल में वह ये सारी ज़िम्मेदारियाँ निभाती है उसे सुरक्षित रखने और उसके क़ायम

रहने का ज़रिया और साधन जुटाने के लिए दौड़-धूप करनेवाली ज़ात भी मर्द ही की होती है । रोज़ी देनेवाला और हिफ़ाज़त करनेवाला तो हक़ीकत में अल्लाह ही है, लेकिन लोगों को रोज़ी पहुँचाने और हिफ़ाज़त करने के जो भौतिक साधन अल्लाह ने बना रखे हैं उनमें घरवालों के लिए रोज़ी कमानेवाला और उनकी हिफ़ाज़त करनेवाला 'मर्द' बड़ा ही इज़्ज़त के लायक़, ज़िम्मेदार और भरोसे के क़ाबिल है । सिर्फ़ मर्द के अपनी जगह से हट जाने से घर इतना असुरक्षित और बेसहारा-सा हो जाता है कि दूसरे बहुत-से लोग मिलकर भी उसकी कमी को सही मानों में पूरा नहीं कर सकते । फिर मर्द से सबसे ज़्यादा फ़ायदा उठानेवाली हस्ती उसकी बीवी ही होती है । इसलिए जो औरत हक़ीक़त को जाननेवाली, इनसाफ़-पसन्द और अल्लाह से डरनेवाली होगी उसके दिल में उस मर्द के लिए शुक्रगुज़ारी के जज़्बे ज़रूर पैदा होने चाहिएँ, जिसकी ज़ात उसे समाज में एक मक़ाम अता करती है और ज़िन्दगी की अनगिनत बलाओं के ख़िलाफ़ उसके लिए एक क़िले का काम देती है ।

3. हिफ़ाज़त

हदीस की किताब सहीह बुख़ारी शरीफ़ में हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) की एक रिवायत बयान हुई है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया —

> "ऊँट पर सवार होनेवाली औरतों में से बेहतरीन औरतें (क़बीला) कुरैश की हैं, (क्योंकि वे) बच्चे पर उसकी कम उम्री में बहुत मेहरबान (होती हैं) और शौहर के हाथ में जो माल हो उसकी बहुत ज़्यादा हिफ़ाज़त करती हैं ।"

इस हदीस से स्पष्ट हो जाता है कि नबी (सल्ल०) ने जिन औरतों को तारीफ़ के क़ाबिल समझा उनमें ये दो ख़ूबियाँ पाई जाती थीं कि वे बच्चों पर बहुत मेहरबान होती थीं और घरबार की अच्छी तरह हिफ़ाज़त करती थीं ।

चूँकि मर्द के कंधों पर रोज़ी कमाने का बोझ होता है इसलिए उसके लिए मुमकिन नहीं कि हर वक़्त घर और घर के साज़ो-सामान वग़ैरह की हिफ़ाज़त कर सके । उसकी ग़ैर-मौजूगी में कोई ऐसा होना चाहिए जो इस बात का ज़िम्मेदार हो कि घर-बार और बच्चों वग़ैरह की हिफ़ाज़त करे । इसलिए औरत पर मर्द का यह भी एक हक़ है कि औरत मर्द की ग़ैर-मौजूदगी में उसकी चीज़ों की हिफ़ाज़त करे ।

हिफ़ाज़त की जानेवाली चीज़ों में सबसे ज़्यादा क़ीमती चीज़ औरत की अपनी इज़्ज़त व आबरू है । इसलिए एक दीनदार औरत इस बात की बराबर कोशिश करती है कि उसकी अपनी इज़्ज़त व आबरू पर कोई आँच न आने पाए और उसके घर की दूसरी चीज़ें भी सुरक्षित रहें । कुरआन मजीद में है –

> "तो जो नेक औरतें हैं वे फ़रमाँबरदार होती हैं और मर्दों के पीछे अल्लाह की हिफ़ाज़त और निगरानी में उनके हक़ों की हिफ़ाज़त करती हैं । (कुरआन, 4:34)

तफ़्हीमुल कुरआन (हिस्सा-1 पेज-348) में इस आयत की तशरीह करते हुए बयान हुआ है –

> "हदीस में है कि नबी (सल्ल०) ने कहा कि सबसे बेहतरीन बीवी वह है कि जब तुम उसे देखो तो तुम्हारा मन खुश हो जाए, जब तुम उसे किसी बात का हुक्म दो तो वह तुम्हारी बात माने और जब तुम घर में न हो तो वह तुम्हारे पीछे तुम्हारे माल की और अपने नफ़्स (इज़्ज़त) की हिफ़ाज़त करे — यह हदीस इस आयत की बेहतरीन तफ़सीर (व्याख्या) करती है ।"

4. तलाक़ का हक़

एक और हक़ (अधिकार) जो मर्द को दिया गया है वह तलाक़ का हक़ है जिसके ज़रिये वह निकाह के बन्धन को तोड़ सकता है । तलाक़ के बारे में यह बताना ज़रूरी है कि इस्लाम में इसकी इजाज़त दी गई है । इसे पसंदीदा नहीं समझा गया है ।

हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि०) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया –

> "अल्लाह तआला के नज़दीक हलाल चीज़ों में सबसे बुरी चीज़ तलाक़ है ।" (अबू दाऊद)

हिकमत से भरे इन बोलों में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि तलाक़ हलाल है

और साथ ही यह चेतावनी भी दे दी गई है कि इसे खेल न बना लिया जाए, क्योंकि अल्लाह तआला ने इसे जाइज़ तो ठहराया है, मगर इसे पसन्द नहीं किया । अब सवाल यह उठता है कि अल्लाह ने इसे नापसन्द करने के बावजूद जाइज़ क्यों ठहराया? —

कभी-कभी हालात ऐसी शक्ल इख़तियार कर लेते हैं और शौहर और बीवी के आपसी ताल्लुक़ात में इतनी ख़राबी पैदा हो जाती है कि मेल-मिलाप और समझौते की कोई कोशिश कामयाब नहीं होती । तो फिर ऐसी हालत में मजबूरन आख़िरी इलाज के तौर पर तलाक़ से काम लिया जा सकता है, क्योंकि अगर शौहर-बीवी के दिलों में एक-दूसरे के लिए ऐसी नफ़रत पैदा हो चुकी हो कि वे एक-दूसरे के वे हक़ अदा न कर सकते हों जो इस्लाम ने क़ायम किए हैं तो फिर बजाय इसके कि उम्र भर दोनों की ज़िन्दगी अजीरन रहे, यह बेहतर है कि वे एक-दूसरे से क़ानूनी तौर पर अलग होकर अपना-अपना कोई और बन्दोबस्त कर लें । फिर भी जैसा कि ऊपर बयान किया जा चुका है, तलाक़ को खेल बना लेना सख़्त नापसन्दीदा बात है । मुसलमान औरतों को भी नसीहत की गई है कि बिना ज़रूरत तलाक़ न माँगा करें, और इसी तरह यह बात भी नापसन्दीदा है कि कोई औरत किसी दूसरी औरत को तलाक़ दिए जाने की माँग करे ।

हज़रत सौबान (रज़ि०) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया —

> "जो औरत बिना ज़रूरत अपने शौहर से तलाक़ माँगे उसपर जन्नत की ख़ुशबू हराम है ।" (अबू दाऊद)

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया —

> "किसी औरत के लिए जाइज़ नहीं कि अपनी (मुसलमान) बहन की तलाक़ की माँग करे ताकि उसकी रकाबी को अपने लिए हासिल करे, क्योंकि उसकी तक़दीर में जो कुछ होगा वह उसे मिल जाएगा ।"
> (बुख़ारी)

5. औरत का बनाव-श्रृंगार करना

इनसान फ़ितरी तौर पर ख़ूबसूरत और दिलकश चीज़ों को पसन्द करता है और उसका दिल ग़ैर-इरादी तौर पर उनकी तरफ़ खिंचता है । उसकी फ़ितरत (Nature) में यह ख़ाहिश भी रखी गई है कि वह चीज़ों को अच्छी से अच्छी शक्ल में लाए। ख़ूबसूरती और दिलकशी बहुत हद तक तो क़ुदरती होती है, मगर यह किसी हद तक बनाव और श्रृंगार के ज़रिए पैदा भी की जा सकती है ।

औरत फ़ितरती तौर पर श्रृंगार को पसन्द करती है । इस्लाम इनसान की फ़ितरत का दीन है और इसी लिए उसने औरत की इस ख़ाहिश को दबाया नहीं, बल्कि उसकी इजाज़त दी है; मगर कुछ पाबन्दियों के साथ ।

इस सिलसिले में पहली पाबन्दी यह है कि श्रृंगार ग़ैर-इस्लामी न हो । श्रृंगार के ग़ैर-इस्लामी होने का मतलब यह है कि ऐसा लिबास इस्तेमाल न किया जाए जो जिस्म के उन हिस्सों को खोल दे जिन्हें ढाँपकर रखने का हुक्म है, और वह श्रृंगार ऐसा भी न हो जो इस्लामी इबादत में रुकावट बनता हो । मिसाल के तौर पर लिबास की कटाई ऐसी हो कि उसे पहनकर नमाज़ नहीं पढ़ी जा सकती या ऐसी श्रृंगार की चीज़ें इस्तेमाल की जा रही हों । जिनकी मौजूदगी में वुज़ू ही दुरुस्त नहीं होता, वग़ैरह ।

दूसरा उसूल यह है कि बनाव-श्रृंगार के लिए अपनी माली हालत का भी लिहाज़ किया जाए । कुछ औरतों की यह ख़ाहिश इतनी तेज़ हो जाती है कि वे सुन्दर क़ीमती कपड़े और बनाव और श्रृंगार की दूसरी चीज़ों के लिए क़र्ज़ के फन्दे में फँस जाने और घर बरबाद कर लेने में भी नहीं हिचकिचातीं । यह बात बिलकुल ही नापसन्दीदा है और इससे इनसान एक हलाल चीज़ को ख़राबी का ज़रिया बना लेता है । हालाँकि जो चीज़ हलाल है उसका हलाल होना ही इस बात का सबूत है कि वह ख़राबी का ज़रिया नहीं बनेगी ।

तीसरा उसूल यह है कि मोमिन औरतों का श्रृंगार सिर्फ़ उन लोगों के लिए होना चाहिए जिनके सामने आने की इस्लाम ने उन्हें इजाज़त दी है, जिन्हें महरम कहा जाता है और यह श्रृंगार उन लोगों के लिए नहीं होना चाहिए जो नामहरम हैं, यानी जिनके सामने आने से इस्लाम ने मना किया है । क़ुरआन मजीद में है —

"और गुज़र चुके अज्ञानकाल की-सी सज-धज न दिखाती फ़िरो ।

(क़ुरआन, 33:33)

इसकी तशरीह में बताया किया गया कि —

"(मूल अरबी आयत में औरत के लिए तबर्रुज शब्द इस्तेमाल किया गया है और जब) औरत के लिए लफ़्ज़ 'तबर्रुज' इस्तेमाल किया जाए तो उसके तीन मतलब होंगे —

एक यह कि वह अपने चेहरे और जिस्म की ख़ूबसूरती लोगों को दिखाए । दूसरे यह कि वह अपने लिबास और ज़ेवर की शान दूसरे के आगे नुमायाँ करे । तीसरे यह कि वह अपनी चाल-ढाल और चटक-मटक से अपने आपको नुमायाँ करे ———— अल्लाह तआला जिस बात से औरतों को रोकना चाहता है वह उनका अपने हुस्न की नुमाइश करते हुए घरों से बाहर निकलना है । वह उनको हिदायत करता है कि ऐ औरतो! अपने घरों में टिककर रहो, क्योंकि तुम्हारा असल काम घर में है, न कि उससे बाहर । लेकिन अगर बाहर निकलने की ज़रूरत पड़े तो इस शान के साथ न निकलो जिस तरह पिछले दौरे जाहिलियत में औरतें निकला करती थीं । बन-ठनकर निकलना, चेहरे और जिस्म के हुस्न को ज़ेबो-ज़ीनत, बनाव-शृंगार और चुस्त लिबासों या अश्लील लिबासों से ज़ाहिर करना और इठलाकर चलना, एक मुसलिम समाज की औरतों का काम नहीं है । ये जाहिलियत के तौर-तरीक़े हैं, जो इस्लाम में नहीं चल सकते ।"

(तफ़हीमुल क़ुरआन हिस्सा-4, पेज:91-92)

कहने का मतलब यह है कि शरीअत की पाबन्दियों को ध्यान में रखकर शृंगार करना औरत के लिए बिलकुल जाइज़ है और बीवी का शौहर के लिए शृंगार करना न सिर्फ़ जाइज़ है, बल्कि पसन्दीदा है ।

हज़रत इब्न अब्बास (रज़ि॰) कहते हैं —

"मुझे यह बात पसन्द है कि मैं अपनी बीवी के लिए बनूँ-सँवरूँ जिस तरह मैं यह पसन्द करता हूँ कि वह मेरे लिए बनाव-शृंगार करे ।"

इसलिए यह कहा जा सकता है कि शौहर का एक हक़ यह भी है कि बीवी अपने साधनों और शरई हदों के अन्दर रहते हुए अपने बनाव-शृंगार का ध्यान रखे। इससे उम्मीद रखी जाती है कि आपसी ताल्लुक़ात ज़्यादा अच्छे होंगे और मर्दों के ख़यालात इधर-उधर नहीं भटकेंगे।

एक वाक़िआ है कि एक बार हज़रत आइशा (रज़ि०) ने हज़रत उसमान बिन मज़ऊन की बीवी को देखा कि बहुत ही सादे लिबास में हैं और बनाव-शृंगार भी बिलकुल नहीं किया है तो हज़रत आइशा (रज़ि०) ने हैरत से पूछा कि बहन! क्या उसमान कहीं सफ़र पर गए हुए हैं ?

हज़रत आइशा (रज़ि०) की इस हैरत से यह बात साफ़ हो ज़ाती है कि सुहागिनों का अपने शौहरों के लिए बनाव-शृंगार करना सहाबियात (रज़ि०) के नज़दीक भी एक पसन्दीदा काम था।

दूसरे हक़

ऊपर बयान किए गए हक़ों के अलावा मर्द को कुछ और हक़ भी हासिल हैं, जैसे यह कि बीवी, शौहर की कमाई को उसकी मरज़ी के ख़िलाफ़ ख़र्च न करे। इस हुक्म की मस्लहत और हिकमत को समझने से पहले यह समझ लेना ज़रूरी है कि अल्लाह ने माली लिहाज़ से औरत को मज़बूत किया है। वह अपने माँ-बाप से विरासत में हिस्सा लेती है और जो कुछ वह माँ-बाप से ले वह पूरे तौर पर उसकी अपनी मिल्कियत होती है। उसके शौहर का उसपर कुछ हक़ नहीं होता, फिर वह शौहर से मह्र की रक़म वुसूल करती है और क़ुरआन के मुताबिक़ अगर कोई शौहर मह्र में बीवी को बहुत सारा सोना दे चुका हो तो उसमें से भी वह कुछ वापस नहीं ले सकता। यह औरत की अपनी मिल्कियत है और उसे ख़र्च करने का उसे पूरा हक़ हासिल है। फिर औरत के कंधों पर कोई माली बोझ नहीं डाला गया है, बल्कि ख़ुद उसके ख़र्च की ज़िम्मेदारी भी मर्द के ऊपर है। इसलिए यह बिलकुल इनसाफ़ है कि मर्द की कमाई को ख़र्च करते हुए वह उसकी मरज़ी का ध्यान रखे। जिस आदमी पर ज़िम्मेदारियाँ डाली जाती हैं, ज़रूरी है कि उसे कुछ हक़ और अधिकार भी दिए जाएँ, ताकि वह ज़िम्मेदारियों के उस बोझ को अच्छी तरह उठा सके। इसलिए मर्द अगर इस बात का ज़िम्मेदार है कि बाल-बच्चों के सारे ख़र्च पूरे करे तो

उसे यह हक़ भी होना चाहिए कि ख़र्चों पर नज़र रख सके ताकि वे इतने न बढ़ जाएँ कि उनके लिए जितनी दौलत की ज़रूरत हो, उतनी दौलत वह मुहैया न कर सकता हो और परेशानियों का शिकार हो जाए या नाजाइज़ कमाई के बारे में सोचने लगे और इस तरह ख़तरों में घिर जाए।

ऐसे ही मर्द को वरासत का हक़ भी हासिल है। अगर बीवी उसकी ज़िन्दगी में मर जाए तो वह उसकी वरासत में से हिस्सा पाएगा।

वरासत का उसूल यह है कि अगर बीवी की औलाद मौजूद हो तो शौहर को उसकी वरासत में चौथा हिस्सा मिलेगा और अगर औलाद नहीं है तो शौहर उसकी वरासत के आधे हिस्से का हक़दार होगा।

ये वे नुमायाँ हक़ और अधिकार हैं जो इस्लाम ने बीवी के मुक़ाबले में शौहर को दिए हैं। मगर सारे जाहानों का रब अल्लाह तो मर्द-औरत दोनों का खुदा है। इसलिए जिस तरह उसने बीवी के मुक़ाबले में शौहर को हक़ और अधिकार दिए हैं उसी तरह शौहर के मुक़ाबले में बीवी को भी हक़ और अधिकार दिए हैं।

बीवी के हक़

1. कफ़ालत (भरण-पोषण)

औरत के शौहर पर जो हक़ हैं उनमें पहला हक़ यह है कि शौहर उसकी कफ़ालत करे। फ़ुक़हा (धर्मिक विधिवेत्ता) इस मसले पर रौशनी डालते हुए बताते हैं कि औरत के सारे ज़रूरी ख़र्चे शौहर के ज़िम्मे हैं। जैसे— खाना, कपड़ा, घर वग़ैरह और शौहर को अपनी हैसियत के मुताबिक़ इन ख़र्चों को पूरा करना होगा।

हकीम बिन मुआविया क़ुशैरी के बाप बयान करते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से पूछा: "ऐ अल्लाह के रसूल! हममें से किसी पर उसकी बीवी का क्या हक़ है?" अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा: "(बीवी का तुमपर हक़ है कि) जब तू खुद खाए तो उसे भी खिलाए और जब तू खुद पहने तो उसे भी पहनाए और उसके चेहरे पर न मार और उसे बुरा न कह और उसे अलग न कर; मगर घर के अन्दर ही।" (अबू दाऊद)

खुतबा हिज्जतुल विदाअ के मौक़े पर जब नबी (सल्ल०) उम्मत को ज़िन्दगी के विभिन्न पहलूओं से ताल्लुक़ रखनेवाले हुक्म और हिदायतें दे रहे थे तो औरतों के बारे में आपने जो नसीहतें कीं उनमें एक यह भी थी कि —

"उनका रोटी-कपड़ा दस्तूर के मुताबिक़ तुमपर वाजिब है।" (मुसलिम)

बीवी के ख़र्च ख़ुशदिली से पूरे करने पर शौहरों को सवाब की ख़ुशख़बरी दी गई है ताकि वे दिल की ख़ुशी के साथ अपनी ज़िम्मेदारियों को पूरा करें।

हज़रत सॉद बिन अबी वक़्क़ास (रज़ि०) बयान करते हैं कि रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया —

> "तुम अल्लाह की ख़ुशनूदी हासिल करने के लिए जो कुछ भी ख़र्च करोगे उसका तुम्हें सवाब दिया जाएगा, यहाँ तक कि जो (निवाला) तुम

अपनी बीवी के मुँह में दोगे (उसका भी तुम्हें सवाब मिलेगा) ।"
(बुख़ारी)

हज़रत अबू मसऊद (रज़ि॰) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया –

"जब मर्द सिर्फ़ ख़ुदा की ख़ुशी चाहने के लिए अपनी बीवी (या अपने घरवालों) पर ख़र्च करे तो वह ख़र्च करना उसके लिए ख़ैरात का हुक्म रखता है (जिसका उसे सवाब मिलेगा) ।" (बुख़ारी)

कुछ मर्द दिल की तंगी की बिना पर या किसी और वजह से बीवियों को इतना ख़र्च नहीं देते जो उनकी ज़रूरतों को पूरा कर सके । ऐसी हालत में बीवी शौहर के माल में से बिना उसे बताए ले ले तो हर्ज नहीं, शर्त यह है कि उतना ही ले जो उसके लिए काफ़ी हो ।

हज़रत आइशा (रज़ि॰) की एक रिवायत है जिसमें उन्होंने अबू सुफ़ियान (रज़ि॰) की बीवी हज़रत हिन्द (रज़ि॰) के प्यारे नबी (सल्ल॰) की ख़िदमत में हाज़िर होने के बारे में बताया है । इस रिवायत के आख़िर में बयान हुआ है –

"हिन्द ने अर्ज़ किया कि ऐ ख़ुदा के रसूल! अबू सुफ़ियान एक कंजूस आदमी हैं । अगर मैं उनके माल में से कुछ उनकी इजाज़त के बिना उनके बच्चों पर ख़र्च कर लिया करूँ तो क्या मुझे गुनाह होगा?" नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया : "तुझे कोई गुनाह न होगा, शर्त यह है कि तू उनपर दस्तूर के मुताबिक़ ख़र्च करे ।" (मुसलिम)

इसलिए, अगर शौहर बीवी के उन ख़र्चों को पूरा नहीं करेगा जो शरीअत ने उसपर लाज़िम किए हैं तो उसे इस्लामी अदालत मजबूर करेगी कि वह अपनी यह ज़िम्मेदारी पूरी करे ।

2. महर

कुरआन मजीद में मर्दों को मुख़ातिब करके फ़रमाया गया है –

"और औरतों के महर ख़ुशदिली से (फ़र्ज़ जानते हुए) अदा करो ।"
(कुरआन, 4:4)

इसलिए बीवी का शौहर पर एक हक़ यह भी है कि उससे महर वुसूल करे। इस्लामी शरीअत में महर बाँधना ज़रूरी क़रार दिया गया है और बाँधने को ज़रूरी क़रार देने का मतलब यह है कि उसे फिर अदा भी किया जाए। हमारे यहाँ अब हाल यह है कि महर बाँधने को तो ज़रूरी क़रार दिया जाता है, लेकिन उसकी अदायगी को बिलकुल ग़ैर-ज़रूरी समझा जाता है। बहुत कम ख़ानदान ऐसे होंगे जहाँ बीवी को बाज़ाब्ता महर अदा किया जाता हो। ज़्यादातर यह चीज़ सिर्फ़ काग़ज़ों पर ही रहती है। हाँ, जब बदक़िस्मती से कोई निकाह टूटता है तो फिर महर की अदायगी का मुतालिबा किया जाता है, मानो महर का ताल्लुक़ निकाह से नहीं, बल्कि तलाक़ से है। इसलिए जिस औरत की ज़िन्दगी में तलाक़ न आए उसे महर अदा करने की कोई ज़रूरत नहीं! हालाँकि शरीअत ने महर का ताल्लुक़ निकाह से क़ायम कर रखा है और जिस औरत का निकाह हो जाए, वह महर की हक़दार हो जाती है। नबी (सल्ल॰) के फ़रमान की रौशनी में पता चलता है कि महर एक तरह का क़र्ज़ है जो मर्द को हर हाल में अदा करना होता है और अगर कोई आदमी इस क़र्ज़ को चुकाए बिना दुनिया से चला गया तो उसकी हैसियत यही होगी कि वह क़र्ज़दार मर गया।

महर के बारे में यह भी साफ़ तौर पर बता दिया गया है कि वह औरत की मिल्कियत बन जाता है और फिर मर्द उसे औरत से ले नहीं सकता। हाँ, अगर कोई औरत अपनी दिली ख़ुशी से महर या महर का कोई हिस्सा माफ़ कर दे तो इसकी औरत को इजाज़त है, शर्त यह है कि वह वाक़ई दिली ख़ुशी से माफ़ कर रही हो, उसे ऐसा करने पर मजबूर न किया जा रहा हो। कुरआन मजीद में है —

> "अलबत्ता अगर वे ख़ुद अपनी ख़ुशी से महर का कोई हिस्सा तुम्हें माफ़ कर दें तो उसे तुम मज़े से खा सकते हो।" (क़ुरआन, 4:4)

3. अच्छा बरताव

बीवी का तीसरा हक़ यह है कि उसके साथ अच्छे बरताव से पेश आया जाए और बद-अख़लाक़ी और बद-सलूकी से काम लेकर घर की जन्नत को जहन्नम न बनाया जाए। हिज्जतुल विदाअ के मशहूर ख़ुतबे में जहाँ प्यारे नबी (सल्ल॰) ने मुसलमानों को और बहुत-सी क़ीमती नसीहतें कीं, वहाँ औरतों के बारे में भी तंबीह

की —

"औरतों के साथ अच्छे बरताव करने की नसीहत क़बूल करो ।" (तिरमिज़ी)

इस मामले में भी हमारे लिए बेहतरीन नमूना अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) का अपना तरीक़ा ही है । आप (सल्ल०) उम्मुहातुल-मोमिनीन के लिए बहुत ही मेहरबान और हमदर्द थे और घरवालों से हमेशा दिलदारी और दिलजोई का मामला रखते थे ।

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया —

"मोमिनों में मुकम्मल ईमानवाला वह है जिसका अख़लाक़ सबसे अच्छा हो और तुममें सबसे ज़्यादा अच्छे वे हैं जो अपनी औरतों (और घरवालों) के लिए अच्छे हैं ।" (तिरमिज़ी)

हज़रत आइशा (रज़ि०) बयान करती हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया —

"तुममें से सबसे अच्छा वह है जो अपने घरवालों के लिए सबसे ज़्यादा अच्छा हो, और मैं अपने घरवालों के लिए तुममें सबसे से अच्छा हूँ ।" (तिरमिज़ी)

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) से मिसाली मुहब्बत थी। हज़रत आइशा (रजि०) फ़रमाती हैं कि मुझे जितना रश्क हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) पर आता उतना अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की किसी और बीवी पर नहीं आता, हालाँकि हुज़ूर (सल्ल०) के मेरे साथ शादी करने से पहले ही हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) का इन्तिक़ाल हो चुका था । रश्क मुझे इस वजह से आता है कि मैं नबी (सल्ल०) को उनका ज़िक्र करते सुना करती थी, और अल्लाह ने नबी (सल्ल०) को हुक्म दिया था कि वे हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) को ख़ुशख़बरी दे दें कि उन्हें (जन्नत में) एक मोती का महल मिलेगा और (हज़रत ख़दीजा का हुज़ूर (सल्ल०) को इतना ख़याल रहता था कि) अगर आप (सल्ल०) बकरी ज़बह करते तो उसमें से उनकी सहेलियों को ज़रूरत भर तोहफ़ा भेजा करते । (बुख़ारी)

हज़रत अली (रज़ि॰) बयान करते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) को फ़रमाते सुना —

> "पिछली उम्मत में सबसे बेहतर मरयम बिन्त इमरान हैं और (इस) उम्मत में सबसे बेहतर ख़दीजा हैं।" (बुख़ारी)

ऐसे ही हज़रत आइशा (रज़ि॰) से भी नबी (सल्ल॰) को बेहद मुहब्बत थी। हज़रत अनस (रज़ि॰) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) से पूछा गया —

> "ऐ अल्लाह के रसूल! आपको लोगों में सबसे ज़्यादा प्यारा कौन है?" आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया: "हज़रत आइशा।" पूछा गया: "मर्दों में (कौन सबसे ज़्यादा प्यारा है?) तो फ़रमाया कि उसके बाप (यानी हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ रज़ि॰)।" (तिरमिज़ी)

हज़रत आइशा (रज़ि॰) खुद बयान करती हैं कि एक दिन नबी (सल्ल॰) ने उन्हें मुख़ातिब करके कहा कि आइशा! यह जिबरील (अलै॰) हैं और तुम्हें सलाम कह रहे हैं। हज़रत आइशा बताती हैं कि (नबी की यह बात सुनकर) मैंने (जिबरील अलै॰ के सलाम का जवाब देते हुए) कहा कि उनपर भी सलामती हो और अल्लाह की रहमत हो और उसकी बरकतें हों, (ऐ अल्लाह के रसूल!) आप वह कुछ देखते हैं जो हम नहीं देखते। (तिरमिज़ी)

अरबवासियों के यहाँ एक मशहूर खाना था जिसे 'सरीद' कहते थे और यह खाना उनके यहाँ बहुत पसन्दीदा था। हज़रत अनस (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया —

> "हज़रत आइशा (रज़ि॰) को औरतों पर ऐसे ही फ़ज़ीलत हासिल है जैसे सरीद को बाक़ी खानों पर।" (तिरमिज़ी)

क़ुरआन मजीद में मर्दों को औरतों के बारे में नसीहत करते हुए कहा गया है —

> "उनके साथ भले तरीक़े से ज़िन्दगी गुज़ारो, और अगर वह तुम्हें नापसन्द हों तो हो सकता है कि एक चीज़ तुम्हें पसन्द न हो, मगर अल्लाह ने उसमें बहुत कुछ भलाई रख दी हो।" (क़ुरआन, 4:19)

इस आयत की तशरीह करते हुए बयान किया गया है —

"यानी अगर औरत ख़ूबसूरत न हो या उसमें कोई और ऐसी कमी हो जिसकी बिना पर वह शौहर को पसन्द न आए तो यह मुनासिब नहीं है कि शौहर फ़ौरन बददिल होकर उसे छोड़ देने पर तैयार हो जाए । जहाँ तक हो सके उसे सब्र और बरदाश्त से काम लेना चाहिए । कई बार ऐसा होता है कि एक औरत ख़ूबसूरत नहीं होती मगर उसमें बहुत सारी ख़ूबियाँ ऐसी होती हैं जो वैवाहिक जीवन में ख़ूबसूरती से ज़्यादा अहमियत रखती हैं । अगर उसे अपनी इन ख़ूबियों को ज़ाहिर करने का मौक़ा मिले तो वही शौहर जो शुरू में सिर्फ़ उसकी शक्ल की बदसूरती से बददिल हो रहा था, उसकी नेक सीरत पर फ़िदा हो जाता है । इसी तरह कई बार पारिवारिक जीवन के शुरू में औरत की कुछ बातें शौहर को बुरी लगती हैं और वह उससे बददिल हो जाता है, लेकिन वह सब्र से काम ले और औरत की सारी ख़ूबियों को सामने आने का मौक़ा दे तो उसपर यह ख़ुद साबित हो जाता है कि उसकी बीवी बुराइयों से बढ़कर ख़ूबियाँ रखती है । इसलिए यह बात पसन्दीदा नहीं है कि इनसान शौहर-बीवी के ताल्लुक़ को ख़त्म करने में जल्दबाज़ी से काम ले।"

(तफ़हीमुल क़ुरआन, हिस्सा-1)

यही बात नबी (सल्ल॰) की एक हदीस में भी है । हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया —

"मोमिन मर्द मोमिन औरत को दुश्मन न समझे, क्योंकि अगर उसकी एक आदत नापसन्द होगी तो दूसरी पसन्द होगी ——।" (मुसलिम)

इन हिदायतों का ख़ुलासा यह है कि शौहरों को अगर बीवियों में कुछ कमियाँ नज़र आएँ तो भी उनसे ताल्लुक़ तोड़ने या बदसुलूकी करने पर न उतर आएँ, बल्कि उनकी ख़ूबियों की तरफ़ ध्यान दें और अच्छा बरताव करते हुए अच्छे तरीक़े से उनके साथ निबाह करें ।

अरब के लोग सख़्त मिज़ाज के थे और उनके यहाँ बीवियों को मारने का रिवाज था । नबी (सल्ल॰) ने इसपर भी अपनी नाराज़गी का इज़हार किया । बुख़ारी,

मुसलिम और अबू दाऊद में ऐसी हदीसें बयान हुई, हैं जिनमें बताया गया है कि नबी (सल्ल०) ने लोगों से फ़रमाया कि अपनी बीवियों को गुलामों, लौंडियों और जानवरों की तरह क्यों मारते हो। और एक बार जब बहुत-सी औरतें अपने शौहरों की मार-पीट की शिकायत लेकर उम्मुहातुल-मोमिनीन (रज़ि०) के पास आईं तो नबी (सल्ल०) ने लोगों से कहा और तंबीह की कि तुममें से जिन लोगों ने यह काम किया है वे अच्छे लोग नहीं हैं।

अच्छे बरताव की एक शक्ल यह भी है कि बीवी पर मुनासिब तवज्जोह और वक़्त दिया जाए। कुछ सहाबा (रज़ि०) इबादत और दूसरे दीनी कामों में इतना शौक़ रखते थे कि बीवियों की तरफ़ ध्यान नहीं दे पाते थे। इसपर नबी (सल्ल०) ने समझाते हुए हिदायत फ़रमाई कि तुम्हारी बीवियों का भी तुमपर हक़ है, यानी वे इस बात की हक़दार हैं कि उन्हें मुनासिब तवज्जोह और वक़्त दिया जाए। औरत फ़ितरी तौर पर अपने माँ-बाप और भाई-बहनों से मुहब्बत रखती है। इसलिए जब उसके इन रिश्तेदारों को बुरा कहा जाएगा तो यह बात उसके लिए बहुत ही तकलीफ़देह होगी। इसलिए एक मोमिन शौहर को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह बीवी के रिश्तेदारों को बुरा-भला कहकर उसे तकलीफ़ न दे।

बीवी के साथ अच्छे बरताव की वे सारी शक्लें जो शरीअत के एतिबार से सही हैं, उनमें नबी (सल्ल०) ने उम्मत के लिए बहुत ही रौशन नमूने छोड़े हैं जिसमें नरमी है, मेहरबानी है, हमदर्दी है, नाज़बरदारी है और सच्ची मुहब्बत है।

हज़रत आइशा (रज़ि०) की शादी कम उम्र में हुई थी, वे कहती हैं कि —

> "(शादी के बाद) नबी (सल्ल०) के पास (आ जाने के बाद भी) मैं गुड़ियों से खेला करती थी और मेरी कुछ सहेलियाँ थीं जो मेरे साथ खेला करती थीं, तो जब नबी (घर में) तशरीफ़ लाते तो वे (खेल छोड़कर) छुप जातीं तो नबी (सल्ल०) उन्हें मेरे पास भेज देते (ताकि मैं उनके साथ खेलूँ) और वे (फिर) मेरे साथ खेलने लगतीं।"
>
> (बुख़ारी, मुसलिम)

सुनन अबू दाऊद में हज़रत आइशा (रज़ि०) से एक रिवायत बयान हुई है कि किसी सफ़र में नबी (सल्ल०) और हज़रत आइशा (रज़ि०) का दौड़ में मुक़ाबला हुआ

तो हज़रत आइशा (रज़ि०) जीत गईं। फिर कुछ वक़्त गुज़रने के बाद जब हज़रत आइशा का जिस्म कुछ भारी हो गया तो एक बार फिर नबी (सल्ल०) और हज़रत आइशा (रज़ि०) का मुक़ाबला हुआ। इस बार नबी (सल्ल०) जीत गए और फ़रमाया कि यह तुम्हारी उस जीत का जवाब है।

इसी तरह हज़रत आइशा (रज़ि०) ने सहीह बुख़ारी और सहीह मुसलिम में एक और वाक़िआ बयान किया है कि कुछ हबशी मसजिद में नेज़ाबाज़ी का खेल दिखा रहे थे। अल्लाह के नबी (सल्ल०) मुझे वह खेल दिखाने के लिए मेरे लिए अपनी चादर का परदा करके हुजरे के दरवाज़े पर खड़े हो गए (जो मसजिद में खुलता था) और मैं आप (सल्ल०) के कंधे और कान के बीच से उनका खेल देखती रही। आप (सल्ल०) मेरी वजह से लगातार खड़े रहे, यहाँ तक कि (मेरा दिल भर गया और) मैं खुद ही लौट आई।

नबी (सल्ल०) की निजी ज़िन्दगी के वाक़िआत पढ़ें तो एक ऐसे मेहरबान, हमदर्द और शफ़ीक़ शौहर की तस्वीर नज़र आती है जो एक मिसाली जीवन-साथी और हमदर्द हमसफ़र है। इब्न माजा में अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का एक क़ौल (कथन) बयान हुआ है कि एक मुसलमान आदमी का हर खेल बातिल (निरर्थक) है सिवाय तीन खेलों के (एक) उसका अपनी कमान से तीरंदाज़ी करना, (दूसरा) उसका अपने घोड़े की तादीब करना और (तीसरा) उसका अपनी बीवी से खेलना।

तीर-कमान और घोड़े उस वक़्त जंग में काम आते थे। इस हदीस से जो मतलब निकलता है वह यह है कि एक सच्चा मोमिन एक तरफ़ तो अल्लाह की राह में जिहाद करने में दिलचस्पी रखता है तो दूसरी तरफ़ अपनी बीवी के लिए एक खुशदिल और खुशमिज़ाज जीवन साथी साबित होता है।

4. इनसाफ़

औरत का चौथा हक़ यह है कि उसके मामले में इनसाफ़ से काम लिया जाए। औरत के साथ नाइनसाफ़ी करने की कई शक्लें हो सकती हैं, मगर उनमें सबसे ज़्यादा सख़्त शायद यही है कि अगर एक से ज़्यादा बीवियाँ हों तो उनमें से किसी एक की तरफ़ बहुत ज़्यादा ध्यान हो और दूसरी को नज़रअन्दाज़ किया जाए, जैसे उसका कोई वुजूद ही नहीं। इस्लाम ने इस मामले में बड़ी सख़्त चेतावनी दी है और

सख़्ती से हुक्म दिया गया है कि सब बीवियों से बराबरी का सुलूक किया जाए। उसकी ज़रूरतें पूरी करने का मामला हो या हिफ़ाज़त का, या पास रहने का, या किसी और बात का जिसका निजी जीवन से ताल्लुक़ हो, सबके बारे में यही हिदायत दी गई है कि सब बीवियों को एक दरजे में रखा जाए, अलबत्ता दिल पर चूँकि इनसान को इख़्तियार नहीं होता; इसलिए अगर शौहर के दिल में किसी एक बीवी की मुहब्बत दूसरी से ज़्यादा हो तो उसमें उसे मजबूर समझा जाएगा फिर भी यह छूट सिर्फ़ दिल के जज़्बात तक के लिए है। जहाँ तक ज़ाहिरी सुलूक का ताल्लुक़ है शौहर के लिए ज़रूरी है कि जिस बीवी से कम मुहब्बत है, उससे भी वैसा ही सुलूक करे जैसा उससे जिससे ज़्यादा है।

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया —

> "जिस आदमी की दो बीवियाँ हों और वह दोनों में से एक की तरफ़ झुके (और उसके हक़ अदा करे और उसके मुक़ाबले में दूसरी के हक़ न अदा करे) तो वह क़ियामत के दिन इस हाल में आएगा कि उसका आधा धड़ अलग होगा।" (अबू दाऊद)

नबी (सल्ल॰) उम्मुहातुल मोमिनीन के बीच पूरे-पूरे इनसाफ़ से काम लेते थे आप (सल्ल॰) का तरीक़ा था कि बारी-बारी हर उम्मुल-मोमिनीन के पास रहते थे। फिर जब आप उस बीमारी में घिर गए जिसमें दुनिया से तशरीफ़ ले गए तो आख़िरी घड़ी आप (सल्ल॰) ने हज़रत आइशा (रज़ि॰) के घर में गुज़ारी, मगर उसके लिए आप (सल्ल॰) ने अपने बाक़ी उम्मुहातुल-मोमिनीन (रज़ि॰) से इजाज़त माँगी थी जो सभी ने दे दी थी।

5. ख़ुलअ का हक़

शौहर और बीवी अगर एक-दूसरे से जुदा ही होने का फ़ैसला कर लें तो इसकी दो शक्लें होती हैं — एक यह कि शौहर बीवी को तलाक़ दे दे और दूसरी यह कि बीवी ख़ुद माँग करके और शौहर को कुछ माल देकर अपना निकाह ख़त्म करवा ले, जिसे "ख़ुलअ" कहा जाता है। क़ुरआन मजीद में है —

"अगर तुम्हें यह डर हो कि वे दोनों (यानी शौहर और बीवी) अल्लाह की हदों पर क़ायम नहीं रहेंगे, तो उन दोनों के बीच यह मामला हो जाने में कोई हर्ज नहीं कि औरत अपने शौहर को कुछ मुआवज़ा देकर छुटकारा पा ले।" (क़ुरआन, 2:229)

तफ़हीमुल क़ुरआन, हिस्सा-1 में इस आयत की इस तरह तशरीह की गई है–

"शरीअत की इस्तिलाह (परिभाषा) में इसे 'खुलअ' कहते हैं, यानी एक औरत का अपने शौहर को कुछ दे-दिलाकर उससे तलाक़ लेना। इस मामले में अगर औरत और मर्द के बीच घर के घर ही में कोई समझौता तय हो जाए तो जो कुछ तय हुआ हो वही लागू होगा, लेकिन अगर अदालत में मामला जाए तो अदालत सिर्फ़ इस बात की जाँच करेगी कि क्या सही मानों में यह औरत उस मर्द से इस हद तक बेज़ार हो चुकी है कि उसके साथ इसका निबाह नहीं हो सकता। इसकी तहक़ीक़ हो जाने के बाद अदालत को यह इख़तियार है कि हालात के लिहाज़ से जो मुआवज़ा चाहे तय करे और इस मुआवज़े को क़बूल करके शौहर को उसे तलाक़ देनी होगी। आम तौर से फ़ुक़हा (धर्मशास्त्रियों) ने इस बात को पसन्द नहीं किया है कि जो माल शौहर ने उस औरत को दिया हो, उसकी वापसी से बढ़कर कोई मुआवज़ा उसे दिलवाया जाए।"

ऊपर लिखी आयत के तरजुमा और तशरीह से यह बात साफ़ हो जाती है कि अगर कोई औरत अपने शौहर से इतना बेज़ार हो चुकी हो कि वह शौहर के वे हक़ अदा न कर सकती हो जो एक मुसलमान बीवी की हैसियत से उसे अदा करने चाहिएँ, तो खुदा ने उसके लिए निजात का यह रास्ता खोल रखा है कि वह खुलअ के ज़रिये शौहर से अलहदगी हासिल कर ले। मुवत्ता इमाम मालिक (रह०) में एक रिवायत बयान हुई है कि सहाबिया हज़रत हबीबा बिन्त सहल (रज़ि०) नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुईं और वह अपने शौहर साबित बिन क़ैस (रज़ि०) से अलग होना चाहती थीं। नबी (सल्ल०) ने हज़रत साबित बिन क़ैस (रज़ि०) का वह माल जो उन्होंने हज़रत हबीबा (रज़ि०) को दे रखा था, उन्हें वापस दिला दिया और हज़रत हबीबा (रज़ि०) को खुलअ मिल गया।

6. जायदाद का हक़

जिस तरह शौहर बीवी की विरासत में से हिस्सा पाता है उसी तरह बीवी को भी यह हक़ हासिल है कि वह शौहर की विरासत में से हिस्सा ले। इस मामले में शरई उसूल यह है कि शौहर अगर औलाद छोड़कर मरा हो तो बीवी उसकी विरासत के आठवें हिस्से की हक़दार होगी और अगर वह बेऔलाद मर जाए तो फिर बीवी को विरासत का चौथा हिस्सा मिलेगा।

माँ-बाप के हक़

"और तुम्हारे रब ने फ़ैसला कर दिया कि तुम लोग किसी की इबादत न करो; मगर सिर्फ़ उसी की, और माँ-बाप के साथ नेक सुलूक करो।"

(क़ुरआन, 17:23)

याद रहे कि 'नेक सुलूक' में अदब, इज़्ज़त, सम्मान, फ़रमाँबरदारी, ख़ुश रखना, ख़िदमत सब शामिल हैं। माँ-बाप के इस हक़ को क़ुरआन में हर जगह तौहीद (एकेश्वरवाद) के हुक्म के बाद बयान किया गया है, जिससे साफ़ ज़ाहिर होता है कि ख़ुदा के बाद बन्दों के हक़ में सबसे ज़्यादा हक़ इनसान पर उसके माँ-बाप का है। क़ुरआन और हदीस में माँ-बाप के जो हक़ बयान हुए हैं उनकी रू से औलाद का फ़र्ज़ है कि —

- हर जाइज़ काम में माँ-बाप की फ़रमाँबरदारी करे,
- अपनी ताक़त भर उनकी माली और जिस्मानी दोनों तरह की ख़िदमत करे,
- उन्हें इज़्ज़त और आदर की निगाह से देखे,
- उनसे दिली मुहब्बत रखे,
- उनके नातेदारों और दोस्तों से अच्छा बरताव करे,
- उनके लिए भलाई की दुआ करे, और
- उनकी बद्दुआ से बचने की कोशिश करती रहे, वग़ैरह।

1. अच्छा बरताव

हज़रत इब्न मसऊद (रज़ि॰) बयान करते हैं कि मैंने अर्ज़ किया — "ऐ अल्लाह के रसूल ! कौन-सा अमल (काम) सबसे अच्छा है? आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि नमाज़ जो अपने वक़्त पर अदा की जाए। मैंने

अर्ज़ किया कि उसके बाद कौन-सा अमल? आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि माँ-बाप के साथ नेकी करना। मैंने अर्ज़ किया कि उसके बाद? आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि अल्लाह की राह में जिहाद करना———।''

(तिरमिज़ी)

हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया –

''माँ-बाप से नेकी करनेवाला बेटा जब रहमत की नज़र से अपने माँ-बाप की तरफ़ देखता है तो अल्लाह (उसकी) हर नज़र के बदले उसके लिए एक मबरूर हज (यानी ऐसे हज का जिसे अल्लाह ने क़बूल कर लिया हो) का सवाब लिखता है। लोगों ने अर्ज़ किया कि चाहे वह हर दिन सौ मरतबा देखे। नबी (सल्ल॰) ने जवाब दिया कि हाँ (चाहे हर दिन सौ मरतबा देखे)। अल्लाह सबसे बड़ा और पाकीज़ा है।'' (मिशकात)

वैसे तो औलाद की ज़िम्मेदारी है कि पूरी ज़िन्दगी माँ-बाप से अच्छा बरताव करते रहें। मगर जब माँ-बाप बुढ़ापे की हालत में हों तो उनकी तरफ़ ख़ास तवज्जोह देने की ज़रूरत होती है। क़ुरआन में हुक्म दिया गया है –

''तुम्हारे रब ने फ़ैसला कर दिया है कि तुम लोग किसी की इबादत न करो; मगर सिर्फ़ उस (अल्लाह) की, और माँ-बाप के साथ नेक सुलूक करो। अगर तुम्हारे पास उनमें से कोई एक या दोनों बूढ़े होकर रहें तो उन्हें उफ़ तक न कहो, न उन्हें झिड़ककर जवाब दो, बल्कि उनसे इज़्ज़त के साथ बात करो और नर्मी और रह्म के साथ उनके सामने झुककर रहो और दुआ किया करो कि मालिक! उनपर रह्म कर जिस तरह उन्होंने रह्म और प्यार के साथ मुझे बचपन में पाला था।''

(क़ुरआन, 17:23-24)

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया: ''उसकी नाक ख़ाक आलूद हो, फिर कहा: उसकी नाक ख़ाक आलूद हो, फिर कहा: उसकी नाक ख़ाक आलूद हो!'' पूछा गया कि किसकी ऐ अल्लाह के रसूल? फ़रमाया, ''(उसकी) जिसने अपने माँ-बाप को, उनमें से एक को या दोनों को

बुढ़ापे की हालत में पाया और फिर (उनकी ख़िदमत करके) जन्नत में दाख़िल न हुआ।''

(मुसलिम)

हज़रत अब्दुल्लाह बिन अम्र (रज़ि॰) बयान करते हैं कि —

''एक आदमी अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) के पास आया और कहा कि मैं हिजरत के लिए आपके हाथ पर बैअत करने आया हूँ और मैं अपने माँ-बाप को रोता छोड़ आया हूँ। नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि तू उनकी तरफ़ वापस लौट जा और (जाकर) उन्हें हँसा जैसे कि उन्हें रुलाया था।''

(अबू दाऊद)

हज़रत अब्दुल्लाह बिन अम्र बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) के पास एक आदमी आया और जिहाद में शामिल होने की इजाज़त माँगी। नबी (सल्ल॰) ने पूछा कि क्या तेरे माँ-बाप ज़िन्दा हैं? उसने जवाब दिया कि जी हाँ! आप (सल्ल॰) ने कहा कि फिर उन्हीं (की ख़िदमत) में (लगे रहकर) जिहाद कर।

(मुसलिम, बुख़ारी)

हज़रत अब्दुल्लाह बिन अम्र (रज़ि॰) ही से रिवायत है कि एक आदमी नबी (सल्ल॰) की ख़िदमत में हाज़िर हुआ और कहा कि मैं अल्लाह से बदला पाने की ख़ाहिश में हिजरत और जिहाद पर आपसे बैअत करता हूँ। नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि क्या तुम्हारे माँ-बाप में से कोई ज़िन्दा है? उसने जवाब दिया कि जी हाँ, बल्कि दोनों ज़िन्दा हैं। नबी (सल्ल॰) ने पूछा कि क्या तू अल्लाह से बदला चाहता है? उसने जवाब दिया कि जी हाँ! (इसपर) नबी (सल्ल॰) ने कहा कि तू अपने माँ-बाप की तरफ़ लौट जा और उनके साथ अच्छी तरह रह। (अल्लाह तुझे बदला देगा)।

(मुसलिम)

माँ-बाप के साथ अच्छे बरताव की अहमियत इसी से ज़ाहिर है कि शिर्क करनेवाले और ग़ैर-मुसलिम माँ-बाप के साथ भी अच्छा बरताव करने का हुक्म दिया गया है।

हज़रत असमा बिन्त अबू बक्र (रज़ि॰) बयान करती हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) के दौर में मेरी माँ मेरे पास आईं और वह मुशरिक थीं। मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) से (इसके बारे में) मालूम किया और कहा कि वह (मुझसे कुछ

हासिल करने की) ख़्वाहिशमनद हैं, तो क्या मैं अपनी माँ से (अच्छा) सुलूक करूँ? आप (सल्ल०) ने कहा कि हाँ, तू अपनी माँ से (अच्छा) सुलूक कर। (बुख़ारी)

लेकिन अगर माँ-बाप शिर्क और कुफ़्र की तरफ़ बुलाएँ तो इस मामले में उनकी बात मानने से मना किया गया है। क़ुरआन में हुक्म दिया गया है —

> "हमने इनसान को अपने माँ-बाप का हक़ पहचानने की ताकीद की है। उसकी माँ ने निढाल पर निढाल होकर उसे अपने पेट में रखा और दो साल उसके दूध छूटने में लगे। (इसी लिए हमने उसे नसीहत की कि) मेरा शुक्र कर और अपने माँ-बाप का शुक्र बजा ला, मेरी ही तरफ़ तुझे पलटना है। लेकिन अगर वे तुझपर दबाव डालें कि मेरे साथ तू किसी ऐसे को साझी ठहराए जिसे तू नहीं जानता तो उनकी बात हरगिज़ न मान! (हाँ) दुनिया में उनके साथ अच्छा बरताव करता रह, मगर पैरवी उस आदमी के रास्ते की कर जिसने मेरी तरफ़ रुजू किया है—।
>
> (क़ुरआन, 31:14,15)

बाक़ी रहे जाइज़ काम तो उनमें माँ-बाप की फ़रमाँबरदारी बहुत ज़रूरी है।

हज़रत अबू बकर (रज़ि०) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने (सहाबा से) फ़रमाया कि मैं तुम्हें यह न बता दूँ कि बड़े-बड़े गुनाहों में से (भी) सबसे बड़े गुनाह कौन-से हैं? सहाबा (रज़ि०) ने कहा कि ज़रूर ऐ अल्लाह के रसूल! आप (सल्ल०) ने फ़रमाया कि अल्लाह के साथ शिर्क करना और माँ-बाप की नाफ़रमानी करना। (इस हदीस के रावी) बयान करते हैं कि आप (सल्ल०) तकिया लगाए हुए थे, (फिर उठकर) बैठ गए और फ़रमाया कि झूठी गवाही देना या (फ़रमाया) झूठ बोलना। फिर अल्लाह के रसूल (सल्ल०) यही बात करते रहे यहाँ तक कि हमने कहा कि काश कि हुज़ूर (सल्ल०) ख़ामोशी फ़रमाते! (तिरमिज़ी)

इस हदीस से साफ़ पता चलता है कि माँ-बाप की नाफ़रमानी बहुत बड़े-बड़े गुनाहों में से है।

हज़रत अबू सईद ख़ुदरी (रज़ि०) बयान करते हैं कि एक आदमी यमन से हिजरत करके अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के पास आया। आप (सल्ल०) ने उससे मालूम किया कि क्या यमन में तेरा कोई है? उसने जवाब दिया कि मेरे-बाप हैं।

आपने पूछा कि क्या उन्होंने तुम्हें (हिजरत करके यहाँ आने की) इजाज़त दी है? उसने जवाब दिया कि नहीं । आप (सल्ल॰) ने कहा कि उनकी तरफ़ लौट जा और उनसे इजाज़त माँग और अगर वे तुम्हें इजाज़त दे दें तो जिहाद कर, नहीं तो उन्हीं के साथ नेकी कर । (अबू दाऊद)

हज़रत अब्दुल्लाह बिन अम्र (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया: कबीरा (बड़े) गुनाहों में से एक यह है कि कोई शख़्स अपने माँ-बाप को गाली दे । सहाबा (रज़ि॰) ने मालूम किया कि ऐ अल्लाह के रसूल ! भला कोई अपने माँ-बाप को भी गाली देता है? आप (सल्ल॰) ने जवाब दिया कि हाँ, यह किसी के बाप को गाली देता है तो फिर वह (दूसरा आदमी उसके जवाब में) इसके बाप को गाली देता है । यह किसी की माँ को गाली देता है तो वह इसकी माँ को गाली देता है । (इस तरह उसने मानो खुद ही अपने माँ-बाप को गाली दी । न यह किसी के माँ-बाप को गाली देता, न वह इसके माँ-बाप को गाली देता ।)

(तिरमिज़ी)

2. माँ के बारे में ख़ास हिदायतें

माँ-बाप दोनों ही बच्चों को पालने-पोसने में बहुत तकलीफ़ उठाते हैं, लेकिन माँ की तकलीफ़ बेशक बाप की तकलीफ़ से ज़्यादा होती है । इसलिए इस्लाम में बाप के मुक़ाबले में माँ के हुक़ूक़ पर ज़्यादा ज़ोर दिया गया है ।

अल्लाह तआला ने क़ुरआन में फ़रमाया —
"हमने इनसान को हिदायत की कि वह अपने माँ-बाप के साथ नेक बरताव करे, उसकी माँ ने तकलीफ़ उठाकर उसे पेट में रखा और तकलीफ़ उठाकर ही उसे जना और उसके हमल (गर्भावस्था) और दूध छुड़ाने में तीस महीने लग गए ।" (क़ुरआन, 46:15)

अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने भी वाज़ेह तौर पर माँ के हुक़ूक़ पर बहुत ज़्यादा ज़ोर दिया । हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि एक आदमी नबी (सल्ल॰) की ख़िदमत में हाज़िर हुआ और पूछा कि इनसानों में मेरे अच्छे बरताव का सबसे ज़्यादा हक़दार कौन है? नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया : तेरी माँ । उसने मालूम किया : (माँ के बाद) फिर कौन? आप (सल्ल॰) ने बताया कि फिर तेरी माँ । उसने अर्ज़

किया कि फिर (उसके बाद) कौन? आप (सल्ल०) ने फ़रमाया कि फिर तेरी माँ! उसने (चौथी बार) पूछा कि फिर कौन? (अब) आप (सल्ल०) ने फ़रमाया कि तेरा बाप! (मुसलिम)

यह जो नबी (सल्ल०) ने तीन बार माँ का नाम लेने के बाद फिर चौथी बार बाप का नाम लिया, इससे आलिमों ने यह नतीजा निकाला है कि ऐसा करने से नबी (सल्ल०) का मतलब माँ के हुक़ूक़ पर ख़ास ज़ोर देना था।

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) की रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया कि नेक ग़ुलाम को जो किसी की मिल्कियत में हो दुहरा सवाब है। [नबी (सल्ल०) की इस फ़रमान की बिना पर हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते थे कि] मुझे उस ज़ात की क़सम जिसके हाथ में अबू हुरैरा की जान है कि अगर अल्लाह की राह में जिहाद, हज और माँ के साथ नेकी करना न होता तो मैं इसी बात को पसन्द करता कि मुझे ग़ुलामी की हालत में मौत आए ....। (मुसलिम)

अबू सुलामा सलामी (रज़ि०) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया कि मैं वसीयत करता हूँ आदमी को उसकी माँ के बारे में (कि उससे नेक सुलूक करे)। मैं वसीयत करता हूँ आदमी को उसकी माँ के बारे (कि उससेनेक सुलूक करे)। मैं वसीयत करता हूँ आदमी को उसकी माँ के बारे में (कि उससे नेक सुलूक करे)। (फिर फ़रमाया) मैं वसीयत करता हूँ आदमी को उसके बाप के बारे में (कि उससे नेक सुलूक करे)। मैं वसीयत करता हूँ आदमी को उसके मौला (आक़ा) के बारे में जो उसका क़रीबी है (कि उससे नेक सुलूक करे,) अगरचे उससे उसको तकलीफ़ पहुँचे। (इब्न माजा)

लफ़्ज़ 'मौला' अरबी ज़बान में बहुत-से मानी में इस्तेमाल होता है। जैसे— मालिक, आज़ाद किया हुआ ग़ुलाम, दोस्त, रिश्तेदार, चचा, हलीफ़, मददगार वग़ैरह। इस हदीस में भी जैसा कि ज़ाहिर है पहले नबी (सल्ल०) ने तीन बार माँ के बारे में ताकीद की, फिर दूसरों का नाम लिया।

मुआविया बिन जाहिमा (रज़ि०) बयान करते हैं कि (उनके बाप) जाहिमा (रज़ि०) अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुए और कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! मेरा इरादा है कि जिहाद करूँ और मैं (इस सिलसिले में) आपसे मशविरा

लेने आया हूँ। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया क्या तेरी माँ है? उन्होंने जवाब दिया कि जी हाँ! आप (सल्ल०) ने फ़रमाया कि फिर उस (की ख़िदमत) को ज़रूरी समझ, क्योंकि जन्नत उसके क़दमों के पास है। (मिशकात)

हज़रत मुग़ीरा (रज़ि०) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया कि बेशक अल्लाह ने तुमपर हराम कर दिया है, माओं की नाफ़रमानी करना और (हक़दारों के हक़ों को) रोकना और (जिस चीज़ पर हक़ न हो उसको) माँगना और लड़कियों को ज़िन्दा गाड़ना, और अल्लाह ने तुम्हारे लिए नापसंद समझा है बिला वजह बहस व मुबाहिसे, और सवाल की ज़्यादती और माल को बरबाद करना। (बुख़ारी)

इस्लाम में रिज़ाअत के रिश्ते को भी बहुत एहतिराम हासिल है। रिज़ाअत का मतलब है — 'दूध पिलाना'। बच्चे को माँ के अलावा अगर किसी और औरत ने दूध पिलाया हो तो वह उसकी 'रज़ाई माँ' कहलाएगी वह उसके लिए तक़रीबन ऐसी ही मुहतरम (आदरणीय) होगी जैसी अपनी सगी माँ।

अबू तुफ़ैल (रज़ि०) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को देखा कि आप (मक़ाम) जिइर्राना में गोश्त बाँट रहे थे। मैं उस ज़माने में लड़का ही था जो ऊँट की हड्डियाँ उठाया करता था। इतने में एक औरत आई, यहाँ तक कि नबी (सल्ल०) के क़रीब पहुँच गई। नबी (सल्ल०) ने (उसको इतनी इज़्ज़त दी कि) उसके लिए अपनी चादर बिछा दी और वह उसपर बैठ गई। मैंने पूछा कि यह औरत कौन है? तो लोगों ने बताया कि ये वह औरत हैं जिन्होंने नबी (सल्ल०) को दूध पिलाया था। (अबू दाऊद)

हज़रत उवैस (रह०)ने नबी (सल्ल०) का ज़माना पाया था लेकिन वे नबी (सल्ल०) से मुलाक़ात न कर सके इसलिए सहाबी का मरतबा आपको हासिल न हो सका। उस वक़्त आपकी माँ ज़िन्दा थीं, उनके अकेले रह जाने के ख़याल से आप (रह०) सफ़र करके नबी (सल्ल०) तक न आ सके। माँ की देखभाल ही के ख़याल से आप (रह०) ने उनकी ज़िन्दगी में हज भी नहीं किया। उनकी मौत के बाद हज करने का मौक़ा मिला।

हज़रत अली (रज़ि०) के बेटे मुहम्मद बिन हनफ़िया (रह०) अपनी माँ की बड़ी

ख़िदमत किया करते थे, अपने हाथों से उनके बालों में मेंहदी लगाते थे, कंघी करते थे, चोटी (बाल) गूँधते थे। एक बार घर से बाहर निकले तो हाथ में मेंहदी का असर था। लोगों ने पूछा तो कहा कि माँ के बालों में ख़िज़ाब लगा रहा था।

मशहूर सूफ़ी हज़रत बायज़ीद बिस्तामी (रह॰) कहते हैं कि मैंने माँ की ख़िदमत से बढ़कर किसी दूसरी चीज़ से फ़ायदा नहीं पाया। एक रात माँ ने मुझसे पानी माँगा। मैंने बरतन में देखा तो ख़ाली था, फिर घड़ा देखा तो उसमें भी पानी नहीं था। मैं दौड़ता हुआ नदी पर गया और वहाँ से पानी लाया, मगर इस बीच माँ सो चुकी थीं। मैं पानी का बरतन हाथ में लिए हुए सारी रात इस इन्तिज़ार में खड़ा रहा कि वे जागें तो पानी पेश करूँ। सख़्त सर्दी का मौसम था। मेरा हाथ ठिठुर गया, लेकिन मैंने माँ को जगाना ठीक न समझा। जब वे नींद से जागीं तो मुझे इस हालत में खड़ा देखकर बहुत खुश हुईं और फिर पानी पीकर मुझे ढेर सारी दुआएँ दीं। उसी दिन से मैंने देखा कि मेरा दिल (क़ल्ब) अल्लाह के नूर से भर गया।

मशहूर ताबिई इमाम इब्न सीरीन (रह॰) अपनी माँ का बेइन्तिहा एहतिराम करते और उनकी ख़ाहिशों को पूरा करने का बहुत ध्यान रखते थे। उनकी बहन का बयान है कि उनकी माँ हिजाज़ की रहनेवाली थीं, इसलिए उन्हें रंगीन, अच्छे और क़ीमती कपड़ों का बहुत शौक़ था। इब्न सीरीन (रह॰) इस शौक़ का इतना ख़याल रखते थे कि जब माँ के लिए कपड़ा ख़रीदते तो कपड़े की अच्छाई और नरमी को देखते और उसकी मज़बूती का कुछ ख़याल न करते। ईद के लिए खुद अपने हाथों से माँ के लिए कपड़े रंगते। मैंने कभी उनको माँ के मुक़ाबले में आवाज़ ऊँची करते नहीं सुना। जब माँ से बातें करते तो इतनी धीमी आवाज़ के साथ करते मानो कोई राज़ की बात कह रहे हैं — 'तबक़ात इब्न साद' में इमाम इब्न सीरीन (रह॰) के हालात में बयान हुआ है कि जब आप माँ से बातें करते तो आवाज़ इतनी धीमी होती कि अंजान आदमी उन्हें बीमार समझता था।

मशहूर ताबिई मिसअर बिन कदाम (रह॰) के हालात में बयान हुआ है कि उनकी माँ बहुत इबादतगुज़ार औरत थीं, वे मसजिद में नमाज़ पढ़ती थीं। अकसर दोनों माँ-बेटे एक साथ मसजिद जाते। मिसअर माँ के लिए नमदा (ऊनी बिछौना) उठाए होते। मसजिद पहुँचकर माँ के लिए नमदा बिछा देते जिसपर खड़ी होकर वे

नमाज़ पढ़तीं, मिसअर अलग मसजिद के दूसरे हिस्से में नमाज़ में मशग़ूल हो जाते। नमाज़ पढ़कर एक जगह बैठ जाते और हदीस सुननेवालों को, जो उनके आस-पास इकट्ठा हो चुके होते, हदीसें सुनाते रहते, फिर जब माँ इबादत कर चुकी होतीं तो मिसअर दर्स ख़त्म करके माँ का नमदा उठाते और उनके साथ घर वापस आ जाते।

3. बाप के बारे में हिदायतें

हालाँकि माँ के साथ अच्छे बरताव का ख़ास तौर पर हुक्म दिया गया है, लेकिन बाप के हक़ों को भी असरदार लफ़्ज़ों में बयान किया गया है।

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया –

"कोई बेटा बाप का हक़ अदा नहीं कर सकता, सिवाय इसके कि बाप को गुलाम पाए और वह उसे ख़रीदकर आज़ाद कर दे।" (तिरमिज़ी)

हज़रत अब्दुल्लाह बिन अम्र (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया –

"रब की खुशी बाप की खुशी में है और रब का गुस्सा बाप के गुस्से में है।" (तिरमिज़ी)

तिरमिज़ी में ही एक और हदीस बयान हुई है जिसमें हज़रत अबू दरदा (रज़ि॰) अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) से नक़ल करते हैं कि बाप जन्नत के दरवाज़ों में से बेहतर दरवाज़ा है।

इन हदीसों से ज़ाहिर हो जाता है कि बाप के औलाद पर बहुत बड़े-बड़े एहसानात हैं। औलाद के लिए उसके एहसानों का बदला चुकाना बहुत ही मुशकिल है। और जो औलाद बाप को खुश रखे, उसे खुदा की खुशी मिल जाती है और बाप के हक़ों को अदा करके, उससे अच्छे बरताव करके इनसान जन्नत का हक़दार बन जाता है।

4. माँ-बाप के लिए दुआ करना

माँ-बाप के हुक़ों में से एक हक़ यह भी है कि औलाद उनकी भलाई के लिए दुआ करती रहे। मालिक बिन रबी'अ (रज़ि॰) बयान करते हैं कि हम अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) के पास बैठे थे कि (क़बीला) बनू सलमा का एक आदमी आ गया और उसने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल (सल्ल॰)! मेरे माँ-बाप का इन्तिक़ाल हो जाने के बाद भी क्या उनके साथ भलाई करने की कोई शक्ल बाक़ी रह जाती है कि इस तरह मैं उनके साथ भलाई करूँ। नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि हाँ (क्यों नहीं, माँ-बाप के इन्तिक़ाल के बाद भी उनके साथ भलाई की जा सकती है, और उसकी शक्लें ये हैं) –

- उनके लिए दुआ करना।
- उनके लिए बख़्शिश माँगना।
- (उनके बाद) उनकी वसीयत या वादे को पूरा करना।
- उनके ताल्लुक़ से जो रिश्ते हों, उनका ख़याल रखना और उनका हक़ अदा करना।
- उनके दोस्तों की इज़्ज़त और ख़िदमत करना। (अबू दाऊद)

अगर कोई आदमी ज़िन्दगी में माँ-बाप का नाफ़रमान रहा हो और इसी हालत में माँ-बाप का इन्तिक़ाल हो जाए, बाद में वह अपने किए पर पछताए तो अब भी नाउम्मीद होने की कोई बात नहीं। सच्चे दिल से अल्लाह से अपने गुनाहों की माफ़ी माँगे और माँ-बाप की मग़फ़िरत और दर्जों की बुलन्दी के लिए ज़्यादा से ज़्यादा दुआ करे।

हज़रत अनस (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि किसी शख़्स के माँ-बाप का या दोनों में से किसी एक का इन्तिक़ाल हो जाता है और (हालत यह होती है कि) वह उनका नाफ़रमान होता है। (फिर उनके बाद उसे अपनी ग़लती का एहसास होता है) तो वह लगातार उनके लिए भलाई की दुआ करता रहता है और उनके लिए बख़्शिश माँगता रहता है, यहाँ तक कि अल्लाह उसे नेकी करनेवालों में लिख लेता है। (मिशकात)

5. माँ-बाप की बददुआ से बचना

माँ-बाप के दिलों में अल्लाह तआला ने औलाद के लिए जो क़ुदरती मुहब्बत पैदा कर दी है उसका नतीजा यह है कि औलाद के हाथों तकलीफ़ उठाकर भी माँ-बाप यह नहीं चाहते कि उनके बच्चों को किसी परेशानी का मुक़ाबला करना पड़े, इसलिए कम ही ऐसा होता है कि माँ-बाप बच्चों को बददुआ दें। लेकिन अगर बच्चे माँ-बाप को इतना सताएँ कि वे उन्हें बददुआ देने पर उतर आएँ तो फिर यह दुआ बहुत जल्द क़बूल हो जाती है।

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि तीन दुआएँ ऐसी हैं जो (ज़रूर) क़बूल होती हैं, उनके क़बूल होने में बिलकुल शक नहीं —

(1) मज़लूम (जिसपर ज़ुल्म हुआ हो) की दुआ
(2) मुसाफ़िर की दुआ, और
(3) बाप की अपने बेटे के लिए बददुआ। (तिरमिज़ी)

हज़रत अबू बकरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि सारे गुनाहों में से अल्लाह जो गुनाह चाहे माफ़ कर देता है सिवाय माँ-बाप की नाफ़रमानी (के गुनाह) के कि उसकी सज़ा ख़ुदा नाफ़रमानी करनेवालों की मौत से पहले उसकी ज़िन्दगी में ही उसे दे देता है। (मिशकात)

6. माँ-बाप के रिश्तेदारों से अच्छा बरताव

माँ-बाप के साथ अच्छा बरताव करने की एक शक्ल यह भी है कि उनके रिश्तेदारों, दोस्तों और मिलने-जुलनेवालों से अच्छा बरताव किया जाए। ऊपर एक हदीस बयान हो चुकी है कि जब नबी (सल्ल॰) से मालूम किया गया कि क्या माँ-बाप के इन्तिक़ाल के बाद भी उनसे नेकी की जा सकती है तो नबी (सल्ल॰) ने उसकी कई शक्लें बताईं जिनमें से एक यह भी थी कि उन लोगों से अच्छा बरताव किया जाए जो माँ-बाप के ज़रिये से रिश्तेदार बने हों। ऐसी ही और हदीसें भी मिलती हैं जिनमें नबी (सल्ल॰) ने माँ-बाप के रिश्तेदारों से अच्छा बरताव करने की ताकीद की है।

हज़रत अब्दुल्लाह बिन दीनार हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर के बारे में बयान करते हैं कि मक्का के रास्ते में उन्हें एक बद्दू मिला। हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर ने उसे सलाम किया और जिस गधे पर ख़ुद सवार थे उसपर उसे सवार कर दिया और जो अमामा (पगड़ी) सिर पर बाँधे हुए थे उसे दे दिया। इब्न दीनार कहते हैं कि हमने कहा कि अल्लाह आपके साथ भलाई करे! (आपने उसे इतना कुछ क्यों दे दिया) ये देहाती लोग हैं और ये थोड़ी चीज़ पर भी राज़ी हो जाते हैं। (इसपर) हज़रत अब्दुल्लाह ने जवाब दिया कि इस बद्दू का बाप (मेरे बाप) हज़रत उमर बिन ख़त्ताब (रज़ि॰) का दोस्त था और मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) को कहते हुए सुना है कि सबसे बड़ी नेकी यह है कि बेटा अपने बाप के दोस्तों से अच्छा बरताव करे।

(तिरमिज़ी)

7. विरासत का हक़

माँ-बाप को औलाद के मामले में जो हक़ हासिल हैं उनमें एक 'विरासत का हक़' भी है। अगर कोई बच्चा माँ-बाप की ज़िन्दगी ही में मर जाए तो उसके वारिसों में उसके माँ-बाप भी होते हैं। मरनेवाला आदमी अगर औलादवाला हो तो माँ-बाप दोनों में से हर एक को विरासत का छठा हिस्सा मिलेगा।

8. एक अफ़सोसनाक कशमकश

क़ुरआन और हदीस की रू से माँ-बाप को जो हुक़ूक़ दिए गए हैं उनपर नज़र डाल लेने के बाद एक और ज़रूरी बात पर ग़ौर करना है और वह यह है कि बहुत-से घराने ऐसे भी हैं जहाँ माँ-बाप और औलाद के आपसी ताल्लुक़ात में गहरा तनाव पैदा हो जाता है और दोनों के दिलों में एक-दूसरे के ख़िलाफ़ इतनी शिकायतें पैदा हो जाती हैं और दिल एक-दूसरे से इतने दूर हो जाते हैं कि किसी तरह भी वे मामले पर ठंडे दिल से ग़ौर करने और एक-दूसरे की बात को समझने और उसपर हमदर्दी से ग़ौर करने के लिए तैयार नहीं होते। जिस घराने में भी बदक़िस्मती से ये हालात पैदा हो जाते हैं वहाँ माँ-बाप और औलाद दोनों ही की ज़िन्दगी अजीरन हो जाती है, और चूँकि आम तौर पर दोनों में से कोई भी यह बात मानने को तैयार नहीं होता कि नाइनसाफ़ी उसकी तरफ़ से हुई है, इसलिए आपसी रंजिशों का एक लम्बा सिलसिला चल पड़ता है जो कभी-कभी आपसी ताल्लुक़ात के ख़त्म हो जाने का

ज़रिया बन जाता है, जो अपने आपमें एक बहुत बड़ा गुनाह है ।

इस अफ़सोसनाक हालात की कई वजहें होती हैं और उन सबका यहाँ जायज़ा लेना बहुत मुशकिल है । मुख़्तसर यह है कि अकसर घरों में इन आपसी ताल्लुक़ात की ख़राबी की वजह यही होती है कि माँ-बाप औलाद को एक ख़ास रास्ते पर चलाना चाहते हैं मगर औलाद किसी और रास्ते को ठीक समझती है । इसलिए माँ-बाप को औलाद से शिकायतें पैदा हो जाती हैं और औलाद को माँ-बाप से ।

ज़्यादातर घरों में तो अब भी हालत यही होती है कि माँ-बाप जवान औलाद को दीनी और अख़लाक़ी उसूलों का पाबन्द बनाना चाहते हैं, मगर औलाद नहीं मानती, इसलिए उनके आपसी ताल्लुक़ात ख़राब हो जाते हैं । इसके बावजूद यह भी एक हक़ीक़त है कि अब उन घरों की कमी नहीं रही जहाँ औलाद के दिलों में तो इस्लाम की मुहब्बत होती है और वह दीनी और अख़लाक़ी उसूलों की पाबन्दी करना चाहती है, मगर दुनियापरस्त माँ-बाप के दिलों में ख़तरा पैदा हो जाता है कि नेकी का रवैया अपनाकर उनके बच्चे दुनिया की तरक़्क़ी की दौड़ में पीछे रह जाएँगे । इसलिए वह उनके दीनी और अख़लाक़ी उसूलों की पाबन्दी की इतनी ज़्यादा मुख़ालफ़त करते हैं कि मानो उनकी औलाद कोई जुर्म कर रही है । कई ऐसी नौउम्र लड़कियाँ देखने में आईं जो शर्म और हया का रवैया इख़्तियार करना चाहती थीं, मगर माओं ने उनकी बहुत मुख़ालफ़त की और उन्हें बुरी तरह लानत-मलामत करने लगीं कि इस तरह तो तुम्हें अच्छे रिश्ते ही नहीं मिलेंगे । ऐसे ही बहुत-से नौउम्र लड़के भी हैं जिनकी इस्लाम-दोस्ती और दीन-पसन्दी उनके दुनिया परस्त माँ-बाप के लिए सख़्त तकलीफ़ का ज़रिया बनी हुई है ।

अगर माँ-बाप नेकी की तरफ़ बुलाते हों और बच्चे उस रास्ते को न अपनाते हों तो उन बच्चों को तो इनसान माँ-बाप के हक़ बताए और उन्हें नसीहत करे कि माँ-बाप की बात मानो, मगर जहाँ बच्चे सही रास्ते पर हों लेकिन माँ-बाप उन्हें गुमराही की तरफ़ घसीट रहे हों, वहाँ इनसान क्या करे!

ऐसे इस्लाम-दोस्त बच्चों से यही कहा जा सकता है कि जिस दीन से वे मुहब्बत रखते हैं उसने तो मुशरिक (अनेकेश्वरवादी) और ग़ैर-मुस्लिम माँ-बाप के मामले में भी अच्छे बरताव की ताकीद की है, तो फिर जो माँ-बाप मुसलमान हों चाहे

अमली ज़िन्दगी में उसके हुक्मों की मुख़ालफ़त ही करते हों, उनके साथ अच्छा बरताव तो और भी ज़रूरी होगा। इस्लाम-पसन्द बच्चों के लिए ज़रूरी है कि अपने दुनिया-परस्त माँ-बाप की ज़ियादतियों को सब्र और हिम्मत से बरदाश्त करें। ज़ाहिर है कि उनके जो हुक्म अल्लाह और रसूल (सल्ल०) के हुक्मों के ख़िलाफ़ हैं, वे माने नहीं जा सकते, मगर यह बहुत ज़रूरी है कि उनके सामने बेअदबी करने से पूरी तरह परहेज़ किया जाए और उनके मामले में ज़बान को पूरी तरह क़ाबू में रखने की कोशिश की जाए।

दुनियापरस्त माँ-बाप की इस्लाम-पसन्द औलाद को कुछ बातों का ख़ास ख़याल रखना चाहिए —

एक यह कि जब माँ-बाप कोई ऐसा हुक्म दें जिसे पूरा करना आपके बस में ही न हो या जो अल्लाह और अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के हुक्मों के ख़िलाफ़ हो तो आप वह काम न करें, मगर माँ-बाप के सामने कोई ऐसी बात न करें जिसे बेअदबी कहा जा सके। एक काम नहीं हो सकता तो न कीजिए, मगर यह कहना ज़रूरी नहीं कि हम तो यह काम बिलकुल नहीं करेंगे और आप तो हमें बड़ी ग़लत बातों का हुक्म देते हैं, और आप तो ऐसे और ऐसे करते हैं। इसका यह मतलब नहीं है कि आप ऐसे माँ-बाप को सही रास्ता दिखाने की कोशिश न करें। आप ज़रूर कोशिश करें कि उन्हें गुनाह और सवाब और ग़लत और सही का फ़र्क़ मालूम हो, मगर माँ-बाप के उस दर्जे को जो इस्लाम ने क़ायम किया है, हमेशा नज़रों के सामने रखें और उनपर तबलीग़ भी करें तो अदब और तमीज़ के साथ और ऐसी ज़बान में जो उनके मरतबे और शान के क़ाबिल हो। यह बड़ी अफ़सोस की बात है कि कुछ इस्लाम-दोस्त बच्चों को जब माँ-बाप ग़लत काम का हुक्म देते हैं तो फिर वे भी गुस्से में आ जाते हैं और माँ-बाप के साथ ऐसी ज़बान में बातें करते हैं और ऐसा रवैया अपना लेते हैं जो इस दीन के उसूलों के ख़िलाफ़ होता है जिसकी मुहब्बत की वजह से उनका माँ-बाप से इख़तिलाफ़ हुआ था।

दूसरी याद रखनेवाली बात यह है कि आपकी इस्लाम-पसन्दी और इस्लाम दोस्ती का यह तक़ाज़ा है कि माँ-बाप की ख़िदमत में कोई कोताही न होने दें। इस्लाम ने माँ-बाप की फ़रमाँबरदारी और ख़िदमत दोनों को ज़रूरी ठहराया है।

इसलिए जब आप देखें कि कुछ बातों में उनकी फ़रमाँबरदारी न करना ज़रूरी है तो फिर अच्छे बरताव और ख़िदमत पर और भी ज़्यादा ज़ोर दें । ख़िदमत माली (आर्थिक) और जिस्मानी (शारीरिक) दोनों तरह की होती है । अपने हालात और साधन के लिहाज़ से इन दोनों तरह की ख़िदमत में पूरा ज़ोर लगा दें, ताकि अगर माँ-बाप एक मामले में आपसे नाराज़ हैं तो उस ख़िदमत की वजह से खुश भी हो जाएँ । हो सकता है कि आपकी ख़िदमत उनके दिलों को नर्म कर दे और उसका नतीजा यह हो कि आख़िरकार वे आपके नज़रियों को भी मान लें या कम से कम उनकी मुख़ालिफ़त करना छोड़ दें । इसलिए माँ-बाप कितने ही ग़लत हुक्म क्यों न दें और नज़रियों के इख़तिलाफ़ की वजह से आपसे कितनी ही सख़्ती का सुलूक क्यों न करें, आपको उनके साथ अच्छा बरताव करने और उनकी ख़िदमत करने की कोशिश करते ही रहना है और इसमें सुस्ती नहीं करनी है ।

तीसरी ज़रूरी बात यह है कि कभी इस बात को न भूल जाएँ कि दिल बदलना इनसान का नहीं, अल्लाह का काम है और औलाद होने की वजह से आपके लिए ज़रूरी है कि आप अपने माँ-बाप के लिए भलाई की दुआ करते रहें । अब भलाई की दुआ सिर्फ़ यही नहीं कि आप उनकी आख़िरत की बख़शिश के लिए दुआ करते रहें, बल्कि भलाई की दुआ में यह भी शामिल है कि आप उनकी हिदायत के लिए दुआ करते रहें, ताकि वे ज़िन्दगी में ऐसा रवैया अपनाएँ जो उन्हें आख़िरत की कामयाबी दिलाने में मददगार हो ।

याद रखें कि आपके माँ-बाप के नज़रिये जो भी हों, वे अल्लाह के बाद आपके सबसे बड़े मोहसिन (उपकारी) हैं । अपने इन एहसान करनेवोलों के मामले में अदब और इज़्ज़त के रवैए को क़ायम रखिए । उनके साथ अच्छे बरताव करने में कोई कमी न कीजिए और उनके सच्चे भलाई चाहनेवाले बनकर रहिए, और सबसे बड़ी भलाई चाहना यही है कि अदब और तमीज़ से उन्हें सही रास्ते की तरफ़ लाने की कोशिश करते रहिए और उनकी हिदायत पाने और दीन व दुनिया दोनों में कामयाब होने की दुआ जारी रखिए ।

औलाद के हक़

इस्लाम के सिवा दूसरे मज़हबों और ज़िन्दगी गुज़ारने के तरीक़ों का मुताला (अध्ययन) करने से पता चलता है कि उनमें माँ-बाप के हक़ (अधिकार) पर तो ज़ोर दिया गया है, मगर औलाद के हक़ की कोई बात नहीं कही गई है हालाँकि अगर देखा जाए तो बच्चा पहले अपने ज़रूरी हक़ पूरे करवाता है, फिर एक मुद्दत के बाद जाकर वह इस क़ाबिल होता है कि माँ-बाप के हक़ को पूरा कर सके । इसलिए दूसरे मज़हबों के मुक़ाबले इस्लाम में औलाद के हक़ को साफ़, तौर पर बयान कर दिया गया है ।

1. परवरिश

बच्चों पर माँ-बाप का पहला हक़ तो यही है कि वे अपने साधनों और कोशिशों की हद तक अच्छे से अच्छे तरीक़े से औलाद को पालें और उनकी ज़िन्दगी को बाक़ी रखने और उनके जिस्म की परवरिश के लिए जो कुछ करना ज़रूरी हो उससे लापरवाही न बरतें और उन्हें ज़िन्दा रहने के हक़ से महरूम न करें ।

हालाँकि अल्लाह तआला ने माँ-बाप के दिलों में ममता और मुहब्बत के जज़्बात और जोश इस तरह डाल दिए हैं कि वे ख़ुशी से बच्चों के लिए तकलीफ़ उठाते हैं, मगर यह भी एक सच्चाई है कि इनसानी इतिहास में बहुत-से दौर ऐसे आए हैं जब औलाद या बच्चों को क़त्ल करने की घिनावनी रस्म व रिवाज जारी रहा है और यह दौर भी अपने इल्म (ज्ञान) और तहज़ीब (संस्कृति) के बड़े ऊँचे-ऊँचे दावों के बावजूद इससे ख़ाली नहीं है । दुनिया में ऐसी तहज़ीबें रही हैं जिनमें बाप को यह हक़ हासिल था कि अपने बच्चों को क़त्ल कर दे और फिर उस क़त्ल पर कोई क़ानूनी पूछ-ताछ भी नहीं होती थी । पुरानी अरब तहज़ीब इसकी एक मिसाल है जहाँ बेटियों को ज़िन्दा दफ़्न कर दिया जाता था और बेटों को क़ुरबानगाहों पर भेंट चढ़ाया जाता था ।

माँ-बाप अपनी औलाद को क्यों क़त्ल करते रहे हैं, इसकी कई वजहें बताई जाती हैं। पहली वजह मज़हबी है। मुशरिक और बुतपरस्त क़ौमों में रिवाज रहा है कि वे देवी-देवताओं की खुशी हासिल करने के लिए अपने बच्चों को उनके सामने ज़बह करते थे। मन्नतें मानी जाती थीं कि अगर फ़लाँ काम हो गया तो अपने बच्चे की कुरबानी (बलि) देंगे, और इस तरह उन मासूमों की जानें ज़ालिमाना तौर पर ली जाती थीं।

इस्लाम में एक तरफ़ तो तौहीद (एकेश्वरवाद) पर ज़ोर दिया गया जिससे कुफ़्र, शिर्क और अल्लाह से हटकर दूसरों के आगे चढ़ावा चढ़ाने और उनकी चौखटों पर इनसानों या जानवरों की कुरबानी देने की जड़ ही कट जाती है और दूसरी तरफ़ अल्लाह ने इनसानी जान को बहुत ज़्यादा बाइज़्ज़त ठहरा दिया है। कुरआन मजीद में कहा गया है —

> "जिसने किसी इनसान को खून के बदले या ज़मीन में बिगाड़ पैदा करने के सिवा किसी और वजह से क़त्ल किया उसने मानो सारे इनसानों को क़त्ल कर दिया।"
>
> (कुरआन, 5:32)

औलाद के क़त्ल की दूसरी वजह भुखमरी और रोज़ी की कमी बताई जाती है। अरब में खाने-पीने की चीज़ों का मसला ख़ास तौर पर बहुत संगीन था, क्योंकि वह इलाक़ा कुल मिलाकर कोई उपजाऊ इलाक़ा नहीं था। इस कमी का हल उनके नज़दीक यही था कि औलाद ख़ासकर बेटियों को ज़िन्दा ही नहीं रहने दिया जाए, क्योंकि वे खाएँगी तो बेटों ही की तरह मगर ज़रूरत पड़ने पर जंग के मैदान में जाकर लड़ेंगी नहीं — इस तरह वे नासमझ लोग खुद ही अपनी औलाद के अन्नदाता बन बैठे थे। कुरआन मजीद ने इस जाहिलाना ख़याल को रद्द करते हुए यह बात साफ़ कर दी कि औलाद के अन्नदाता उसके माँ-बाप नहीं, बल्कि खुद उन 'अन्नदाता' बन बैठनेवालों का अन्नदाता भी उनका ख़ालिक़ (सृष्टा) ही है। अल्लाह तआला का इरशाद है —

> "अपनी औलाद को ग़रीबी के डर से क़त्ल न करो। हम उन्हें भी रोज़ी देते हैं और तुम्हें भी। हक़ीक़त में उनका क़त्ल एक बहुत बड़ा जुर्म है।"
>
> (कुरआन, 17:31)

फिर फ़रमाया —

'ज़मीन में चलनेवाला कोई जानदार ऐसा नहीं है जिसकी रोज़ी अल्लाह के ज़िम्मे न हो।'' (क़ुरआन, 11:6)

इसलिए रोज़ी की कमी के डर से औलाद का क़त्ल करना ज़ुल्म ही नहीं बेवक़ूफ़ी भी है। क्योंकि अल्लाह जिस हिसाब से इनसानी आबादी को बढ़ाता है उसी हिसाब से रोज़ी के साधन में भी बढ़ोत्तरी करता जाता है। इनसान का काम यह नहीं है कि इनसानी जानों को ख़त्म करे, बल्कि यह है कि अपने अल्लाह के दिए हुए इल्म से काम ले और अल्लाह के पैदा किए हुए रोज़ी के साधनों का पता लगाए।

औलाद के क़त्ल की तीसरी वजह यह बताई जाती है कि अरबों के यहाँ आए दिन जंग और लड़ाई होती रहती थी। इन जंगों में ख़ून-ख़राबा कम और लूट-मार ज़्यादा होती थीं। आपस में लड़नेवाले क़बीले के लोग एक-दूसरे के जानवर और औरतों को उठाकर ले जाते थे और फिर ऐसी हालत में बेटियाँ उनके लिए बेइज़्ज़ती और शर्म की वजह बनती थीं। इसके अलावा यह भी कहा जाता है कि अरबवाले इस बात को भी अपनी बेइज़्ज़ती समझते थे कि कोई उनका दामाद बन जाए। यही जाहिलाना और ज़ालिमाना नज़रिया हिन्दूस्तान की कुछ क़ौमों में पाया जाता था और वे इस डर के मारे कि कोई आदमी उनका दामाद कहलाएगा, बेटियों को क़त्ल कर दिया करती थीं। इस बेवक़ूफ़ी की सोच व फ़िक्र ने न जाने कितनी मासूम जानों को क़त्ल किया और कितने बापों के दिलों से 'बाप की मुहब्बत' का क़िला ढाहकर उन्हें क़त्ल करनेवालों की लाइन में लाकर खड़ा कर दिया। इस्लाम इस जिहालत को बहुत नफ़रत की नज़र से देखता है और इसे एक बड़ा भयानक जुर्म ठहराता है।

अल्लाह का फ़रमान है —

''और जब ज़िन्दा गाड़ी हुई लड़की से पूछा जाएगा कि वह किस जुर्म में मारी गई।'' (क़ुरआन, 81:8-9)

''इस आयत के बयान करने के अन्दाज़ में एक ऐसी ग़ज़बनाकी पाई जाती है जिससे ज़्यादा सख़्त ग़ज़बनाकी का तसव्वुर नहीं किया जा सकता। बेटी को ज़िन्दा गाड़ देनेवाले माँ-बाप अल्लाह की निगाह में

ऐसे नफ़रत के क़ाबिल होंगे कि उनको मुख़ातिब करके पूछा जाएगा कि तुमने इस मासूम को क्यों क़त्ल किया, बल्कि उनसे नज़रें फेरकर मासूम बच्ची से पूछा जाएगा कि तू बेचारी आख़िर किस जुर्म में मारी गई और वह अपनी दास्तान सुनाएगी कि ज़ालिम माँ-बाप ने उसके साथ क्या ज़ुल्म किया और किस तरह उसे ज़िन्दा दफ़्न कर दिया।''

(तफ़हीमुल क़ुरआन, हिस्सा-6, पेज-364)

इन सारे हुक्मों की रौशनी में माँ-बाप की पहली ज़िम्मेदारी यही साबित होती है कि अगर अल्लाह ने उन्हें औलाद की नेमत दी है तो वे उनकी परवरिश को अपनी असल ज़िम्मेदारी समझें और अपने साधनों और कोशिशों की हद तक उन्हें अच्छी तरह पालें-पोसें।

2. दूध पिलाना और सरपरस्ती करना

बच्चे का दूसरा हक़ यह है कि जब तक वह खाना खाने के क़ाबिल न हो जाए, माँ उसे दूध पिलाए और जब तक वह नाबालिग़ है, बाप उसकी ज़रूरतें पूरी करे। अगर बच्चे की माँ किसी वजह से उससे अलग हो चुकी हो, जैसे — मर चुकी हो या तलाक़ की वजह से बच्चे से अलग हो गई हो, तो फिर बच्चे के बाप का यह फ़र्ज़ बनता है कि उसको दूध पिलाने का इंतिज़ाम करे, चाहे वह उसकी अपनी माँ ही से गुज़ारिश करे कि वह बच्चे को दूध पिला दे या किसी और औरत से दूध पिलवाए। फिर जो औरत भी दूध पिलाएगी, उसका खाना-कपड़ा बच्चे के बाप के ज़िम्मे होगा। दूध पिलाने की मुद्दत क़ुरआन के मुताबिक़ दो साल है। दो साल के बाद बच्चा आम तौर पर इस क़ाबिल हो जाता है कि दूसरी चीज़ें खा सके। हाँ, अगर माँ-बाप आपसी मशविरे से दूध छुड़ाना चाहें तो उसकी इजाज़त है।

बच्चे को दूध पिलाकर उसकी ज़िन्दगी को बाक़ी रखना इतना बड़ा और पाक अमल है कि जो औरत किसी बच्चे को दूध पिलाए, वह अगर उसकी माँ न भी होगी तो भी उसका रुत्बा माँ के क़रीब-क़रीब हो जाएगा। उसे उस बच्चे की रज़ाई माँ (दूध पिलानेवाली माँ) कहा जाएगा और दूध का यह रिश्ता सिर्फ़ दूध पिलानेवाली तक न रहेगा, बल्कि उसके दूसरे रिश्तेदारों तक भी पहुँचेगा। उसका शौहर बच्चे का रज़ाई बाप होगा। उसकी औलाद बच्चे के दूध शरीक बहन-भाई होंगे। उसके

माँ-बाप बच्चे के रज़ाई नाना-नानी होंगे। उसके भाई-बहन बच्चे के मामूँ-ख़ाला होंगे। उसके शौहर के भाई-बहन बच्चे के रज़ाई चचा होंगे, वग़ैरह। और फिर ख़ानदान के जिन-जिन रिश्तों में निकाह हराम है, रज़ाअत (दूध पिलाने) के इन रिश्तों में भी निकाह हराम होगा। जैसे — किसी बच्चे की शादी अपनी रज़ाई ख़ाला से नहीं हो सकती, न किसी बच्ची की शादी अपने रज़ाई मामूँ या रज़ाई चचा से हो सकती है। दूध पिलाने का रिश्ता बहुत बड़ा और पाक है और अच्छे बरताव और इज़्ज़त व एहतिराम का हक़दार भी।

उमर बिन साइब बयान करते हैं कि मुझ तक यह रिवायत पहुँची है कि एक दिन अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) बैठे थे कि आपके रज़ाई बाप आ गए। आपने उनके लिए अपने कपड़े का एक हिस्सा बिछा दिया। वे उसपर बैठ गए। फिर आपकी रज़ाई माँ (दूध माँ) आ गईं तो आपने अपने कपड़े के दूसरी तरफ़ का आधा हिस्सा बिछा दिया। वे (भी) उसपर बैठ गईं। फिर आप (सल्ल॰) का दूध शरीक भाई आ गया, तो आप (सल्ल॰) खड़े हो गए और उसको अपने सामने बैठा लिया।

(अबू दाऊद)

बच्चे को दूध पिलाने का बन्दोबस्त करने के अलावा यह भी बाप ही का फ़र्ज़ है कि बच्चे की परवरिश करे। अगर बाप न होगा तो दर्जा-ब-दर्जा दूसरे वारिसों की यह ज़िम्मेदारी होगी और बचपन के बीच बच्चे का यह हक़ क़ायम रहेगा कि ज़िम्मेदार लोग उसकी ज़िन्दगी की ज़रूरतों का बोझ उठाए रहें। इससे यह बात साफ़ हो जाती है कि जो बाप अपने नाबालिग़ बच्चों की परवरिश करने से जान बचाते हैं वे कितनी बड़ी ग़लती करते हैं। ऐसा भी देखा गया है कि बीवियों से ताल्लुक़ात ख़राब हो गए तो न सिर्फ़ बीवियों का ख़र्च रोक लिया गया, बल्कि साथ-साथ बच्चों का ख़र्च भी बन्द कर दिया गया।

3. इनसाफ़ और बराबरी

माँ-बाप पर बच्चे का हक़ यह भी है कि वे उसके साथ इनसाफ़ करें। बच्चों के साथ नाइनसाफ़ी करने की कई शक्लें हैं। कभी औलाद एक से ज़्यादा माओं से होती है तो बाप का रुझान जिस बीवी की तरफ़ ज़्यादा होता है वह उसके बच्चों का ज़्यादा ध्यान रखता है और दूसरे बच्चों को नज़रअन्दाज़ कर देता है। कभी ऐसा भी

होता है कि बीवी मर गई हो या तलाक़ दे दी गई और दूसरी शादी की गई । अब जिन बच्चों की माँ नहीं, उनसे तो ध्यान हट गया और उनके हक़ों को पूरा करने में कोताही की जाने लगी और जिन बच्चों की माँ मौजूद है, उनसे अच्छा बरताव होता रहा । ऐसी हालत में आम तौर पर बापों को पहली बीवियों के बच्चों में ख़राबियाँ भी नज़र आनी शुरू हो जाती हैं और वे अपनी बदसुलूकी को जाइज़ समझने लगते हैं । हालाँकि ज़्यादातर होता यह है कि शरारत तो वे बच्चे भी करते हैं जिनकी माँ मौजूद है और वे भी करते हैं जिनकी माँ मौजूद नहीं होती । मगर माँ वाले बच्चों की माँ उनकी शरारतों पर परदा डाल देती है और जिनकी माँ नहीं होती उनकी शरारतें उजागर हो जाती हैं । इस तरह बाप यही समझते रहते हैं कि पहले बच्चे ज़्यादा शरारती हैं और दूसरे फ़रमाँबरदार और अच्छे अख़लाक़ के हैं । ऐसे ही कई घरानों में लड़का और लड़की के बीच बहुत फ़र्क़ किया जाता है और लड़कों के हक़ों को तो ख़ुशी-ख़ुशी पूरा किया जाता है और लड़कियों को बोझ समझा जाता है । अब जिस तरह भी — नाइनसाफ़ी की जाए अल्लाह और अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) के नज़दीक ये काम बिलकुल नापसन्दीदा है ।

हज़रत नोमान बिन बशीर (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया —

> "(ऐ लोगो!) अपनी औलाद के बीच इनसाफ़ करो, (ऐ लोगो!) अपनी औलाद के बीच इनसाफ़ करो ।" (नसई)

इसी सिलसिले में हज़रत नोमान बिन बशीर (रज़ि॰) की एक और रिवायत बयान हुई है । वे कहते हैं कि मेरे बाप (हज़रत बशीर रज़ि॰) ने अपने माल में से कुछ हिस्सा मेरे नाम तोहफ़े के तौर पर लिख दिया । इसपर मेरी माँ अमरा बिन्त रवाहा ने कहा कि मैं इसपर राज़ी नहीं जबतक कि आप अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) को इसपर गवाह न बनाएँ । मेरे बाप रसूल (सल्ल॰) के पास गए, ताकि उनको उस पर गवाह बनाएँ जो उन्होनें मेरे नाम किया था । नबी (सल्ल॰) ने उनसे पूछा कि क्या तुमने अपनी सारी औलाद को इसी तरह दिया है । उन्होंने कहा कि नहीं । इसपर नबी (सल्ल॰) ने कहा कि अल्लाह से डरो और अपनी औलाद में इनसाफ़ करो । इस तरह मेरे बाप लौट आए और अपना हिबा (तोहफ़ा) वापस ले लिया । (मुसलिम)

मुसलिम ही की एक और रिवायत में यह वाक़िआ बयान हुआ है और उसके आख़िर में यह भी है कि नबी (सल्ल॰) ने पूछा कि ऐ बशीर ! क्या इसके अलावा तेरे और भी बेटे हैं? उन्होंने जवाब दिया कि जी हाँ ! नबी (सल्ल॰) ने मालूम किया कि क्या उन सबको उतना ही हिबा किया है? उन्होंने जवाब दिया कि नहीं । (इसपर) नबी (सल्ल॰) ने कहा : तो फिर मुझे गवाह न बनाओ, क्योंकि मैं ज़ुल्म पर गवाह नहीं बनता ।

बच्चों के बीच इनसाफ़ न करने का बुरा नतीजा तो यह निकलता है कि बच्चों के बीच में नाइत्तिफ़ाक़ी पैदा हो जाती है और दूसरे फिर जिन बच्चों के बीच नाइनसाफ़ी की जाती है, वे माँ-बाप को वह प्यार और इज़्ज़त नहीं दे पाते जो औलाद को देनी चाहिए । इस तरह नाइनसाफ़ी से काम लेकर माँ-बाप एक तरफ़ तो अल्लाह के सामने गुनाहगार होते हैं कि अल्लाह ने उनपर सब बच्चों का हक़ देना ज़रूरी ठहराया था लेकिन वे उनमें से कुछ बच्चों के हक़ तो पूरे करते हैं और कुछ के नहीं करते, और दूसरी तरफ़ वे दुनियवी एतिबार से भी नुक़सान उठाते हैं क्योंकि अकसर वे उन बच्चों के अच्छे बरताव और ख़िदमत से महरूम हो जाते हैं जिनसे उन्होंने नाइनसाफ़ी की होती है । और फिर समाज भी उन्हें 'ज़ालिम' ही ठहराता है । इसलिए माँ-बाप की दीनदारी ही का नहीं अक़्लमन्दी का तक़ाज़ा भी यही है कि वे अपने बच्चों के बीच बराबरी और इनसाफ़ करें । हाँ, अलबत्ता अगर कोई बच्चा माँ-बाप की फ़रमाँबरदारी और ख़िदमत दूसरों से ज़्यादा करता है तो उसे कुछ ज़्यादा दे देने में कोई हरज नहीं ।

4. तालीम व तरबियत

बच्चे का एक हक़ यह भी है कि माँ-बाप उसे पालकर जवान ही न करें, बल्कि अच्छी तालीम व तरबियत भी दें । तालीम व तरबियत का मतलब यह है कि उसे दीन की बातें सिखाएँ और उसे अमल करने की आदत डालने की कोशिश करते रहें।

बच्चे की तालीम और तरबियत को कितनी अहमियत दी गई है वह इसी से मालूम होता है कि पहली आवाज़ जो बच्चे के कान में डाली जाती है वह 'अज़ान' है । शरई रस्मों में यह एक अहम रस्म या रिवाज है कि जब बच्चा पैदा हो तो

उसको कुछ पिलाने या चटाने से पहले उसके कान में अज़ान पढ़ी जाए। कुरआन में हज़रत इसमाईल अलैहिस्सलाम की ख़ूबियाँ बयान करते हुए उनकी एक ख़ूबी यह भी बयान की गई है कि —

"वे अपने घरवालों को नमाज़ और ज़कात का हुक्म दिया करते थे।"
(कुरआम, 19:55)

सूरा ता॰ हा॰ में नबी (सल्ल॰) को ताकीद की गई कि —

"और अपने घरवालों को नमाज़ की ताकीद करो और ख़ुद भी इसके पाबन्द रहो।" (कुरआन, 20:132)

हज़रत इब्न अब्बास (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि अपने बच्चों की ज़बान से सबसे पहले 'ला इलाहा इल्लल्लाह' कहलवाओ और मौत के वक़्त उन्हें इसी कलिमा 'ला इलाहा इल्लल्लाह' की नसीहत करो। (बैहक़ी)

हज़रत सईद बिन आस (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि किसी बाप ने अपने बेटे को अच्छे अदब से बेहतर तोहफ़ा नहीं दिया। (तिरमिज़ी)

मतलब यह है कि बाप की तरफ़ से बच्चों के लिए सबसे अच्छा तोहफ़ा यही है कि वह उनकी इतनी अच्छी तरबियत करे कि वे तहज़ीब और अच्छे अख़लाक़ व किरदारवाले हों।

हज़रत अनस (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि अपनी औलाद की क़द्र करो और उन्हें अच्छे अदब से सँवार दो। (सुनन इब्न माजा)

औलाद की क़द्र करना यह है कि उन्हें अल्लाह का तोहफ़ा और अमानत समझकर उनकी क़द्र की जाए। हैसियत के मुताबिक़ उनकी ज़रूरतों का इन्तिज़ाम किया जाए और उन्हें बोझ न समझा जाए।

हालाँकि इनसान शरई कामों का पाबन्द बालिग़ होने ही पर होता है फिर भी नबी (सल्ल॰) ने हुक्म दिया कि जब बच्चा सात साल का हो जाए तो उसे नमाज़ की

ताकीद करनी शुरू कर दी जाए और दस साल का बच्चा अगर नमाज़ न पढ़े तो उसे उसपर सज़ा दी जाए। यह इसी लिए है कि बच्चे को नमाज़ की आदत हो जाए और बालिग़ होने तक वह पक्का नमाज़ी बन जाए। शेख़ सादी (रह॰) से पूछा गया कि औलाद की तरबियत किस तरह करनी चाहिए तो उन्होनें फ़रमाया –

1. जब बच्चे की उम्र 10 साल से ज़्यादा हो जाए तो उसे नामहरमों और ऐरों-ग़ैरों में न बैठने दो।

2. अगर तुम चाहते हो कि तुम्हारा नाम बाक़ी रहे तो औलाद को अच्छे अख़लाक़ की तालीम दो।

3. अगर तुम्हें बच्चे से मुहब्बत है तो उससे ज़्यादा लाड-प्यार न करो।

4. बच्चे को उस्ताद का अदब सिखाओ और उसे उस्ताद की सख़्ती सहन करने की आदत डालो।

5. बच्चे की सभी ज़रूरतें ख़ुद पूरी करो और उसे ऐसे अच्छे तरीक़े से रखो कि वह दूसरों की तरफ़ न देखें।

6. शुरू-शुरू में पढ़ाते वक़्त बच्चे की तारीफ़ करके और उसे शाबाशी देकर उसकी हिम्मत बढ़ाओ। जब उसका ध्यान इस तरफ़ आ जाए तो उसे अच्छे और बुरे की समझ सिखाने की कोशिश करो और ज़रूरत पड़े तो सख़्ती भी करो।

7. बच्चे को हुनर सिखाओ, अगर वह हुनरमन्द होगा तो बुरे दिनों में भी किसी के सामने हाथ फैलान के बजाय अपने हुनर से काम ले सकेगा।

8. बच्चों पर कड़ी नज़र रखो, ताकि वे बुरों की संगत में न बैठें।

सच यह है कि माँ-बाप का काम सिर्फ़ बच्चों को पाल देना ही नहीं, बल्कि उन्हें अच्छी तरह पालना है, ताकि वे अच्छी से अच्छी ज़िन्दगी गुज़ारें और आख़िरत में ऊँचे से ऊँचे मक़ाम हासिल कर सकें। यह बड़े दुख की बात है कि बहुत-से माँ-बाप का सारा ध्यान सिर्फ़ एक बच्चे की माली हालत सुधारने ही की तरफ़ लगा रहता है, हालाँकि हर एक जानदार को एक दिन इस दुनिया को छोड़कर उस हमेशा

की ज़िन्दगी को इख़्तियार करना है जिसका कोई दूसरा किनारा नहीं। अगर बच्चे को उसके लिए तैयार न किया गया तो फिर इससे बड़ी भूल और बच्चे के हक़ में दुश्मनी और क्या होगी! बच्चे को अच्छे कपड़े पहनाने, अच्छा खाना खिलाने, अच्छे स्कूल या कॉलेज में पढ़ाने से ज़्यादा इस बात की फ़िक्र होनी चाहिए कि उसकी तरबियत अच्छी हो।

तरबियत की फ़िक्र बिलकुल शुरू से ही होनी चाहिए। बचपन में बच्चे आम तौर पर कहानियाँ सुनने के शौक़ीन होते हैं। अगर माँ-बाप उनके इस शौक़ से फ़ायदा उठाने की कोशिश करें तो बचपन में ही बच्चे के दिमाग़ में नेकी के वे बीज बोए जा सकते हैं जिनका फल बच्चा, अल्लाह ने चाहा तो, ज़िन्दगी में भी खाता रहेगा और मौत के बाद भी। माँ-बाप को तरबियत का हक़ ज़रूर अदा करना चाहिए। हो सकता है कि कोई बच्चा अपनी फ़ितरत के लिहाज़ से ऐसा हो कि तरबियत के बाद भी वह .... बदचलन निकले, लेकिन अगर माँ-बाप उसकी सुधार की कोशिश करते रहें तो उन्हें इतनी तसल्ली तो रहेगी कि उन्होंने अपना फ़र्ज़ अदा किया था और ख़ुदा के नज़दीक भी वे इस ज़िम्मेदारी से बरी होंगे। फिर इस मामले का एक पहलू और भी है, वह यह कि कभी-कभी माँ-बाप की कोशिशें फ़ौरन असर नहीं दिखातीं मगर कुछ वक़्त बीतने पर बच्चे की ज़िन्दगी में कोई ऐसा मोड़ आ जाता है कि बहुत पुरानी सुनी हुई बातें अपना असर दिखाने लगती हैं और बच्चा नेकी की तरफ़ चल पड़ता है।

हज़रत अब्दुल्लाह बिन मुबारक (रह०) के माँ-बाप बहुत ही नेक थे और उन्होंने उनकी तालीम और तरबियत में कोई कसर उठा न रखी थी, मगर हज़रत अब्दुल्लाह पर इसका कोई असर न होता था। इतने नेक माँ-बाप के बेटे होने के बाद भी वे खेल-कूद में मस्त रहते, हर काम में लापरवाही बरतते, हर वक़्त बुराइयों में फँसे रहते, गाना-बजाना और ऐश उड़ाना यही दिन-रात का काम था, यहाँ तक कि पीना-पिलाना भी शुरू हो गया। रात-रात भर दोस्तों की महफ़िलें जमी रहतीं, संगीत बजता, गाना होता और शराब का दौर चलता। यह घिनावनी ज़िन्दगी देखकर माँ-बाप का बड़ा बुरा हाल था, अन्दर ही अन्दर कुढ़ते, रोते और फ़रियाद करते। मन्नतें मानते, सदक़ा देते और अल्लाह तआला से बेटे के सुधार के लिए दुआ करते। उन्होंने बेटे की तरबियत में कोई कसर न उठा रखी थी, मगर देखने में उसका कोई

असर नज़र न आता था ।

आख़िर वह वक़्त आ ही गया जब अल्लाह ने उस नेक जोड़े की दुआओं को सुन लिया । एक रात जब अय्याशी और मौज-मस्ती की महफ़िल ख़ूब गर्म थी और शराब के दौर चल रहे थे कि हज़रत अब्दुल्लाह की आँख लग गई । ख़्वाब में क्या देखते हैं कि एक लम्बा-चौड़ा ख़ूबसूरत बाग़ है और एक टहनी पर एक प्यारी-सी चिड़िया बैठी अपनी सुरीली और मीठी आवाज़ में यह आयत पढ़ रही है —

"क्या ईमान लानेवालों के लिए अभी वह वक़्त नहीं आया कि उनके दिल अल्लाह की याद से पिघलें और उसके नाज़िल किए हुए हक़ के आगे झुकें ।" (क़ुरआन, 57:16)

हज़रत अब्दुल्लाह घबराए हुए उठे और उनकी ज़बान पर यही बोल जारी थे—

"ख़ुदाया वह वक़्त आ गया, प्यारे ख़ुदा वह वक़्त आ गया !"

फिर उठे, शराब की बोतलें पटक दीं, चंग और सितार चूर कर दिए, रंगीन कपड़े फाड़ डाले और नहा-धोकर सच्चे दिल से तौबा की ।

फिर यही अब्दुल्लाह बिन मुबारक थे, इल्म और अमल के आसमान पर सूरज बनकर चमके और आपकी रौशनी ने एक आलम को रौशन किया । आपकी नेकी, बुज़ुर्गी और बड़ाई का अन्दाज़ा लगाने के लिए एक इजतिमा का हाल बयान करना काफ़ी होगा जो आपके ज़माने में हुआ । वक़्त के बड़े-बड़े आलिम यह फ़ैसला करने के लिए एक जगह इकट्ठा हुए कि इस वक़्त का सबसे बड़ा आलिम और सबसे बड़ा बुज़ुर्ग कौन है? आख़िर यह फ़ैसला हुआ कि क़ुरआन और हदीस के इल्म, फ़िक़ह, अदब, शायरी, नह्व (व्याकरण), लुग़त (शब्दकोश), तक़रीर, इबादत, रातों को जागना, बेकार बातों से बचना, लोगों से अच्छा सुलूक करना, लड़ाई-झगड़े से बचना, सदा इनसाफ़ पर क़ायम रहना, घोड़े की सवारी, हथियार बाँधना, हज करना और अल्लाह की राह में जिहाद करना —इन सब ख़ूबियों में हज़रत अब्दुल्लाह सबसे बढ़कर हैं, इसलिए सबने मिलकर उहें अपना सरदार मान लिया और उन्हें अपने लिए हर भलाई में नमूना क़रार दिया ।

हज़रत अब्दुल्लाह की ज़िन्दगी से उन माँ-बाप को बहुत इतमीनान होना चाहिए

जो बच्चों के सुधार की कोशिश करते हैं और फिर जब देखते हैं कि असर नहीं होता तो दुखी और मायूस रहते हैं । इस मुबारक ज़िन्दगी में उनके लिए यह सबक़ है कि वे अब्दुल्लाह बिन मुबारक (रह०) के माँ-बाप की तरह कोशिश, तड़प, दुआ और इलतिजा को जारी रखें । अल्लाह तआला एक दिन उनकी ज़रूर सुनेगा । वही अब्दुल्लाह बिन मुबारक जो कभी सुबह-शाम ऐश और मौज-मस्ती और हँसी-मज़ाक में चूर रहते थे, आख़िर इस ऊँचे मक़ाम पर पहुँचे कि मशहूर मुहद्दिस और ज़ाहिद इमाम ज़ह्बी (रह०) ने आपके बारे में कहा —

"हज़रत अब्दुल्लाह में कौन-सी ख़ूबी नहीं है — ख़ुदातरसी, इबादत, ख़ुलूस, जिहाद, ज़बरदस्त इल्म, दीन में मज़बूती, अच्छा सुलूक, बहादुरी — ख़ुदा की क़सम! मुझे उनसे मुहब्बत है और उनकी मुहब्बत से मुझे भलाई की उम्मीद है ।"

हज़रत अब्दुल्लाह (रह०) ज़िन्दगी इस तरह गुज़ारते थे कि साल को तीन हिस्सों में बाँट रखा था । चार महीने हदीस पढ़ने-पढ़ाने में लगाते, चार महीने जिहाद में लगाते और चार महीने हज के सफ़र में रहते । हज़रत सुफ़ियान सौरी (रह०) कहा करते थे कि मैनें बहुत कोशिश की कि कम से कम एक साल ही हज़रत अब्दुल्लाह की तरह ज़िन्दगी गुज़ार लूँ, मगर कभी कामयाब न हुआ ।

बच्चे की अच्छी तरबियत करके और उसे नेकी के रास्ते पर चलाकर माँ-बाप ख़ुद भी फ़ायदे में रहते हैं, क्योंकि नेक औलाद माँ-बाप के लिए ज़िन्दगी में आँख की ठंडक और मौत के बाद बख़्शिश का ज़रिया बनती है ।

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया कि जब आदमी मर जाता है तो उसके अमल (काम) ख़त्म हो जाते हैं, मगर तीन काम ऐसे हैं जो उसके मरने के बाद भी जारी रहते हैं — एक, सद्क़-ए-जारिया (यानी ऐसा सदक़ा जिससे लोगों को हमेशा फ़ायदा पहुँचता रहे) दूसरे, वह इल्म जिससे लोग फ़ायदा उठाएँ और तीसरे, नेक औलाद जो उसके लिए दुआ करे । (तिरमिज़ी)

हज़रत सईद बिन मुसैयब (रज़ि०) कहा करते थे कि आदमी के मरने के बाद उसके बेटे के दुआ करने से उसका दर्जा ऊँचा हो जाता है । (मुवत्ता)

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया कि आदमी का दर्जा जन्नत में ऊँचा किया जाता है। वह कहता है कि मेरा दर्जा कैसे ऊँचा हो गया (हालाँकि अब ज़िन्दगी ख़त्म हो चुकी है और अमल का मौक़ा भी ख़त्म हो चुका है)। तो उसे बताया जाता है कि (तेरे बाद) तेरे बेटे ने जो तेरे लिए मग़्फ़िरत की दुआ की उसकी वजह से (तेरा दर्जा ऊँचा हो गया है)।

(इब्न माजा)

बच्चे की तरबियत के बारे में एक बात जो माँ-बाप को याद रखना ज़रूरी है वह यह है कि बच्चे को अच्छा बनाने के लिए माँ-बाप का खुद अच्छा बनना बहुत ज़रूरी है, नहीं तो उनके समझाने-बुझाने का बहुत कम असर होगा और कोई ताज्जुब नहीं कि बिल्कुल ही असर न हो। इसकी वजह यह है कि एक तो इनसान की उस बात में असर नहीं होता जिस पर वह ख़ुद अमल नहीं करता हो। और दूसरे जब बच्चे देखेंगे कि माँ-बाप उन्हें जिन कामों का हुक्म दे रहे हैं उनको वे खुद नहीं करते तो वे उनकी नसीहतों पर अमल करने को बिलकुल बेकार समझेंगे।

नीचे कुछ दिलचस्प क़िस्से बयान किए जाते हैं जिससे पता चलेगा कि ज़िम्मेदार और फ़र्ज़ अदा करनेवाले माँ-बाप को अपने बच्चों की तालीम व तरबियत का किस हद तक ध्यान रहता था।

मशहूर ताबिई हज़रत रबीआ (रह०) के बारे में बताया जाता है कि उनकी पैदाइश से कुछ महीने पहले उनके बाप फ़र्रूख़ जिहाद पर चले गए। जाते हुए उन्होंने अपनी बीवी को तीस हज़ार अशर्फ़ियाँ दीं, और फिर हालात कुछ ऐसे हुए कि वे सत्ताईस साल तक वतन वापस न आ सके। इस बीच रबीआ (रह०) की माँ ने शौहर की छोड़ी हुई दौलत को बेटे की तालीम व तरबियत पर ख़र्च कर दिया। जब फ़र्रूख़ वापस आए तो रबीआ छब्बीस साल के हो चुके थे और उनके इल्म व हुनर की शुहरत दूर-दूर तक पहुँच चुकी थी। वापसी पर फ़र्रूख़ ने बीवी से उस रक़म के बारे में पूछा जो वे जाते वक़्त उन्हें दे गए थे। उस समझदार बीवी ने जवाब दिया कि वह रक़म मैंने हिफ़ाज़त से ज़मीन में दफ़न की हुई है। दूसरे दिन सुबह जब फ़र्रूख़ मसजिद में नमाज़ पढ़ने गए तो बेटे का वह रुत्बा देखा कि बड़े-बड़े आलिम शागिर्द की तरह अदब से सामने बैठे थे। बहुत खुश-खुश वापस आए और बीवी से कहा तो उस अक़्लमन्द औरत ने जवाब दिया कि यही वह ज़मीन है जिसमें मैंने आपकी छोड़ी हुई दौलत दफ़्न कर रखी है।

अल्लामा इक़बाल अपने बचपन का एक वाक़िआ बयान करते हैं कि एक बार हमारे यहाँ एक फ़क़ीर आया जो टलने का नाम नहीं लेता था। इसपर मुझे गुस्सा आया और मैंने उसे मारा, तो जो कुछ वह माँगकर लाया था, नीचे गिर गया। मेरे बाप ने जब यह मंज़र देखा तो उनका रंग पीला पड़ गया और मुझे बुलाकर कहा: "ऐ बेटे! ज़रा ख़याल कर कि क़ियामत के दिन जब अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का दरबार लगा होगा और बड़े-बड़े हाफ़िज़, ग़ाज़ी, शहीद, ज़ाहिद, आलिम और अल्लाह से मुहब्बत करनेवाले इकट्ठा होंगे तो यह फ़क़ीर वहाँ आकर फ़रियाद करेगा और नबी (सल्ल०) मुझसे पूछेंगे कि तुम्हें गोश्त का एक टुकड़ा अता किया गया था, क्या तू उसे इनसान न बना सका। तो बेटा! बता उस वक़्त मैं क्या जवाब दूँगा। ऐ बेटे! बाप पर यह अत्याचार न कर और गुलाम को आक़ा (सल्ल०) के सामने शर्मिन्दा न कर।"

इसमें कोई ताज्जुब की बात नहीं कि जिस बच्चे की बचपन में इस हिकमत के साथ तरबियत की गई थी वह बड़ा होकर दीन का एक बहुत बड़ा ख़ादिम और रसूल (सल्ल०) का आशिक़ साबित हुआ।

यह तो उन लोगों की बातें हैं जिन्हें दुनिया में बड़ी शोहरत, नामवरी और नेकनामी मिली। आम लोगों की ज़िन्दगियों में भी देखा जा सकता है कि जहाँ-जहाँ माँ-बाप ने अपनी ज़िम्मेदारियों को पहचाना और बच्चों की तरबियत का हक़ अदा करने की कोशिश की, अल्लाह तआला ने उनकी कोशिशों को आख़िरकार कामयाब कर ही दिया।

अल्लाह के दीन को चाहनेवाली एक औरत ज़िन्दगी में कुछ ऐसी तकलीफ़ों में घिर गई कि घर छोड़कर किसी रिश्तेदार के पास रहना पड़ गया। बच्चे छोटे-छोटे थे और हालात के बदलने का पूरा एहसास नहीं कर सकते थे। वह औरत सुबह उठकर सबके लिए नाश्ता तैयार करती और घरवाली बीबी के बच्चों को पहले देती, अपने बच्चों को बाद में। बच्चे बेचारे समझते थे कि हमारी माँ नाश्ता बना रही हैं इसलिए पहला हक़ हमारा है। वे इस तरबियत को नाइनसाफ़ी समझने लगे। एक दिन एक बच्चा परेशान होकर बोल उठा कि अम्मी! आख़िर आप यहाँ क्यों आई हैं? अच्छे-भले हम घर में रह रहे थे। माँ ने बड़े आराम से कहा कि बेटे! क्यों

घबरा रहे हो, यहाँ क्या सदा के लिए रहना है? बच्चा बिगड़कर बोला कि अब हमें आप और कहाँ ले जाने का इरादा रखती हैं? माँ ने फ़ौरन कहा – "लो, अल्लाह मियाँ के पास नहीं जाना क्या? देखो बेटे! तुम इन बच्चों को पहले नाश्ता कर लेने दिया करो। अगर ऐसा करोगे तो फिर जब हम अल्लाह के पास जाँएगे तो वहाँ तुम लोगों को पहले नाश्ता मिलेगा।"

बच्चे इस सीधी-सादी और सच्ची बात को फ़ौरन समझ गए और सब्र से अपनी बारी का इन्तिज़ार करने लगे।

5. प्यार और मुहब्बत

बच्चे का एक हक़ यह भी है कि उससे प्यार और मुहब्बत का सुलूक किया जाए। इस मामले में ज़रूरत से ज़्यादा लाड-प्यार, जो बच्चे को बिगाड़ दे, ठीक नहीं। फिर भी, यह ज़रूरी है कि बच्चे को यक़ीन रहे कि माँ-बाप उसे दिल से चाहते हैं और उसके सच्चे हमदर्द हैं। बच्चे से बहुत ज़्यादा सख़्ती करना उसे सुधारना नहीं, बल्कि बिगाड़ना है। अगर बच्चे के दिल में यह बात बैठ जाए कि माँ-बाप को मुझसे प्यार नहीं और वे मुझे बुरा समझते हैं तो ये बच्चे और माँ-बाप दोनों की बदक़िस्मती होगी। इसलिए माँ-बाप के लिए ज़रूरी है कि अपना रवैया ऐसा रखें कि बच्चे को उनकी मुहब्बत और हमदर्दी पर यक़ीन रहे। यह यक़ीन उसमें भरोसा पैदा करेगा और वह अपने आपको महफ़ूज़ (सुरक्षित) समझेगा, जिससे उसके किरदार पर बहुत अच्छा असर पड़ेगा। आइए, देखिए कि इस मामले में अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) का रवैया क्या था।

हज़रत आइशा (रज़ि॰) बयान करती हैं कि कुछ देहाती अल्लाह के नबी (सल्ल॰) के पास आए और उन्होंने नबी (सल्ल॰) से पूछा कि क्या आप अपने बच्चों को चूमते हैं? नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि हाँ! उन्होंने कहा : लेकिन खुदा की क़सम! हम तो नहीं चूमते। (इसपर) नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि अगर अल्लाह ने तुम्हारे दिल से रहम निकाल लिया हो तो फिर मैं क्या कर सकता हूँ! (मुसलिम)

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि इक़रा बिन हाबिस (रज़ि॰) ने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) को देखा कि आप (सल्ल॰) हज़रत हसन (रज़ि॰) को चूम रहे हैं। इक़रा ने कहा कि मेरे दस बेटे हैं, मैंने उनमें से एक को (भी) कभी नहीं

चूमा । इसपर नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया : जो रहम नहीं करता उसपर रहम किया भी नहीं जाता । (मुसलिम)

हज़रत अनस बिन मालिक (रज़ि०) बयान करते हैं कि मैंने कोई आदमी ऐसा नहीं देखा जो अपने बाल-बच्चों पर अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से ज़्यादा शफ़्क़त करता हो । (मुसलिम)

अल्लाह के नबी (सल्ल०) को अपनी बेटी हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) से बेइन्तिहा मुहब्बत थी । मिसवर बिन मख़्रमह एक हदीस बयान करते हैं जिसमें उन्होंने नबी (सल्ल०) की यह बात रिवायत की है कि "फ़ातिमा मेरे जिगर का टुकड़ा है । जो चीज़ उसे बुरी लगती है, वह मुझे बुरी लगती है और जो चीज़ उसे तकलीफ़ देती है, वह मुझे तकलीफ़ देती है ।" (अबू दाऊद)

बुरा लगने का मतलब है तकलीफ़ और रंज पहुँचना । नबी (सल्ल०) के कहने का मतलब यह था कि जब हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) को तकलीफ़ और रंज पहुँचता है तो मुझे भी तकलीफ़ और रंज पहुँचता है ।

प्यारे नबी (सल्ल०) अपने नवासों (हज़रत हसन और हुसैन रज़ि०) से भी बेहद मुहब्बत करते थे ।

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) बयान करते हैं कि मैं दिन के किसी वक़्त अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के साथ निकला । (हम दोनों ख़ामोश थे) न आप (सल्ल०) मुझसे बात कर रहे थे, न मैं आप (सल्ल०) से यहाँ तक कि आप (सल्ल०) बनू क़ैनुक़ाअ के बाज़ार में पहुँचे । फिर आप लौटे और हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) के घर तशरीफ़ लाए और फ़रमाया — "क्या यहाँ कोई छोटा बच्चा है, क्या यहाँ कोई छोटा बच्चा है?"

आप (सल्ल०) के आवाज़ देने का मतलब हज़रत हसन थे । हमने समझा कि उनकी माँ ने उन्हें नहलाने और ख़ुशबूदार हार पहनाने के लिए रोका हुआ है । मगर थोड़ी ही देर में वे दौड़ते हुए आए, यहाँ तक कि दोनों (यानी नबी सल्ल० और हज़रत हसन) एक दूसरे से गले मिले और नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि ऐ अल्लाह! मैं इससे मुहब्बत रखता हूँ, इसलिए तू भी इससे मुहब्बत रख और उससे भी मुहब्बत रख जो इससे मुहब्बत रखे । (मुसलिम)

हज़रत अबू सईद (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि हसन और हुसैन (रज़ि॰) जन्नत के नौजवानों के सरदार हैं। (तिरमिज़ी)

हज़रत अनस (रज़ि॰) बयान करते है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) से पूछा गया कि अपने घरवालों में से आपको सबसे ज़्यादा प्यारा कौन है? आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया — हसन और हुसैन! और आप (सल्ल॰) हज़रत फ़ातिमा से कहते कि मेरे दोनों बेटों को मेरे पास लाओ। फिर आप (सल्ल॰) दोनों को सूँघते और छाती से लगा लेते। (तिरमिज़ी)

हज़रत बराअ़ (रज़ि॰) बयान करते हैं कि मैं हज़रत अबू बक्र (रज़ि॰) के साथ उनके घर चला गया तो देखा कि उनकी बेटी हज़रत आइशा (रज़ि॰) लेटी हुई थीं, उन्हें बुख़ार था। मैंने उनके बाप (यानी हज़रत अबू बक्र रज़ि॰) को देखा कि उन्होंने उनके गाल पर बोसा दिया और फ़रमाया कि ऐ प्यारी बेटी! तेरी तबीअत कैसी है? (बुख़ारी)

कहने का मतलब यह है कि बच्चों के साथ हमदर्दी और मुहब्बत का सुलूक करना ज़रूरी है, क्योंकि बच्चे के किरदार की तामीर (चरित्र-निमार्ण) के लिए इसकी बहुत ज़रूरत होती है। ख़ुदा के बाद बच्चे की हिफ़ाज़त करनेवाले उसके माँ-बाप ही होते हैं। जो माँ-बाप बच्चे के लिए मुनासिब हमदर्दी और प्यार का इज़हार करते रहेंगे, वे उसे यक़ीन दिलाएँगे कि उसकी यह पनाहगाह मज़बूत है। इसके बर-ख़िलाफ़ बच्चे से ख़ाहमख़ाह सख़्ती करना या बहुत ज़्यादा सख़्ती करना, चाहे उसे सलीक़ा सिखाने ही के लिए क्यों न हो, बच्चे के लिए बहुत ज़्यादा परेशानी और बेएतिमादी का सबब बन जाता है।

शैख़ सादी (रह॰) ने एक क़िस्सा बयान किया है कि एक बाप ने अपने बेटे को डंडे से मारा तो बेटा बोला, "अब्बा! बेक़सूर न मारिए। अगर लोग मेरे ऊपर ज़ुल्म करेंगे तो मैं उनके ज़ुल्म की फ़रियाद आपके पास कर सकता हूँ, लेकिन जब आप ज़ुल्म करें तो किसके पास फ़रियाद करूँ।"

6. दुआ

माँ-बाप पर बच्चे का एक ख़ास हक़ यह भी है कि वे उसके लिए दुआ करें। यह तो एक हक़ीक़त है कि माँ-बाप बच्चे के बहुत ही ख़ैरख़ाह होते हैं और उनकी

दिली ख़ाहिश होती है कि उनके बच्चे लायक़, बुलन्द, नेक और अच्छे अख़लाक़ के मालिक हों। मगर इस दिली ख़ाहिश के बावजूद ऐसा मुमकिन है कि वे उनकी सही तरबियत न कर सकें और यह ख़ाहिश सिर्फ़ ख़ाहिश ही की हद तक रहे, इसके लिए कोई अमली कोशिश न की जाए, फिर इसका भी डर है कि कुछ माँ-बाप में वह समझ-बूझ, अक़्ल व समझदारी और सब्र व हौसला ही न हो जो बच्चे की अच्छी तरबियत के लिए चाहिए होता है। फिर इसका भी डर है कि कुछ माँ-बाप इस सख़्ती से और इतना हद से बढ़कर बच्चों की तरबियत करना शुरू कर दें कि बच्चे सुधरने के बजाए उल्टे बाग़ी हो जाएँ।

यानी बच्चों की तरबियत के लिए जो तरीक़ा भी अपनाया जाए, अगर वह बेढंगेपन का है तो उसके ग़लत होने या फ़ौरी तौर पर नाकाम हो जाने का डर हर हाल में रहता है। इसलिए बच्चे की ख़ैरख़ाही के सिलसिले में इस अमल से ज़रा-सी भी लापरवाही नहीं करनी चाहिए जिसके नाकाम हो जाने का बिलकुल कोई डर नहीं और जो, अगर अल्लाह ने चाहा तो, हमेशा बच्चे के लिए कामयाबी ही लाता है, और वह अमल है बच्चे के हक़ में भलाई की दुआ करना।

अल्लाह तआला फ़रमाता है —

"पुकारनेवाला जब मुझे पुकारता है तो मैं उसकी पुकार सुनता और जवाब देता हूं।" (क़ुरआन, 2:186)

जब अल्लाह हर मामले में पुकारनेवाले की आवाज़ सुनता है तो उस पुकार को क्यों न सुनेगा जो उसके प्यारे बन्दों की भलाई के लिए की जाए। हमारे बच्चे हमारी औलाद कम हैं और अल्लाह के बन्दे ज़्यादा हैं। वह उन्हें हमसे ज़्यादा प्रिय रखता है। इसलिए कोई वजह नहीं कि वह उनके हक़ में हमारी दुआ न सुने। ऊपर हज़रत इब्न मुबारक (रह॰) के हालात बयान किए जा चुके हैं कि किस तरह माँ-बाप की लगातार दुआओं से ख़ुदा की रहमत जोश में आई और एक ऐशो आराम का पुजारी और लापरवाह नौजवान आलमे इस्लाम के आलिमों और आमिलों का सरदार बन गया। माँ-बाप को जिस मामले में कभी भी सुस्ती नहीं दिखानी चाहिए और कभी भी नहीं उकताना चाहिए, वह यही है कि बच्चों के हक़ में भलाई की दुआ करते रहें। अजब नहीं, यही काम उन्हें दीन और दुनिया दोनों के ख़ज़ानों से माला-माल कर दे।

अल्लाह तआला ने उन लोगों की तारीफ़ की है जो अपने बीवी-बच्चों के लिए भलाई की दुआ करते रहते हैं —

> "और (जन्नत के हक़दार वे भी हैं) जो कहते हैं कि ऐ हमारे रब! हमको हमारी बीवियों और हमारी औलादों की तरफ़ से आँखों की ठंडक दे ।"
> (क़ुरआन, 25:74)

7. वरासत का हक़

ऊपर बयान किए गए हक़ों के अलावा बच्चे को कुछ और हक़ भी हासिल हैं जिनमें एक वरासत का हक़ है । इस्लाम में वरासत के उसूल की एक बड़ी ख़ूबी यह है कि सारी औलाद वरासत की हक़दार बनती है । इसमें बड़े-छोटे और लड़के-लड़की का फ़र्क़ नहीं । वरासत के मामले में कुछ दूसरे धर्मों और ज़िन्दगी गुज़ारने के तरीक़े में लड़की के साथ बहुत बड़ी नाइनसाफ़ी की गई है और उसे बाप की वरासत का हक़दार नहीं समझा गया है । कुछ क़ौमों में वरासत सिर्फ़ बड़े लड़के का हक़ समझा जाता है और छोटे बच्चों को सिर्फ़ इसलिए महरूम होना पड़ता है कि वे इत्तिफ़ाक़ से बाद में पैदा हुए थे, लेकिन इस्लाम में सब बच्चे वरासत के हक़दार हैं । वरासत के बाँटने का उसूल यह है कि लड़की को लड़के का आधा हिस्सा मिलता है । इसकी वजह यह है कि अल्लाह ने औरत के कंधे पर कोई माली बोझ नहीं डाला है । शादी से पहले बाप उसका ज़िम्मेदार और सरपरस्त होता है, शादी के बाद शौहर और बेवा (विधवा) होने की हालत में बेटा । इसलिए वह (बेटी) आधा लेकर भी फ़ायदे में रहती है । इसके मुक़ाबले में उसके भाई को अपने ख़र्चों के अलावा अपने बीवी-बच्चों के ख़र्चे भी पूरे करने होते हैं । बूढ़े माँ-बाप की देखभाल भी करनी होती है और कई बार बेवा बहनों की देखभाल की ज़िम्मेदारी भी उठानी पड़ती है । इसलिए यह बिलकुल इनसाफ़ की बात है कि उसे ज़्यादा दिया जाए ।

वरासत के मामले में बच्चों के हक़ों पर जो ज़ोर दिया गया है वह इसी से ज़ाहिर है कि किसी को इस बात की इजाज़त नहीं कि वह अपने माल के एक तिहाई (1/3) हिस्से से ज़्यादा की कोई वसीयत कर जाए ।

हज़रत आमिर बिन साद (रज़ि॰) बयान करते हैं कि मैं मक्का मुकर्रमा में बीमार

था और नबी (सल्ल॰) मेरी देखभाल किया करते थे । मैंने कहा कि मेरे पास माल है, क्या मैं अपने सारे माल (को ख़ुदा के रास्ते में दे देने) की वसीयत कर दूँ? नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि नहीं (ऐसा न करो) । मैनें पूछा कि फिर आधे माल की (वसीयत कर दूँ)? आप (सल्ल॰) ने (फिर) फ़रमाया कि नहीं । मैंने मालूम किया कि क्या फिर तीसरे हिस्से की (वसीयत कर दूँ) आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि (हाँ) तीसरे हिस्से की कर सकते हो, हालाँकि तीसरा हिस्सा भी ज़्यादा है । (फिर नबी सल्ल॰ ने फ़रमाया) यह कि तू अपने वारिसों को मालदार छोड़ जाए, बेहतर है इससे कि तू उन्हें तंगदस्त छोड़ जाए और वे लोगों के आगे हाथ फैलाते फिरें ....।

(बुख़ारी)

इस हदीस से वाज़ेह हो जाता है कि नबी (सल्ल॰) ने इस बात की भी इजाज़त नहीं दी कि कोई शख़्स अपने सारे माल को अल्लाह की राह में देने की वसीयत करे । अलबत्ता, तीसरे हिस्से के बारे में वसीयत कर सकता है ।

8. दूसरे हक़

बच्चे का माँ-बाप पर एक और हक़ यह है कि वे उसका नाम अच्छा रखें ।

हज़रत इब्न अब्बास (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि बाप पर बच्चे का यह हक़ है कि उसका अच्छा नाम रखे और उसे अच्छे आदाब सिखाए । (शोअबुल ईमान, बैहक़ी)

ऐसे ही औलाद का माँ-बाप पर यह भी हक़ है कि वे उन्हें नेकी और नेकनामी वरासत में दें, बुराई और बदनामी न दें । जिस तरह बदचलन औलाद माँ-बाप के लिए बेइज़्ज़ती का सबब होती है उसी तरह ग़लत काम करनेवाले माँ-बाप भी औलाद के लिए सारी उम्र शर्मिन्दगी, ऐब और तकलीफ़ की वजह बने रहते हैं ।

औलाद के मामले में माँ-बाप की एक भारी ज़िम्मेदारी यह है कि मुनासिब उम्र तक पहुँच जाने पर उनके निकाह का इन्तिज़ाम करें ।

हज़रत अबू सईद और हज़रत इब्न अब्बास (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि जिसको अल्लाह तआला औलाद दे, उसे चाहिए कि उसका अच्छा-सा नाम रखे और उसे अदब सिखाए । फिर जब वह बालिग़ हो

जाए तो उसकी शादी कर दे । अगर (बच्चा) बालिग़ हो गया, मगर (माँ-बाप ने) उसकी शादी न की और (नतीजा यह हुआ कि) वह हराम काम में फँस गया तो उसका बाप इस गुनाह का ज़िम्मेदार होगा । (शेअबुल ईमान, बैहक़ी)

9. मौजूदा ज़माने में दीनी तालीम व तरबियत की ज़रूरत

जिस दौर से हम गुज़र रहे हैं उसकी कुछ खूबियों ने माँ-बाप के लिए इस बात को और भी ज़्यादा ज़रूरी बना दिया है कि वे बच्चों के दिलों में अल्लाह की मुहब्बत और डर, रसूल (सल्ल०) की पैरवी का शौक़ और आख़िरत को बनाने की तड़प पैदा करें, क्योंकि आज के इनसानों के तौर-तरीक़ों में कुछ ऐसी तबदीलियाँ आ गई हैं कि बच्चे, यहाँ तक कि लड़कियाँ भी, दिन का बहुत-सा हिस्सा (वक़्त) माँ-बाप की नज़रों से दूर गुज़ारते हैं । ऐसी हालत में यह बहुत ज़रूरी है कि उनके दिलों में सही और ग़लत की पूरी पहचान और सही पर अमल करने और ग़लत से बचने का शौक़ पैदा हो चुका हो और उनके दिलों में भी यह बात बैठ चुकी हो कि माँ-बाप तो नहीं देखते, मगर हमारा रब हमें हर वक़्त देख रहा है । यही चीज़ उनकी हिफ़ाज़त करेगी और उन्हें बुराइयों से बचा सकेगी ।

फिर तहज़ीब (संस्कृति) और तमद्दुन (सभ्यता) की तरक़्क़ी ने ज़िंदगी में बहुत बेचैनी, उलझनें और तरह-तरह के मसाइल (समस्याएँ) पैदा कर दिए हैं जिनकी वजह से इनसानों के दिल और दिमाग़ पर बहुत ज़्यादा दबाव पड़ रहा है । ऐसे ख़तरनाक हथियार तैयार हो चुके हैं कि अगर उन्हें इस्तेमाल में ले आया जाए तो इसपर ज़रा भी हैरत न होगी कि पूरी ज़मीन टुकड़े होकर रह जाए । ज़्यादा से ज़्यादा दौलत हासिल करने और ज़िन्दगी के मेयार को बढ़ाने के नशे ने इनसान का चैन और आराम छीन लिया है । फिर आने-जाने और एक-दूसरे से बाख़बर होने के साधनों (संचार माध्यमों) की तरक़्क़ी की वजह से विभिन्न देश इस तरह एक-दूसरे के क़रीब आ गए हैं कि एक इलाक़े की बेचैनी अनगिनत दूसरे इलाक़ों को अपनी लपेट में ले लेती है । इन हालात में इनसान को एक मज़बूत सहारे की ज़रूरत है जो उसके दिल-दिमाग़ और जिस्म को इतनी ताक़त दे कि वह इस दबाव का क़ामयाबी से मुक़ाबला कर सकें, और यह सहारा सिर्फ़ अल्लाह पर सच्चा और पक्का यक़ीन है । जो माँ-बाप बच्चों के अन्दर ये ईमान और यक़ीन पैदा नहीं करते, वे बच्चों पर यह ज़ुल्म करते हैं कि बिना हथियार दिए उन्हें एक हौलनाक जंग में धकेल देते हैं ।

खुद मुस्लिम-दुनिया का यह हाल है कि इलाक़ाई तथा जातीय पक्षपात और दूसरे बहुत-से जाहिलाना नज़रियात (दृष्टिकोणों) ने इस्लामी मिल्लत को टुकड़े-टुकड़े कर दिया है; और इस तरह टुकड़े-टुकड़े हो जाने की वजह से वह दुनिया में भी नाकामी और रुस्वाई का शिकार हो रही है। हर मुसलमान माँ और हर मुसलमान बाप का फ़र्ज़ है कि बच्चे के दिल में इस्लाम से मुहब्बत पैदा करे और इस्लामी भाईचारे को मज़बूत करने की कोशिश करे। यही चीज़ उनकी अपनी ज़िन्दगी में भी सुकून और इतमीनान पैदा करेगी और इसी से इस्लामी मिल्लत को भी वह ताक़त मिलेगी जिससे वह दुनिया की क़ौमों के बीच अपनी सही जगह हासिल कर सके।

10. बेटी की अहमियत

औलाद के हक़ की बात उस वक़्त तक पूरी न होगी जब तक कि यह न बता दिया जाए कि जिस बेटी को जाहिलियत में ज़िल्लत और बेइज़्ज़ती की वज़ह समझा जाता था, इस्लाम ने आकर उसे क्या दरजा दिया।

हज़रत इब्न अब्बास (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि जिस आदमी की बेटी हो, फिर न तो वह उसे ज़िन्दा दफ़न करे और न उसे ज़लील समझे और न अपने बेटे को उसपर तरजीह (प्रधानता) दे तो अल्लाह उसे जन्नत में दाख़िल करेगा। (अबू दाऊद)

हज़रत अबू सईद ख़ुदरी (रज़ि॰) बयान करते हैं कि रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि जिसने तीन बेटियों की परवरिश की, फिर उन्हें अच्छी तालीम व तरबियत देकर उनकी शादी कर दी और उनसे अच्छा बरताव किया तो उसके लिए जन्नत है। (अबू दाऊद)

हज़रत उक़बा बिन आमिर (रज़ि॰) बयान करते हैं कि मैंने मुहम्मद (सल्ल॰) को कहते सुना कि जिस आदमी की तीन बेटियाँ हों और वह उनके मामले में सब्र से काम ले और अपनी कमाई से उन्हें खिलाए और पिलाए और पहनाए तो वह बेटियाँ क़ियामत के दिन उसके लिए आग से बचाव (का ज़रिया) हो जाएँगी। (इब्न माजा)

हज़रत सुराक़ा बिन मालिक (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि क्या मैं तुझे सबसे ज़्यादा फ़ज़ीलतवाला सदक़ा न बता दूँ? (सबसे ज़्यादा फ़ज़ीलतवाला सदक़ा) तेरी वह बेटी है जो शौहर की मौत या तलाक़ की

वजह से तेरी तरफ़ वापस आ गई हो और तेरे सिवा उसका कोई कमानेवाला न हो (ऐसी बेटी पर ख़र्च करना सबसे बड़ा सदक़ा है)। (इब्न माजा)

हज़रत आइशा (रज़ि॰) बयान करती हैं कि मेरे पास एक औरत आई और उसके साथ उसकी दो बेटियाँ थीं। उसने कुछ माँगा, लेकिन मेरे पास एक खजूर के सिवा कुछ न था। मैंने उसे वही दे दिया। उसने उस खजूर को अपनी दोनों बेटियों के बीच बाँट दिया और खुद उसमें से कुछ न खाया। फिर उठ खड़ी हुई और चली गई। जब नबी (सल्ल॰) हमारे पास आए तो मैंने उन्हें यह बात बताई, तो आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि जो कोई इन लड़कियों के बारे में किसी आज़माइश में घिर जाए (फिर वह उनसे अच्छा बरताव करे) तो यह लड़कियाँ उसके लिए जहन्नम की आग से परदा हो जाएँगी। (बुख़ारी, मुसलिम)

हज़रत अनस (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि जिस आदमी ने दो लड़कियों को पाला-पोसा, यहाँ तक कि वे बालिग़ हो गईं; तो वह क़यामत के दिन (इस हालत में) आएगा कि मैं और वह ऐसे होंगे, और (सल्ल॰) ने अपने हाथ की अँगुलियों को एक दूसरी से मिला दिया (कि ऐसे क़रीब-क़रीब जैसे ये अँगुलियाँ हैं।) (मुसलिम)

रिश्तेदारों के हक़

हज़रत अबू अय्यूब (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) एक सफ़र में थे कि एक बद्दू आपके सामने आ गया, आप (सल्ल॰) की ऊँटनी की नकेल या उसकी रस्सी पकड़ ली और फिर कहने लगा कि ऐ अल्लाह के रसूल या (यूँ कहा कि) ऐ मुहम्मद! कोई ऐसा अमल मुझे बताइए जो मुझे जन्नत के क़रीब कर दे और जहन्नम से दूर कर दे। हदीस बयान करनेवाले कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) रुक गए और फिर अपने सहाबा (रज़ि॰) पर एक नज़र डाली और फ़रमाया कि इसे (नेकी की) तौफ़ीक़ दी गई है या (यूँ कहा कि) उसे हिदायत दी गई है। (फिर उस बद्दू से) कहा कि तुमने क्या कहा था? रिवायत करनेवाले कहते हैं कि उसने अपनी बात दोहराई तो नबी (सल्ल॰) ने (उसके सवाल का जवाब देते हुए) कहा कि –

- तू अल्लाह की इबादत कर,
- और उसके साथ किसी को साझी न ठहरा,
- और नमाज़ क़ायम कर,
- और ज़कात अदा कर,
- और रिश्तों को जोड़ और उनका ध्यान रख।

(और फिर कहा कि अब हमारी) ऊँटनी को छोड़ दे। (मुसलिम)

नबी (सल्ल॰) ने 'रिश्तों को जोड़ने और उनका ध्यान रखने का' जो हुक्म दिया है, उसका मतलब नबी (सल्ल॰) ही की हिदायतों की रौशनी में यह है कि –

- रिश्तेदारों से ताल्लुक़ात बनाए रखे जाएँ, तोड़े न जाएँ,
- उनके सुख-दुख में शामिल हुआ जाए,
- उनसे अच्छा बरताव किया जाए,
- उन्हें माली और जिस्मानी दोनों तरह की मदद दी जाए,
- और अगर वे रिश्ते-नातों का ध्यान न रखें और उनको तोड़ें तब भी रिश्तों को जोड़ा जाए और उनका ध्यान रखा जाए।

1. रिश्तों को जोड़ने और अच्छे बरताव की ताकीद

कुरआन में फ़रमाया गया है –

"उस अल्लाह से डरो जिसका वास्ता देकर तुम एक दूसरे से अपने हक़ माँगते हो और नाते-रिश्तों के ताल्लुक़ात को बिगाड़ने से बचो ।"

(कुरआन, 4:1)

इसी तरह सूरा रूम में हुक्म दिया है –

"इसलिए (ऐ मोमिन) रिश्तेदार को उसका हक़ दे और मुहताज और मुसाफ़िर को (उसका हक़) । यह तरीक़ा अच्छा है उन लोगों के लिए जो अल्लाह की ख़ुशी चाहते हों ।" (कुरआन, 30:38)

ख़याल रहे कि यहाँ "यह नही कहा गया कि रिश्तेदार, मुहताज और मुसाफ़िर को ख़ैरात या दान दे । कहा यह गया है कि यह उसका हक़ है जो तुझे देना चाहिए, और हक़ ही समझकर तू उसे दे । उसको देते हुए यह ख़याल तेरे दिल में न आने पाए कि यह कोई एहसान है जो तू उसपर कर रहा है और तू कोई बड़ी हस्ती है दान या ख़ैरात करनेवाली और वह कोई नीच है तेरा दिया खानेवाला, बल्कि यह बात अच्छी तरह तेरे दिल और दिमाग़ में रहे कि माल के असल मालिक ने तुझे अगर ज़्यादा दिया है और दूसरे बन्दों को कम दिया है तो यह ज़्यादा माल उन दूसरों का हक़ है जो तेरी आज़माइश के लिए तेरे हाथ में दे दिया गया है, ताकि तेरा मालिक देखे कि तू उनका हक़ पहचानता है या नहीं ।"

(तफ़हीमुल कुरआन, भाग-1, पृ॰-758)

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि जो आदमी अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान रखता हो उसे चाहिए कि अपने मेहमान की इज़्ज़त करे, और जो आदमी अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान रखता हो उसे चाहिए कि रिश्ते-नातों को जोड़े और जो आदमी अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान रखता हो उसे चाहिए कि भलाई की बात करे या फिर ख़ामोश रहें । (बुख़ारी, मुसलिम)

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने

फ़रमाया कि नस्ब (ख़ानदान) की इतनी जानकारी हासिल कर लो कि जिससे अपने रिश्तेदारों से मिल सको, क्योंकि रिश्ते-नातों को जोड़ने से अपने लोगों में मुहब्बत पैदा होती है, माल बढ़ता है और मौत पीछे हटती है (यानी उम्र लम्बी होती है)।

(तिरमिज़ी)

क़ुरआन, में अल्लाह ने फ़रमाया है —

''अल्लाह हुक्म देता है इनसाफ़ करने का और एहसान का और रिश्तेदारों को देने का।'' (क़ुरआन, 16:90)

इस छोटी-सी आयत में तीन ऐसी चीज़ों का हुक्म दिया गया है जिनपर पूरे समाज की दुरुस्ती का दारोमदार है। पहली चीज़ इनसाफ़ है .... दूसरी एहसान है .... तीसरी रिश्ते-नातों को जोड़ना और अच्छा बरताव करना है जो रिश्तेदारों के मामले में एहसान की एक ख़ास सूरत तय करता है। इसका मतलब सिर्फ़ यही नहीं है कि आदमी अपने रिश्तेदारों के साथ अच्छा बरताव करे और सुख और दुख में उनका साझी हो और जाइज़ हदों के अन्दर ही उनका हमदर्द और मददगार बने, बल्कि इसके मानी यह भी हैं कि सकत रखनेवाला हर आदमी अपने माल पर सिर्फ़ अपने और अपने बाल-बच्चों ही का हक़ न समझे, बल्कि अपने रिश्तदारों का हक़ भी समझे। अल्लाह की शरीअत हर ख़ानदान के खुशहाल लोगों को इस काम का ज़िम्मेदार क़रार देती है कि वे अपने ख़ानदान के लोगों को भूखा-नंगा न छोड़ें। उसकी नज़र में एक समाज की इससे बदतर कोई हालत नहीं है कि उसके अन्दर एक आदमी आराम व ऐश कर रहा हो और उसके ख़ानदान में उसके अपने भाई-बन्द रोटी-कपड़े तक को मुहताज हों। शरीअत ख़ानदान को समाज का एक अहम बुनियादी हिस्सा क़रार देती है और यह उसूल पेश करती है कि हर ख़ानदान के ग़रीब लोगों का पहला हक़ अपने ख़ानदान के खुशहाल लोगों पर है। फिर दूसरों पर उनके हक़ लागू होते हैं और हर ख़ानदान के खुशहाल आदमी पर पहला हक़ उनके अपने ग़रीब रिश्तेदारों का है फिर दूसरों के हक़ उनपर लागू होते हैं। यही बात है जिसको नबी (सल्ल॰) ने अपनी हिदायतों में वाज़ेह तौर पर बयान किया

है । इसी लिए बहुत-सी हदीसों में इसकी तफ़सील है कि आदमी के सबसे पहले हक़दार उसके माँ-बाप, उसके बीवी-बच्चे और उसके भाई-बहन हैं, फिर वे जो उनके बाद सबसे क़रीब हों, फिर वे जो उनके बाद क़रीब हों । और यही उसूल है जिसकी बिना पर हज़रत उमर (रज़ि॰) ने एक यतीम बच्चे के चचाज़ाद भाइयों को मजबूर किया कि वे उसकी परवरिश के ज़िम्मेदार हों और एक-दूसरे यतीम के हक़ में फ़ैसला करते हुए नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि अगर उसका कोई बहुत दूर का रिश्तेदार भी होता तो मैं उसपर उसकी परवरिश लाज़िम कर देता ।

अन्दाज़ा किया जा सकता है कि जिस समाज का हर आदमी इस तरह अपने-अपने लोगों को सँभाल ले, उसमें मआशी (आर्थिक) हैसियत से कितनी ख़ुशहाली, सामाजिक हैसियत से कितनी मिठास और अख़लाक़ी हैसियत से कितनी पाकीज़गी और बुलन्दी पैदा हो जाएगी ।

(तफ़हीमुल क़ुरआन, भाग-3, पृ॰- 565)

2. रिश्तों को जोड़ने और अच्छे बरताव की फ़ज़ीलत

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि रिश्तेदारी 'रहमान' की एक शाख़ है । इसलिए अल्लाह फ़रमाता है कि (ऐ रिश्तेदारी!) जो तुझे जोड़ेगा, मैं उससे जुड़ूँगा और जो तुझे काटेगा मैं उससे कट जाऊँगा । (बुख़ारी)

कहने का मतलब यह है कि जो आदमी रिश्तेदारों से ताल्लुक़ात क़ायम रखेगा, उससे अच्छा बरताव करेगा, उसे अल्लाह तआला की क़ुरबत (सामीप्य) हासिल होगी और उसकी रहमत उसपर साया करेगी, इसके ख़िलाफ़ जो रिश्तेदारों से ताल्लुक़ात तोड़ेगा, उनसे बुरा बरताव करेगा और उनके हक़ अदा करने में कोताही करेगा, वह अल्लाह की रहमत (कृपा) से दूर हो जाएगा ।

हज़रत सलमान बिन आमिर (रज़ि॰) रिवायत करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि जब तुममें से कोई रोज़ा-इफ़तार करे तो खजूर से इफ़तार करे, क्योंकि वह बरकतवाली चीज़ है । और अगर खजूर न हो तो पानी से इफ़तार करे, क्योंकि यह बड़ी पाक चीज़ है । और नबी (सल्ल॰) ने (यह भी) कहा कि

ग़ैर-रिश्तेदार ग़रीब और मुहताज को सदक़ा देना तो सिर्फ़ सदक़ा है और रिश्तेदार को सदक़ा देने में (सवाब की) दो बातें हैं — (क्योंकि एक तो यह) सदक़ा (है) और (दूसरे यह) रिश्ते-नातों को जोड़ना (भी है) । (तिरमिज़ी)

हज़रत अनस (रज़ि॰) एक रिवायत बयान करते हैं कि हज़रत अबू तलहा (रज़ि॰) अनसार में सबसे ज़्यादा मालदार थे और उन्हें अपने माल में से (अपना बाग़) 'बैरुहा' सबसे ज़्यादा पसन्दीदा था । यह बाग़ मसजिद नबवी के सामने था । नबी (सल्ल॰) वहाँ जाया करते थे और उस बाग़ का अच्छा और मीठा पानी पिया करते थे । जब यह आयत उतरी —

> "तुम उस वक़्त तक नेकी को नहीं पहुँच सकते जब तक कि उस चीज़ को (अल्लाह के रास्ते में) ख़र्च न करो जो तुम्हें पसन्द है ।"
>
> (क़ुरआन, 3:92)

— तो अबू तलहा (रज़ि॰) अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) के पास गए और कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! अल्लाह फ़रमाता है कि : तुम उस वक़्त तक नेकी को नहीं पहुँच सकते जब तक कि उस चीज़ को (अल्लाह की राह में) ख़र्च न करो जो तुम्हें प्यारी है । और मेरे नज़दीक सबसे ज़्यादा पसन्दीदा और प्यारा माल (मेरा बाग़) 'बैरुहा' है और मैं उसे अल्लाह के रास्ते में ख़ैरात करता हूँ और अल्लाह से उसके अज्र व सवाब का उम्मीदवार हूँ । तो ऐ अल्लाह के रसूल! आप जिस तरह मुनासिब समझें इसे इस्तेमाल में लाएँ । इसपर नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि वाह! वाह! यह तो फ़ायदेमन्द माल है, यह तो फ़ायदेमन्द माल है (यानी उसका ख़ैरात करना तुम्हें बहुत फ़ायदा पहुँचाएगा, अच्छा) तुमने जो कुछ कहा वह मैंने सुन लिया और मुझे यह मुनासिब मालूम होता है कि तुम यह बाग़ अपने रिश्तेदारों को दे दो । इसपर हज़रत अबू तलहा (रज़ि॰) ने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! ऐसा ही करता हूँ, और उन्होंने उस बाग़ को अपने रिश्तेदारों और अपने चचाज़ाद भाइयों में बाँट दिया । (बुख़ारी, मुसलिम)

रिश्ते-नातों को जोड़ने और उनके साथ अच्छे बरताव की फ़ज़ीलत के बारे में नबी (सल्ल॰) ने जो कुछ बताया है इससे मालूम होता है कि अच्छे बरताव से आख़िरत का सवाब मिलने के अलावा दुनिया के माद्दी (भौतिक) फ़ायदे भी हासिल होते हैं ।

हज़रत अनस बिन मालिक (रज़ि०) बयान करते हैं कि मैंने नबी (सल्ल०) से सुना है कि जिस आदमी को यह पसन्द हो कि उसके रिज़्क़ में बरकत हो और उसकी उम्र लम्बी हो तो उसे चाहिए कि रिश्तेदारों से अच्छा बरताव करे। (बुख़ारी)

सच्चाई यह है कि इनसान अपनी जिस चीज़ को अल्लाह की ख़ुशी हासिल करने के लिए ख़र्च करे उसमें बरकत होती है और वह बढ़ती जाती है। रिश्तेदारों से अच्छा बरताव करते हुए इनसान एक तो अपना माल उनके लिए ख़र्च करता है और दूसरे अपनी ज़िन्दगी का कुछ वक़्त उनकी ख़िदमत में लगाता है, इसलिए माल और उम्र दोनों में बरकत होती है। इसके अलावा अगर दूसरे पहलुओं से देखा जाए तो भी यह बात अच्छी तरह समझ में आ जाती है कि जहाँ ख़ानदानवाले और रिश्तेदारों में एक-दूसरे से मुहब्बत होती है और वे एक-दुसरे के सुख-दुख में शामिल होते हैं वहाँ दिलों में ख़ुशी और इतमीनान ज़्यादा होता है और वे एक-दूसरे की माली ख़िदमत करके एक-दूसरे को मुहताजी से बचाते हैं। मगर जहाँ रिश्तेदार एक-दूसरे से बुरा सुलूक करते हैं और एक-दूसरे की तंगी और तकलीफ़ में काम नहीं आते, वहाँ ज़ालिम और मज़लूम दोनों ही जलन-कुढ़न और बेचैनी के शिकार रहते हैं। इसका लाज़मी नतीजा बेचैनी, घबराहट और बीमारियाँ हैं जो आख़िर उम्र में अपना असर दिखाती हैं।

मशहूर ताबिई हज़रत सईद बिन मुसैयब (रह०) का कहना है कि दुनिया की उस दौलत में कोई भलाई नहीं जिसको इनसान इस नीयत से हासिल नहीं करता कि उसके ज़रिये अपने दीन और अपनी शराफ़त को बचाए और रिश्तेदारों से अच्छा बरताव करे।

वैसे तो सभी रिश्तेदार अच्छे बरताव के हक़दार होते हैं, फिर भी हदीसों में कुछ रिश्तों का ख़ास तौर पर ज़िक्र आया है।

हज़रत बराअ (रज़ि०) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया कि ख़ाला (माँ की बहन) माँ के दरजे में है———। (तिरमिज़ी)

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) ने एक रिवायत बयान की है जिसके आख़िर में अल्लाह के नबी (सल्ल०) का फ़रमान है कि क्या तुम नहीं जानते कि आदमी का चचा उसके बाप की तरह है। (अबू दाऊद)

हज़रत अबू सईद खुदरी (रज़ि॰) बयान क़रते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि जिस आदमी की तीन बेटियाँ या तीन बहनें हों, या दो बेटियाँ या दो बहनें हों फिर वह उनसे अच्छा सुलूक करे और उनके मामले में खुदा से डरे, तो उसके लिए जन्नत है। (तिरमिज़ी)

हज़रत आइशा (रज़ि॰) बयान करती हैं कि मैंने (अल्लाह के रसूल सल्ल॰ से) अर्ज़ किया कि ऐ अल्लाह के रसूल! मेरी जितनी सहेलियाँ हैं, सबकी कुन्यतें हैं (और वे अपने-अपने किसी बच्चे के नाम से उसकी माँ कहकर पुकारी जाती हैं, मगर मेरी कोई कुन्यत नहीं, उसपर) नबी (सल्ल॰) ने कहा कि तू भी अपने बेटे अब्दुल्लाह के साथ कुन्यत रख ले (और उम्मे अब्दुल्लाह कहलाना शुरू कर दे)—।

(अबू दाऊद)

जिस अब्दुल्लाह का इस रिवायत में नाम आया है, वह हज़रत अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (रज़ि॰) थे जो असमा (रज़ि॰) के बेटे और हज़रत आइशा (रज़ि॰) के भांजे थे। नबी (सल्ल॰) के इस फ़रमान से कि "तू भी अपने बेटे अब्दुल्लाह के साथ कुन्यत रख ले" यह पाया जाता है कि नबी (सल्ल॰) ने भांजे को भी बेटे की तरह ठहराया है।

सहीह बुख़ारी में एक वाक़िआ बयान हुआ है कि एक बार हज़रत हमज़ा (रज़ि॰) की एक बच्ची के बारे में हज़रत अली (रज़ि॰) हज़रत जाफ़र बिन अबी तालिब (रजि॰) और हज़रत ज़ैद बिन हारिसा (रज़ि॰) के बीच झगड़ा हो गया। उस वक़्त तक हमज़ा (रज़ि॰) शहीद हो चुके थे और इन तीनों असहाब में से हर एक की यही ख़ाहिश थी कि वे बच्ची को अपने पास रखें। अब हालत यह थी कि हज़रत जाफ़र (रज़ि॰) की बीवी बच्ची की ख़ाला थीं। नबी (सल्ल॰) ने इस झगड़े को इस तरह निपटाया कि बच्ची को हज़रत जाफ़र (रज़ि॰) के हवाले कर दिया और फ़रमाया कि — "ख़ाला माँ के दरजे पर है।"

रिश्तेदारों के साथ अच्छा बरताव या सुलूक करने के मामले में, जैसा कि ऊपर बयान हो चुका, तरतीब की भी हिदायत की गई है यानी जो रिश्तेदार ज़्यादा क़रीबी है वह पहले अच्छे सुलूक का हक़दार है, फिर जो उसके बाद है, फिर जो उसके बाद है।

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि एक शख़्स ने पूछा कि ऐ

अल्लाह के रसूल! इनसानों में (मेरे) अच्छे सुलूक का सबसे ज़्यादा हक़दार कौन है? आप (सल्ल॰) ने जवाब दिया कि तेरी माँ, फिर तेरी माँ, फिर तेरी माँ, फिर तेरा बाप, फिर जो (बाप के बाद रिश्ते में) तेरे ज़्यादा क़रीब हो, फिर जो (उस रिश्तेदार के बाद रिश्ते में) तेरे ज़्यादा क़रीब हो। (मुसलिम)

3. रिश्तेदारों से ताल्लुक़ तोड़ने की मनाही

रिश्तेदारों से ताल्लुक़ जोड़ने की ताकीद और फ़ज़ीलत के साथ-साथ ही ताल्लुक़ तोड़ने को एक बहुत बड़ा गुनाह ठहराया गया है। ताल्लुक़ तोड़ना यानी रिश्तेदारों से बुरा सुलूक करना और उनसे मिलना-जुलना बन्द कर देना एक ऐसा नापसन्दीदा काम है जिसके करनेवाले को जन्नत के क़ाबिल नहीं समझा गया।

ज़ुबैर बिन मुतइम अपने बाप से रिवायत करते हैं कि वे कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि रिश्तेदारों से ताल्लुक़ तोड़ने और उनसे बुरा बरताव करनेवाला जन्नत में नहीं जाएगा। (तिरमिज़ी)

इमाम ज़ैनुल आबिदीन अली (रह॰) के बेटे मुहम्मद (रह॰) बयान करते हैं कि मेरे बाप ने मुझे वसीयत की थी कि पाँच आदमियों के साथ कभी न रहना। मैंने पूछा: कौन? फ़रमाया कि फ़ासिक़ और नाफ़रमान के साथ कि वह तुम्हें एक लुक़्मे बल्कि उससे भी कम में बेच देगा। मैंने पूछा कि इससे कम क्या चीज़ है? फ़रमाया कि एक निवाले का लालच किया जाए और वह भी न मिले। मैंने पूछा : दूसरा कौन —? कहा : कंजूस। वह उस चीज़ को जिसकी तुम्हें सबसे ज़्यादा ज़रूरत होगी, तुमसे दूर कर देगा। मैंने पूछा : तीसरा कौन? कहा : कज़्ज़ाब (पक्का झूठा) वह सराब (मरीचिका) की तरह क़रीब को तुमसे दूर कर देगा और दूर को क़रीब। मैंने पूछा कि चौथा कौन? कहा कि अहमक़ (वेवक़ूफ़)! कि वह तुम्हें फ़ायदा पँहुचाना चाहेगा, मगर उलटा नुक़सान पहुँचा देगा। मैंने पूछा कि पाँचवाँ कौन? कहा: रिश्तेदारों से ताल्लुक़ तोड़ने और उनसे बुरा सुलूक करनेवाला। मैंने उसे अल्लाह की किताब में तीन जगहों पर धिक्कारा हुआ पाया।

जिस तरह रिश्तेदारों से अच्छा बरताव आख़िरत के सवाब का ज़रिया बनने के अलावा दुनिया में भी फ़ायदेमन्द साबित होता है उसी तरह रिश्तेदारों से नाता तोड़ना भी एक ऐसा गुनाह है कि आख़िरत के अज़ाब से पहले दुनिया में भी उसकी सज़ा

मिल जाती है ।

हज़रत अबू बक्रा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि सरकशी और रिश्तेदारों से नाता तोड़ना सब गुनाहों से ज़्यादा इस बात के हक़दार हैं कि इनके करनेवाले को अल्लाह दुनिया में भी सज़ा दे, अलावा उस सज़ा के जो उसने उसके लिए आख़िरत में रखी है । (अबू दाऊद)

4. रिश्तेदारी कैसे बाक़ी रखी जाए

अब सवाल यह है कि जब रिश्तेदारों के साथ अच्छा सुलूक इतनी फ़ज़ीलत और बड़ाईवाली चीज़ है और नातों को तोड़ना इतना बड़ा गुनाह है तो फिर क्या किया जाए कि रिश्तेदारों से ताल्लुक़ ख़त्म होने और एक-दूसरे के साथ बुरा बरताव या सुलूक करने की नौबत न आए? देखा तो यही जाता है कि ग़ैरों से इतने ताल्लुक़ात ख़राब नहीं होते जितने रिश्तेदारों से हो जाते हैं । ज़रा-सी बात बढ़ते-बढ़ते बहुत बड़ा फ़ितना बन जाती है और फिर अच्छे सुलूक का कहना ही क्या, आपस में सलाम-दुआ तक बन्द हो जाती है । कई बार बड़ी शान से एलान कर दिया जाता है कि बस अब हमेशा के लिए ख़त्म । मानो किसी बहुत बड़ी नेकी का इरादा किया जा रहा है —! कुछ लोग तो इस गुनाह को घमण्ड और बड़ाई की चीज़ समझ लेते है और इस बात पर ख़ुश होते हैं कि हमारा दिल तो ऐसा है कि जब किसी की तरफ़ से हट गया तो बस फिर हट गया । और यह कि हमने कभी किसी को आगे बढ़कर नहीं बुलाया, दूसरे ही ज़लील होकर हमें बुलाते हैं, हालाँकि नबी (सल्ल॰) के फ़रमान के मुताबिक़ जो रंजिश को दूर करने के लिए पहले सलाम कर ले, वह बेहतर आदमी होता है ।

सच्चाई यह है कि रिश्तेदारों के साथ ताल्लुक़ात ठीक रखने के लिए बड़े हौसले, सब्र व बरदाश्त और माफ़ी व दरगुज़र की ज़रूरत है । इसलिए कि कई बार दोनों फ़रीक़ों में से किसी ने भी जान-बूझकर दूसरे के साथ कोई बुरा सुलूक नहीं किया होता है, बस ग़लतफ़हमियों ही की वजह से वह बढ़ती और फैलती चली जाती हैं । अब अगर इनसान यह रिसर्च करना शुरू कर दे कि शुरुआत किसने की थी तो इस सच्चाई तक पहुँचना तो मुश्किल होता है, क्योंकि शुरूआत सही मानो में किसी ने भी नहीं की होती । लेकिन अगर इनसान बुलन्द हौसले और माफ़ी व

दरगुज़र का दामन पकड़ ले तो फिर किसी रिसर्च की ज़रूरत ही नहीं, जिसने भी किया हो, बस हमें तो ख़ुदा और ख़ुदा के रसूल (सल्ल॰) के हुक्मों पर अमल करना है। अगर बदसुलूकी की शुरुआत हमने की है तो फिर यह और भी ज़्यादा ज़रूरी बात है कि सुलह की कोशिश भी हम ही करें और अगर बदसुलूकी दूसरी तरफ़ से शुरू हुई है, तो फिर हमारे लिए यह ज़्यादा नेकी और बड़ाई की बात है कि हम बेगुनाह होने के बावजूद हालात को ठीक करने के लिए पहल करें। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने साफ़ तौर से बता दिया है कि सबसे बेहतर सुलूक यही है कि हम उन रिश्तेदारों से अच्छा बरताव करें जो हमसे अच्छा बरताव नहीं करते।

हज़रत अब्दुल्लाह बिन अम्र (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि रिश्तेदारों से अच्छा सुलूक करनेवाला वह नहीं जो (अपने रिश्तेदारों की तरफ़ से किए गए अच्छे बरताव के) जवाब में रिश्तों को जोड़े और अच्छा सुलूक करे, बल्कि रिश्तेदारों से अच्छा बरताव करनेवाला तो वह है कि जब उससे रिश्तेदारी ख़त्म की जाए तो वह (उसके जवाब में) अच्छा सुलूक करे। (तिरमिज़ी)

तिरमिज़ी में नबी (सल्ल॰) का एक फ़रमान नक़्ल हुआ है कि जो मुसलमान लोगों के साथ मिल-जुलकर रहता है और उनकी तरफ़ से पहुँचनेवाली तकलीफ़ों को बरदाश्त करता है, वह कहीं बेहतर है उस आदमी से जो लोगों से अलग-थलग रहता है और उनकी तरफ़ से पहुँचनेवाली तकलीफ़ों पर दुखी होता है।

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि एक आदमी ने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! मेरे कुछ रिश्तेदार हैं, मैं उनसे नाता जोड़ता हूँ और वह मुझसे नाता तोड़ते हैं, मैं उनसे अच्छा सुलूक करता हूँ और वे मुझसे बुराई करते हैं मैं उनके साथ शराफ़त से पेश आता हूँ और वे मेरे साथ जिहालत का सुलूक करते हैं। इसपर अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि अगर तू ऐसा ही है जैसा कि तू ने कहा है तो गोया तू उन्हें गर्म राख (यानी भूबल) फंका रहा है, और जब तक तू इस हालत पर टिका रहेगा, अल्लाह की तरफ़ से उनके ख़िलाफ़ एक मददगार तेरे साथ रहेगा। (मुसलिम)

जिसे यह इज़्ज़त और ताक़त मिल जाए कि ख़ुदा की तरफ़ से एक मददगार उसके साथ रहे, उसे और किस चीज़ की ज़रूरत रह जाती है!

पड़ोसियों के हक़

हज़रत आइशा (रज़ि०) बयान करती हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया कि जिबरईल (अलै०) मुझे पड़ोसी (के हक़) के बारे में बराबर वसीयत करते रहे, यहाँ तक कि मुझे ख़याल हुआ कि वह उसे (मीरास का) वारिस (भी) बना देंगे। (बुख़ारी)

इस हदीस में बयान का जो अन्दाज़ अपनाया गया है उससे मालूम हो जाता है कि इस्लाम में पड़ोसी के हक़ पर बहुत ज़्यादा ज़ोर दिया गया है। बात यह है कि पड़ोसी चूँकि घर के पास रहता है, इसलिए वह दूसरे लोगों के मुक़ाबले में बेहतर तौर पर दुख-सुख का साथी बन सकता है। ऐसे ही घर के पास ही की वजह से उसे दुख देने और सताने के मौक़े भी दूर रहनेवाले लोगों के मुक़ाबले में ज़्यादा हासिल होते हैं। इसी तरह घरों के ऐसे बहुत-से अन्दरूनी राज़ भी जिन्हें लोग अपने रिश्तेदारों से भी छुपाने की कोशिश करते हैं, पड़ोसियों से छुपाने मुशकिल हो जाते हैं। ऐसी हालत में अगर पड़ोसी शरारती या दुश्मन हो तो बहुत ही आसानी से ख़ानदान को रुसवा और बदनाम कर सकता है। पड़ोसियों के हक़ पर ज़ोर देकर इस बात का इन्तिज़ाम किया गया है कि पास-पास रहनेवाले एक-दूसरे के लिए राहत और आराम का सबब बनें और एक-दूसरे की परेशानियों से बच जाएँ। इसके अलावा जिस समाज में पड़ोसी के हक़ अदा करने का एहसास होगा, वहाँ ग़रीब लोगों की मदद की सूरतें भी पैदा होती रहेंगी और ग़रीब और अमीर के बीच जो अजनबियत की खाई है वह भी भरती रहेगी, क्योंकि अमीर पड़ोसियों को पड़ोसी के हक़ को पूरा करने के लिए अपने ग़रीब पड़ोसियों से मिलना-जुलना और सामाजिक ताल्लुक़ात क़ायम करने पड़ेंगे, जिससे आपस की अजनबियत और ग़ैरियत दूर होगी। ये और ऐसे ही दूसरे फ़ायदों की वजह से पड़ोसियों के हक़ अदा करने की बहुत ताकीद की गई है।

1. पड़ोसियों के साथ अच्छा बरताव

हज़रत अबू शुरैह अदवी (रज़ि॰) बयान करते हैं कि मेरे दोनों कानों ने (नबी सल्ल॰ का यह फ़रमान) सुना और जब नबी (सल्ल॰) कह रहे थे तो मेरी दोनों आँखें आप (सल्ल॰) को देख रही थीं। आप (सल्ल॰) ने कहा कि जो आदमी अल्लाह और आख़िरत के दिन पर यक़ीन रखता हो उसे चाहिए कि अपने पड़ोसी की इज़्ज़त और एहतिराम करे, और जो कोई अल्लाह और आख़िरत के दिन पर यक़ीन रखता हो उसे चाहिए कि अपने मेहमान की इज़्ज़त और एहतिराम करे और जो कोई अल्लाह और आख़िरत पर यक़ीन रखता हो उसे चाहिए कि अच्छी बात बोले या फिर ख़ामोश रहे। (बुख़ारी, मुसलिम)

हज़रत अबू ज़र (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि ऐ अबू ज़र! जब तू शोरबा (सालन आदि) पकाए तो उसमें पानी ज़्यादा रख और अपने पड़ोसियों की ख़बरगीरी कर (यानी उन्हें इस सालन में से तोहफ़ा भेज)। (मुसलिम)

इससे मालूम हुआ कि पड़ोसियों से अच्छे बरताव की एक शक्ल यह भी है कि उन्हें तोहफ़ा भेजा जाए। तोहफ़े के मामले में कुछ लोगों का ख़याल है कि उसे क़ीमती होना चाहिए, हालाँकि यह कोई ज़रूरी नहीं कि तोहफ़ा लाज़मी तौर पर क़ीमती ही हो। अपनी बिसात के मुताबिक़ जैसा तोहफ़ा भी इनसान दे सके, देना चाहिए; क्योंकि इसका असल मक़सद दिलों में आपसी मेल पैदा करना है, न की अपनी मालदारी दिखाना। इसलिए न तो तोहफ़ा देनेवाले को यह ख़याल करना चाहिए कि कोई क़ीमती चीज़ हो तो तोहफ़ा दूँ, मामूली चीज़ क्या दूँ और न तोहफ़ा लेनेवाले के लिए यह मुनासिब है कि वह तोहफ़ा देनेवाले के दिल की मुहब्बत की तरफ़ नज़र करने के बजाए तोहफ़े की क़ीमत का अन्दाज़ा लगाना शुरू कर दे।

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि॰) का बयान है कि अल्लाह के नबी (सल्ल॰) फ़रमाया करते थे कि ऐ मुसलमान औरतो! कोई पड़ोसी किसी पड़ोसी के लिए (तोहफ़े को) मामूली न समझे, चाहे वह तोहफ़ा बकरी का खुर ही क्यों न हो। (बुख़ारी)

रिश्तेदारों की तरह पड़ोसियों में भी तरतीब का ध्यान रखने की हिदायत दी गई

है। जिस पड़ोसी का दरवाज़ा ज़्यादा क़रीब है, वह अच्छे बरताव का ज़्यादा हक़दार है।

हज़रत आइशा (रज़ि॰) बयान करती हैं कि मैंने अर्ज़ किया कि ऐ अल्लाह के रसूल! मेरे दो पड़ोसी हैं, तो मैं उनमें से किसे तोहफ़ा भेजूँ। नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि जिसका दरवाज़ा तुझसे ज़्यादा क़रीब हो। (बुख़ारी)

हज़रत आइशा (रज़ि॰) के बयान से महसूस होता है कि उस वक़्त उन्हें एक ही तोहफ़ा भेजना था। इसलिए नबी (सल्ल॰) ने दोनों पड़ोसियों में से उस पड़ोसी को ज़्यादा हक़दार ठहराया जिसका दरवाज़ा ज़्यादा क़रीब था, जबकि तोहफ़े के हक़दार दोनों ही थे।

हज़रत इब्न अब्बास (रज़ि॰) बयान करते हैं कि मैंने नबी (सल्ल॰) को फ़रमाते सुना कि वह शख़्स मोमिन नहीं जो ख़ुद पेट भर कर खाता है और उसके पहलू में उसका पड़ोसी भूखा होता है। (बैहक़ी)

मुआविया बिन हैदा (रज़ि॰) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि पड़ोसी का हक़ यह है कि –

- अगर वह बीमार हो तो उसकी ख़बर ले,
- अगर वह मर जाए तो उसके जनाज़े के साथ जाए,
- और अगर वह तुझसे क़र्ज़ माँगे तो तू उसे (अगर तेरे पास हो तो) क़र्ज़ दे,
- अगर वह कोई बुरा काम कर बैठे तो उसपर परदा डाले,
- और अगर उसे कोई नेमत मिले तो तू उसे मुबारकबाद दे,
- और अगर उसे कोई मुसीबत पहुँचे तो तू उसे तसल्ली और दिलासा दे,
- और तू अपना घर उसके घर से इस तरह ऊँचा न कर ले कि उसके घर की हवा बन्द हो जाए,
- और तू अपनी हंडिया की महक से उसे तकलीफ़ न दे, सिवाय उसके कि उसमें से थोड़ा-सा कुछ उसके घर भी भेजे। (रवाहुत्तबरानी फ़िल कबीर)

हंडिया की महक से तकलीफ़ देने का मतलब यह है कि अगर तेरे घर में कोई अच्छा खाना पक रहा हो तो कोशिश कर कि उसकी महक पड़ोसी के घर में न

पहुँचे । ऐसा न हो कि उसे दुख हो कि वह ऐसा अच्छा खाना खाने की सकत नहीं रखता । हाँ, अलबत्ता अगर तू ऐसा करे कि जो अच्छी चीज़ पकाए उसमें से पड़ोसी को भी तोहफ़ा भेजे तो फिर हरज नहीं अगर उसकी महक पड़ोसी तक पहुँच जाए । इस फ़रमान का सही मानों में मतलब यह है कि हर तरह से पड़ोसी की ख़ातिर की जाए, उसे आराम पहुँचाया जाए, और उसकी मदद की जाए । उसके दुख-सुख में शरीक हुआ जाए और ध्यान रखा जाए कि हमारे किसी काम से उसे अपनी महरूमी का एहसास न हो; क्योंकि —

हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि अल्लाह के नज़दीक बेहतरीन दोस्त वे लोग हैं जो अपने दोस्तों के लिए सबसे अच्छे हैं । और अल्लाह के नज़दीक बेहतरीन पड़ोसी वे हैं जो अपने पड़ोसियों के लिए अच्छे हैं । (तिरमिज़ी)

इमाम ग़ज़ाली (रह॰) ने अपनी मशहूर किताब 'अहयाए उलूम' में पड़ोसियों के हक़ की तफ़सील इस तरह बयान की है —

1. पड़ोसी को सलाम में पहल करना,
2. उससे उकता देनेवाली लम्बी गुफ़्तगू न करना,
3. उसका बार-बार हालचाल पूछना,
4. अगर वह बीमार हो तो उसकी देख-भाल करना,
5. अगर वह परेशानी में घिर जाए तो उसके साथ हमदर्दी जताना,
6. मौत वग़ैरा में उसका पूरा साथ देना,
7. अगर उसे कोई ख़ुशी हासिल हो तो उसे मुबारकबाद देना और उसकी ख़ुशी में शरीक होना,
8. उसकी ख़ताओं और ग़लतियों को नज़रअन्दाज़ करना,
9. अपनी छत से उसके घर में न झाँकना,
10. अपना परनाला उसके घर या सेहन की तरफ़ न रखना
11. कूड़ा-करकट उसके घर के सामने न डालना,
12. उसके घर का रास्ता तंग न करना,
13. वह जो कुछ अपने घर में ले जा रहा हो उसे ग़ौर से न देखना,

14. असकी कमज़ोरियों को छिपाना और उसपर परदा डालना,
15. ज़रूरत पड़ने पर उसका पूरा साथ देना,
16. उसकी ग़ैर-हाज़िरी में उसके घर का पूरा ख़याल रखना,
17. उसके ख़िलाफ़ किसी की ग़ीबत और चुग़ली न सुनना,
18. उसकी इज़्ज़त और एहतिराम से नज़रें झुका लेना,
19. उसके नौकरों और नौकरानियों की तरफ़ नज़र न उठाना,
20. उसके बच्चों से लाड-प्यार करना, और
21. जिन दीनी या आम बातों से वह बेख़बर है उनमें उसकी रहनुमाई करना ।

यह आख़िरी बात बहुत अहम है जिसपर ख़ास तौर से ग़ौर करना चाहिए । पड़ोसी की ख़ैरख़ाही का एक तक़ाज़ा यह भी है कि अगर वह दीनी मामलों से बेख़बर है तो मुमकिन हद तक उसे इल्म सिखाने और दीन के हुक्मों से उसे वाक़िफ़ कराने की पूरी कोशिश की जाए ।

अल्क़मा अपने बाप अब्दुर्रहमान के वासते से अपने दादा अबज़ा से रिवायत करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि क्या हो गया है (दीन का इल्म रखनेवाले) लोगों को कि वे अपने (दीन के इल्म से अनजाने) पड़ोसियों में (दीन की) समझ-बूझ पैदा नहीं करते और उन्हें (दीन की) तालीम नहीं देते और उन्हें तलक़ीन और नसीहत नहीं करते और उन्हें (नेकी करने का) हुक्म नहीं देते और उन्हें (बुराई करने से) नहीं रोकते — और क्या हो गया है (दीन के इल्म से अनजान) लोगों को कि वे अपने (आलिम) पड़ोसियों से दीन का इल्म नहीं सीखते और (अपने अन्दर) दीन की समझ-बूझ पैदा (करने की फ़िक्र) नहीं करते और नसीहत हासिल नहीं करते । (फिर फ़रमाया) ख़ुदा की क़सम! (दीन का इल्म रखनेवाले) लोगों का फ़र्ज़ है कि वे अपने (बेइल्म) पड़ोसियों को (दीन की) तालीम दें और उनमें (दीन की) समझ-बूझ पैदा करने की कोशिश करें और उन्हें हिदायत व नसीहत करें और उन्हें (नेकी करने का) हुक्म दें और उन्हें बुराई करने से रोकें और (दीन का इल्म न रखनेवाले) लोगों के लिए ज़रूरी है कि अपने (आलिम) पड़ोसियों से (दीन का) इल्म सीखें और (अपने अन्दर दीन की) समझ-बूझ पैदा करें और नसीहत हासिल करें । (अगर इन दोनों गिरोहों ने ऐसा कर लिया तो ठीक) नहीं तो मैं उन्हें (इस गुनाह की) दुनिया ही में सज़ा दिलवा दूँगा । (मुसनद इसहाक़ बिन राहवियह)

2. पड़ोसियों की क़िस्में

हज़रत जाबिर (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि पड़ोसी तीन क़िस्म के होते हैं — एक वह पड़ोसी जिसका सिर्फ़ एक हक़ है और वह हक़ के लिहाज़ से सबसे कम दर्जे का पड़ोसी है, और (दूसरा) वह पड़ोसी जिसे दो हक़ हासिल हों और (तीसरा) वह पड़ोसी जिसको तीन हक़ हासिल हों । जिस पड़ोसी को एक हक़ है, वह मुशरिक पड़ोसी है जिसके साथ कोई रिश्तेदारी भी न हो, उसे पड़ोसी होने का हक़ हासिल है । और दो हक़वाला पड़ोसी वह है जो मुसलमान पड़ोसी है, उसे एक हक़ तो मुसलमान होने की वजह से है (दूसरा) पड़ोसी होने की वजह से, और तीन हक़ोंवाला पड़ोसी वह मुसलमान पड़ोसी है जो (साथ ही) रिश्तेदार (भी) हो । उसे एक हक़ मुसलमान होने की वजह से हासिल है, (दूसरा) पड़ोसी होने की वजह से और (तीसरा) रिश्तेदार होने की वजह से ।

(रवाहुल बज़्ज़ार फ़ी मुसनद)

मुजाहिद बयान करते हैं कि अब्दुल्लाह बिन अम्र (रज़ि॰) के लिए उनके घरवालों ने एक बकरी ज़बह की । जब वे आए तो कहा कि क्या तुम लोगों ने हमारे (ग़ैर-मुस्लिम) यहूदी पड़ोसी को (गोश्त का) तोहफ़ा भेजा है? मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) को फ़रमाते सुना है कि जिबरईल (अलै॰) मुझे पड़ोसी के मामले में बराबर वसीयत करते रहे, यहाँ तक कि मैंने गुमान किया कि वे पड़ोसी को वारिस बना देंगे ।

(तिरमिज़ी)

सैयद सुलैमान नदवी पड़ोसी की क़िस्में बयान करते हुए कहते हैं —

"मुहम्मद (सल्ल॰) की वह्य (शरीअत) ने पड़ोसी के पास-पास एक और क़िस्म के पड़ोसी को जगह दी है जिसको आम तौर से पड़ोसी या हमसाया नहीं कहते, मगर वह पड़ोसी ही की तरह अकसर साथ होता है, जैसे एक सफ़र के दो साथी, एक स्कूल या मदरसे के दो छात्र, एक कारख़ाने के दो नौकर, एक उस्ताद के दो शार्गिद, एक दुकान के दो साझी कि यह भी हक़ीक़त में एक तरह का पड़ोसी होना है और इसका दूसरा नाम 'साथ' और 'दोस्ती' है ।"

(सीरतुन्नबी, हिस्सा-6, पेज-279)

सूरा निसा, में कहा गया है —

"और (अल्लाह ने) नातेदार पड़ोसियों और अंजान पड़ोसियों और साथ रहनवाले साथी के साथ (नेकी करने का हुक्म दिया है) ।"

(क़ुरआन, 4:36)

यहाँ तीन लोगों की चर्चा की गई है — नातेदार या क़रीब पड़ोसी, अंजान पड़ोसी और साथ रहनेवाला साथी ।

क़रीबी पड़ोसी और अंजान पड़ोसी के बारे में सैयद सुलैमान नदवी फ़रमाते हैं —

"इस 'क़रीब' और अंजान के मानी में क़ुरआन की तफ़सीर लिखनेवालों ने इख़तिलाफ़ किया है । एक कहता है कि 'क़रीब' के मानी रिश्तेदार और नातेदार और 'अंजान' के मानी ग़ैर और अजनबी के हैं । दूसरे की राय है कि 'नज़दीक' के मानी एक ही मज़हब (धर्म) को मानने के हैं और 'दूर' से मतलब दूसरे मज़हबवाले हैं, जैसे — यहूदी, ईसाई, मुशरिक वग़ैरह । लेकिन सही मानों में ये इख़तिलाफ़ बेमानी हैं । नबी (सल्ल॰) की तालीम का मक़सद यह है कि पड़ोसियों और साथ रहनेवालों में उनको तरजीह दी जाएगी जिनके साथ उस पड़ोस और साथ में रहने के अलावा मुहब्बत और मेल-जोल का कोई दूसरा ताल्लुक़ भी मौजूद हो चाहे वह रिश्तेदारी हो, अपने मज़हब का हो या किसी और क़िस्म का साथ हो । हर हाल में हक़ के साथ दोहरे ताल्लुक़ात को इकहरे पर तरजीह (प्राथमिकता) हासिल है।"

(सीरतुन्नबी हिस्सा-6, पेज-280)

और 'क़रीबी साथी' के बारे में मौलाना मौदूदी (रह॰) का कहना है —

"मतन में 'अस्साहिबि बिल जमबि' फ़रमाया गया है जिसके मानी साथ बैठनेवाला दोस्त भी है और ऐसा शख़्स भी जिससे कहीं किसी वक़्त आदमी का साथ हो जाए । मिसाल के तौर पर, आप बाज़ार में जा रहे हों और कोई दूसरा आदमी भी आपके साथ रास्ता चल रहा हो या किसी दुकान पर आप सौदा ख़रीद रहे हों और कोई दुसरा ख़रीदार भी आपके

पास बैठा हो या सफ़र के बीच कोई आदमी आपका हमसफ़र हो । यह वक़्ती पड़ोस भी हर सभ्य और शरीफ़ इनसान पर एक हक़ आयद करती है जिसका तक़ाज़ा यह है कि मुमकिन हद तक वह उसके साथ अच्छा बरताव करे और उसे तक़लीफ़ देने से दूर रहे ।''

(तफ़हीमुल क़ुरआन, हिस्सा-1, पेज-352)

3. पड़ोसी को तकलीफ़ पहुँचाने की निन्दा

हज़रत अबू शुरैह (रज़ि॰) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि ख़ुदा की क़सम! वह ईमानवाला नहीं, ख़ुदा की क़सम! वह ईमानवाला नहीं, ख़ुदा की क़सम! वह ईमानवाला नहीं । पूछा गया कि कौन? ऐ अल्लाह के रसूल! आपने फ़रमाया कि वह जिसका पड़ोसी उसकी तकलीफ़ों और शरारतों से बचा हुआ न हो । (बुख़ारी)

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि एक शख़्स ने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल (सल्ल॰)! फ़लाँ औरत बहुत ज़्यादा नमाज़ पढ़ती, रोज़े रखती और ख़ैरात करती है । इस बात की बहुत चर्चा है मगर वह अपनी ज़बान से अपने पड़ोसियों को तकलीफ़ देती है । नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि वह आग में जाएगी । उस आदमी ने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! फ़लाँ औरत के बारे में कहा जाता है कि वह कम रोज़े रखती है, कम ख़ैरात करती है और कम नमाज़ें पढ़ती है । वह (सिर्फ़) पनीर के टुकड़े ख़ैरात करती है, मगर वह अपनी ज़बान से अपने पड़ोसियों को दुख नहीं देती । नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि वह जन्नत में जाएगी । (बैहक़ी)

हज़रत अनस (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि वह आदमी जन्नत में नहीं जाएगा जिसके पड़ोसी उसकी शरारतों और तकलीफ़ों से बचे हुए न हों । (मुसलिम)

हज़रत इब्न मसऊद (रज़ि॰) ने नबी (सल्ल॰) के बारे में एक रिवायत बयान की है जिसमें नबी (सल्ल॰) ने बयान फ़रमाया है कि किस तरह अल्लाह तआला ने इनसानों के बीच अख़लाक़ को भी उसी तरह बाँटा हुआ है जिस तरह रोज़ी को । इस रिवायत के आख़िर में नबी (सल्ल॰) फ़रमाते हैं —

"...... उस ज़ात की क़सम जिसके हाथ में मेरी जान है कि बन्दा उस वक़्त तक मुसलमान नहीं बन सकता जब तक कि उसका दिल और उसकी ज़बान मुसलमान न हो और (कोई इनसान) उस वक़्त तक मोमिन नहीं हो सकता जब तक कि उसका पड़ोसी उसकी शरारतों और तकलीफ़ों से बचा हुआ न हो।" (बैहक़ी)

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया कि कोई पड़ोसी अपने पड़ोसी को अपनी दीवार में लकड़ी गाड़ने से न रोके। फिर हज़रत अबू हुरैरा (लोगों से) फ़रमाते थे कि क्या बात है कि मैं तुम्हें इस हदीस की नाफ़रमानी करनेवाला पाता हूँ। खुदा की क़सम! मैं इस हदीस को तुम्हारे दोनों कंधों के बीच फेकूँगा (यानी मैं उसे बराबर तुम्हारे सामने बयान करता रहूँगा)। (बुख़ारी)

हज़रत उक़बा बिन आमिर (रज़ि०) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया कि क़्यामत के दिन सबसे पहले दो आदमी, जो आपस में झगड़ रहे होंगे, दो पेड़ोसी होंगे। (अहमद)

हज़रत अबू हुरैरा (रिज़०) बयान करते हैं कि एक आदमी नबी (सल्ल०) के पास आया और अपने पड़ोसी की शिकायत की। नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि जा और सब्र कर। वह आदमी फिर दो या तीन बार आया तो नबी (सल्ल०) ने कहा कि जा और अपना सामान रास्ते में डाल दे, तो उसने अपना सामान रास्ते में डाल दिया (यानी वह उस घर को छोड़कर जा रहा था)। लोग उससे (इसकी वजह) पूछने लगे तो वह उन्हें अपनी बात बताने लगा (कि इस तरह पड़ोसी ने तंग कर रखा है)। इसपर लोग उसके पड़ोसी को बुरा-भला कहने लगे (और बद्दुआ देने लगे) कि खुदा उसे ऐसा करे और ऐसा करे। फिर उसका पड़ोसी उसके पास आया और उससे कहा कि (चल घर) वापस लौट जा। (अब) मेरी तरफ़ से कोई ऐसी बात नहीं दिखेगी जो तुझे नापसन्द हो। (अबू दाऊद)

ग़ुलाम और सेवकों के हक़

इनसान चूँकि माली हैसियत से एक दरजे पर नहीं होते, इसलिए रोज़ी कमाने के जो अलग-अलग तरीक़े अपनाए जाते हैं उनमें एक यह भी है कि ग़रीब आदमी किसी खुशहाल आदमी की ख़िदमत करके उस ख़िदमत के बदले उससे माल या ज़िन्दगी की दूसरी ज़रूरी चीज़ें हासिल करता है। इन ख़िदमत करनेवालों की भी दो क़िस्में रही हैं — एक वे जो दूसरों की मिलकियत (सम्पत्ति) होते थे, मिसाल के तौर पर ग़ुलाम और दासियाँ और दूसरे वे जो होते आज़ाद ही थे मगर दूसरों की ख़िदमत करके अपनी रोज़ी कमाते थे। इस्लाम में इन दोनों क़िस्मों के ख़िदमत करनेवालों के हक़ रखे गए हैं, जिन्हें अदा करना ज़रूरी है। जिनका निचोड़ यह है —

1. ख़िदमत करनेवाले से इतना ज़्यादा काम न लिया जाए जो उसकी ताक़त से बाहर हो।
2. ख़िदमत करनेवाले की तनख़ाह या खाना, कपड़ा या दूसरी तयशुदा शर्तों को ईमानदारी से पूरा किया जाए और उससे इनसाफ़ किया जाए।
3. ख़ादिम के साथ अच्छा बरताव किया जाए।
4. ख़ादिम की ग़लतियों को माफ़ किया जाए।
5. ख़ादिम पर नामुनासिब और नाजाइज़ सख़्ती करने से परहेज़ किया जाए।

1. ताक़त के मुताबिक़ काम लेना

हज़रत मारूर बिन सुवैद (रह०) बयान करते हैं कि मैंने हज़रत अबू ज़र (रज़ि०) को देखा कि आप एक जोड़ा पहने हुए थे और आपके ग़ुलाम ने भी वैसा ही जोड़ा पहना हुआ था। मैंने उनसे इसके बारे में पूछा तो उन्होंने कहा कि मैंने नबी (सल्ल०) के ज़माने में एक शख़्स को (जो ग़ुलाम था) गाली दी और उसे उसकी माँ से ग़ैरत दिलाई। वह आदमी नबी (सल्ल०) के पास गया और यह बात बताई। इस बात पर नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि (ऐ अबू ज़र!) तू एक ऐसा आदमी है जिसमें (अभी)

जाहिलियत (का असर बाक़ी) है। (ये गुलाम) तुम्हारे भाई हैं और तुम्हारी मिलकियत हैं। अल्लाह ने इन्हें तुम्हारे मातहत कर दिया है। इसलिए जिस शख़्स का भाई उसके मातहत हो उसे चाहिए की जो ख़ुद खाए वही उसे खिलाए और जो ख़ुद पहने वही उसे पहनाए, और तुम लोग इन्हें ऐसे कामों पर मजबूर न करो जो उनके लिए मुश्किल हों और अगर तुम्हें उन्हें किसी ऐसे काम पर मजबूर करना ही पड़े तो फिर उस काम में ख़ुद उनकी मदद करो। (मुसलिम)

इमाम मालिक (रह०) बयान करते हैं कि मुझ तक यह बात पहुँची है कि हज़रत उमर बिन ख़त्ताब (रज़ि०) हर हफ़्ते के दिन मदीना के आप-पास गाँव में जाया करते थे और जब किसी गुलाम को कोई ऐसा काम करते देखते जो उसकी ताक़त से ज़्यादा होता तो उसे कम कर देते। (मुवत्ता)

एक बार एक आदमी हज़रत सलमान फ़ारसी (रज़ि०) से मिलने आया और देखा कि आप बैठे आटा गूँध रहे हैं। उस आदमी ने हैरान होकर मालूम किया कि आज आपका गुलाम कहाँ है, जो आटा ख़ुद गूँध रहे हैं? उन्होंने कहा कि गुलाम को मैंने किसी काम के लिए बाहर भेजा है, इसलिए मैं उसका काम कर रहा हूँ, ताकि गुलाम को दो काम न करने पड़ें।

2. इनसाफ़ करना

इस्लाम में गुलाम की जान और इज़्ज़त को उसी तरह इज़्ज़त के क़ाबिल ठहराया गया है जैसे आज़ाद की जान और इज़्ज़त को, और उसी तरह उसे समाज में गवाही देने और पनाह देने का हक़ भी हासिल है।

हज़रत समुरा (रज़ि०) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि जिस आदमी ने अपने गुलाम को क़त्ल किया, हम उसे क़त्ल कर देंगे और जिसने अपने गुलाम का कोई हिस्सा काटा, हम उसका हिस्सा काट देंगे। (नसई)

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि जिस आदमी ने अपने गुलाम पर इलज़ाम लगाया जबकि वह उसके लगाए हुए इलज़ाम से बरी था तो ख़ुदा क़ियामत के दिन उसपर हद जारी करेगा (यानी उसे सज़ा देगा) सिवाय उसके कि जो उसने कहा वह वैसा ही हो। (तिरमिज़ी)

हज़रत अनस (रज़ि॰) बयान करते हैं कि गुलाम की गवाही जाइज़ है, शर्त यह है कि गुलाम इनसाफ़ करनेवाला हो । इसी तरह इमाम सीरीन (रह॰) भी गुलाम की गवाही को जाइज़ ठहराते हैं, शर्त यह है कि वह गवाही उस गुलाम के आक़ा के हक़ में न हो । (बुख़ारी)

हज़रत उम्मे हानी (रज़ि॰) बयान करती हैं : मैंने अपने शौहर के दो रिश्तेदारों को पनाह दी तो नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि जिसको तूने पनाह दी उसको हमने (भी) पनाह दी । उलमा का इसी पर अमल है कि वे औरत की पनाह को जाइज़ ठहराते हैं । ऐसे ही अहमद और इसहाक़ ने भी औरत और गुलाम की पनाह को जाइज़ ठहराया है । हज़रत उमर बिन ख़त्ताब (रज़ि॰) के बारे में (भी) कहा गया है कि उन्होंने गुलाम के किसी को पनाह देने को जाइज़ ठहराया है । (तिरमिज़ी)

इस्लाम से पहले गुलामों पर बहुत ज़ुल्म किया जाता था, उन्हें मारा-पीटा जाता और सख़्त जिस्मानी सज़ाएँ दी जातीं और फिर उस ज़ुल्म को गुनाह भी नहीं समझा जाता था । नबी (सल्ल॰) ने अपनी कथनी-करनी से यह साबित कर दिया कि गुलाम पर ज़ुल्म करना भी वैसा ही गुनाह है जैसे आज़ाद पर ज़ुल्म करना, और इस ज़ुल्म की दुनिया में भी सज़ा है और आख़िरत में भी ।

हज़रत अनस (रज़ि॰) बयान क़रते हैं कि एक यहूदी ने एक लौंडी का सिर दो पत्थरों के बीच कुचल दिया । (उस लौंडी से) पूछा गया कि तेरे साथ यह (ज़ुल्म) किसने किया? क्या फ़लाँ ने किया, क्या फ़लाँ ने किया? (इस तरह कई लोगों के नाम लिए गए) यहाँ तक कि उस यहूदी का नाम लिया गया (कि क्या उसने यह ज़ुल्म किया) तो उस (लौंडी) ने अपने सिर से इशारा किया (कि हाँ) । इसपर वह यहूदी पकड़ा गया तो उसने (अपना जुर्म) क़बूल कर लिया । इसपर नबी (सल्ल॰) ने उसके बारे में हुक्म दिया तो उसका सिर भी दो पत्थरों के बीच कुचल दिया गया ।

(बुख़ारी)

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने कहा कि जिसने अपने गुलाम को नाहक़ मारा तो उससे क़ियामत के दिन बदला लिया जाएगा ।

(बैहक़ी)

नबी (सल्ल॰) की तालीम का लोगों पर यह असर था कि —

मुआविया बिन सुवैद (रज़ि॰) कहते हैं कि मैंने अपने एक गुलाम को तमांचा मारा। फिर मैं भाग गया। फिर ज़ुह्र से कुछ पहले आया और अपने बाप के पीछे (ज़ुह्र की) नमाज़ पढ़ी। फिर मेरे बाप ने उस गुलाम को भी बुलाया और मुझे भी। और उससे कहा कि इससे बदला ले लो, मगर गुलाम ने मुझे माफ़ कर दिया। (और मैं बदले से बच गया).........। (मुसलिम)

इन्हीं हज़रत सुवैद (रज़ि॰) का ही वाक़िआ है कि किसी ने उनकी एक लौंडी को तमांचा मार दिया। इसपर हज़रत सुवैद (रज़ि॰) ने कहा कि तू जानता नहीं कि चेहरे पर मारना हराम है, और कहा कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) के ज़माने में मैं अपने भाइयों में से सातवाँ था और हमारे पास सिर्फ़ एक ख़ादिम था। हममें से किसी ने उसे तमांचा मार दिया तो नबी (सल्ल॰) ने हमें हुक्म दिया कि हम उसे आज़ाद कर दें। (मुसलिम)

सहीह मुसलिम में हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि॰) के बारे में भी एक रिवायत बयान हुई है कि उन्होंने अपने एक गुलाम को बुलाया और उसकी पीठ पर एक निशान देखा और कहा कि मैंने तुझे तकलीफ़ दी। उसने कहा कि नहीं। हज़रत इब्न उमर (रज़ि॰) ने कहा कि (जाओ) अब तुम आज़ाद हो। फिर उन्होंने ज़मीन से कोई चीज़ अठाई और कहा कि इसे आज़ाद करने में मुझे इस चीज़ के बराबर भी कोई सवाब नहीं मिला, क्योंकि मैंने नबी (सल्ल॰) को कहते हुए सुना है कि जिसने अपने गुलाम को नाहक़ सज़ा दी या तमांचा मारा तो उसका कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) यह है कि उसे आज़ाद कर दे। (मुसलिम)

हज़रत आइशा (रज़ि॰) बयान करती हैं कि एक आदमी नबी (सल्ल॰) के सामने बैठ गया और कहने लगा कि ऐ अल्लाह के रसूल ! मेरे कुछ गुलाम हैं, वे मुझसे झूठ बोलते हैं और मेरे साथ धोखा करते हैं और मेरी बात नहीं मानते हैं, और मैं उन्हें गालियाँ देता हूँ और मारता हूँ तो (आप मुझे बताइए कि) उनके सबब मेरा क्या हाल होगा। नबी (सल्ल॰) ने कहा कि वे जो कुछ तुम्हारे साथ धोखा करते हैं और तुम्हारे साथ झूठ बोलते हैं और तुम्हारी बात नहीं मानते हैं, उसका (भी) हिसाब होगा और तुम उन्हें जो सज़ा देते हो (उसका भी होगा, फिर) अगर वह सज़ा जो तुम उन्हें देते हो, उनके गुनाहों के बराबर ही हुई तो हिसाब बराबर हो जाएगा, न

तुम्हें सवाब मिलेगा, न अज़ाब। और अगर वह सज़ा जो तुम उन्हें देते हो, उनके गुनाहों से कम हुई तो उनके गुनाह तुम्हारी सज़ा से जितने ज़्यादा होंगे (उनके हिसाब से) तुम्हें उतना सवाब मिल जाएगा और अगर वह सज़ा जो तुम उन्हें देते हो उनके गुनाहों से ज़्यादा हुई तो जितनी तुम्हारी सज़ा ज़्यादा होगी (उसके हिसाब से) उन्हें तुमसे बदला दिलाया जाएगा। (हदीस बयान करनेवाला) बयान करता है कि फिर वह आदमी एक कोने में चला गया और रोने-चिल्लाने लगा। (इसपर) नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि तुम अल्लाह की किताब में यह आयत नहीं पढ़ते —

> "क़ियामत के दिन हम ठीक-ठीक तौलनेवाले तराज़ू रख देंगे। फिर किसी पर ज़र्रा बराबर भी ज़ुल्म न होगा। जिसका राई के दाने के बराबर भी कुछ धरा होगा वह हम सामने ले आएँगे, और हिसाब लगाने के लिए हम काफ़ी हैं।" (क़ुरआन, 21:47)

फिर वह आदमी कहने लगा कि ऐ अल्लाह के रसूल! अल्लाह की क़सम, मैं अपने लिए और उनके लिए इससे बेहतर कुछ नहीं पाता कि उनसे जुदाई इख़्तियार कर लूँ। मैं आप (सल्ल॰) को गवाह बनाता हूँ कि ये सब के सब आज़ाद हैं।

(तिरमिज़ी)

3. माफ़ करना

इनसान चूँकि इनसान है इसलिए उससे ग़लती हो सकती है और ग़ुलाम और सेवक भी इससे अलग नहीं हैं। नबी (सल्ल॰) ने ताकीद की है कि उनकी ग़लतियों को ज़्यादा से ज़्यादा माफ़ किया जाए और उनके मामले में नर्मी से काम लिया जाए।

हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि॰) बयान करते हैं कि एक शख़्स नबी (सल्ल॰) के पास आया और कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! मैं ख़ादिम (की ग़लतियों) को कितनी बार माफ़ किया करूँ — नबी (सल्ल॰) ख़ामोश रहे। उसने फिर पूछा कि ऐ अल्लाह के रसूल! मैं ख़ादिम (की ग़लतियों) को कितनी बार माफ़ किया करूँ। नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि हर दिन सत्तर बार। (तिरमिज़ी)

ज़ाहिर है कि हर दिन अगर इनसान अपने ख़ादिम की ग़लतियों को इतनी बार माफ़ करेगा तो इस बात की संभावना कम ही है कि कभी ग़ुलाम या सेवक को सज़ा

देनी पड़े । नबी (सल्ल०) के फ़रमान का जो असल मक़सद था वह यही है कि सेवक या गुलाम के मामले में ज़्यादा से ज़्यादा नर्मी का बरताव किया जाए और उसे सज़ा देने से मुमकिन हद तक बचा जाए ।

4. अच्छा सुलूक

हज़रत अनस (रज़ि०) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल०) मदीना आए तो आप (सल्ल०) के पास कोई सेवक न था । इसलिए (मेरे सौतेले बाप) अबू तलहा (रज़ि०) ने मेरा हाथ पकड़ा और मुझे आप (सल्ल०) के पास ले गए और कहने लगे कि ऐ अल्लाह के रसूल! अनस एक अक़लमन्द लड़का है । यह आपकी ख़िदमत करेगा । हज़रत अनस (रज़ि०) कहते हैं कि फिर मैंने सफ़र में भी और घर पर भी हर जगह आप (सल्ल०) की सेवा की (और इस पूरी मुद्दत में) अगर मैंने कोई काम किया तो आप (सल्ल०) ने उसके बारे में मुझसे कभी यह न कहा कि यह काम तूने ऐसे क्यों किया और (ऐसे ही) अगर मैंने कोई काम न किया तो आप (सल्ल०) ने उसके बारे में भी कभी यह न कहा कि यह काम तूने ऐसे क्यों नहीं किया । (बुख़ारी)

हज़रत अनस (रज़ि०) का ही बयान है कि नबी (सल्ल०) सब लोगों से ज़्यादा अच्छे अख़लाक़वाले थे । एक दिन आप (सल्ल०) ने मुझे किसी काम के लिए भेजना चाहा तो मैंने कहा कि खुदा की क़सम मैं नहीं जाऊँगा । मगर मेरे दिल में यह था कि नबी (सल्ल०) ने मुझे जिस बात का हुक्म दिया है उसके लिए मैं (ज़रूर) जाऊँगा । ग़रज़ कि मैं चल दिया । यहाँ तक कि मैं कुछ बच्चों के पास से गुज़रा जो बाज़ार में खेल रहे थे । अचानक नबी (सल्ल०) ने पीछे से मेरी गुद्दी को पकड़ लिया । मैंने आप (सल्ल०) की तरफ़ देखा तो आप हँसे रहे थे । फिर आप (सल्ल०) ने फ़रमाया कि ऐ अनस! क्या तू वहाँ गया जहाँ मैंने तुझे जाने का हुक्म दिया था । मैंने जवाब दिया – "जी हाँ, ऐ अल्लाह के रसूल! मैं जा ही रहा हूँ!" हज़रत अनस (रज़ि०) कहते हैं कि खुदा की क़सम! मैंने नबी (सल्ल०) की नौ साल सेवा की । मुझे मालूम नहीं कि मैंने कोई काम किया हो और नबी (सल्ल०) ने उसके बारे में कहा हो कि तूने ऐसा और ऐसा क्यों किया या, मैंने कोई काम छोड़ दिया हो और नबी (सल्ल०) ने उसके बारे में कहा हो कि तूने ऐसे और ऐसे क्यों नहीं किया ।

(मुसलिम)

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि जब तुममें से किसी का ख़ादिम (उसके लिए खाना तैयार करके लाए और इस तरह) उसे अपना खाना (ख़ुद) तैयार करने और (तैयार करते हुए) गर्मी और धुएँ की तकलीफ़ उठाने से बचा ले तो उस (मालिक) को चाहिए कि ख़ादिम या नौकर का हाथ पकड़कर उसे अपने साथ (खाने पर) बैठा ले। फिर अगर उसे (यानी मालिक को ऐसा करने से) इनकार हो (या ख़ादिम झिझक की वजह से मालिक के साथ खाना खाने से इनकार कर दे) तो (मालिक) को चाहिए कि एक लुक़मा ही लेकर उसे खिला दे। (तिरमिज़ी)

हज़रत राफ़े बिन मकीस (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि गुलामों के साथ अच्छे सुलूक से पेश आना बरकत (की बात) है और बुरा सुलूक बदनसीबी (की बात) है। (अबू दाऊद)

5. सख़्ती करने की मनाही

हज़रत अबू मसऊद अंसारी (रज़ि॰) बयान करते हैं कि मैं अपने एक गुलाम को मार रहा था कि मैंने अपने पीछे से एक आवाज़ सुनी कि ऐ अबू मसऊद! जान ले कि जितनी क़ुदरत तुझे इस गुलाम पर हासिल है, ख़ुदा को उससे ज़्यादा क़ुदरत तुझपर हासिल है। मैंने मुड़कर देखा तो नबी (सल्ल॰) थे। मैंने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! यह अल्लाह तआला के लिए आज़ाद है। इसपर नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि अगर तू ऐसा न करता तो (जहन्नम की) आग तुझे जला देती या (आप सल्ल॰ ने यूँ फ़रमाया कि जहन्नम की) आग तुझे छू लेती। (मुसलिम)

हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि अपने गुलामों और लौंडियों से बुरा सुलूक करनेवाला जन्नत में नहीं जाएगा। (मिशकात)

हज़रत अबू उमामा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने हज़रत अली (रज़ि॰) को एक गुलाम दिया और कहा कि इसे मारना मत, क्योंकि मुझे नमाज़ियों को मारने से मना किया गया है और मैंने इसे नमाज़ पढ़ते देखा था ...... (इसी तरह की एक और रिवायत बयान हुई है कि) हज़रत उमर (रज़ि॰) ने कहा कि रसूल (सल्ल॰) ने हमें इस बात से मना किया है कि हम नमाज़ियों को मारें। (मिशकात)

हज़रत जाबिर (रज़ि०) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि तीन ख़ूबियाँ ऐसी हैं कि जिसमें ये पाई जाएँगी ख़ुदा उसकी मौत आसान कर देगा और उसे जन्नत में जगह देगा — (एक) कमज़ोर के साथ नर्मी करना, (दूसरे) माँ-बाप के साथ मुहब्बत का सुलूक करना, और (तीसरे) अपने गुलामों और लौंडियों के साथ अच्छे अख़लाक़ से पेश आना। (मिशकात)

हज़रत अबू ज़र (रज़ि०) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल०) ने कहा कि तुम्हारे गुलामों और लौंडियों में से जो तुम्हारे मिज़ाज के मुताबिक़ हों तो उन्हें खिलाओ जो तुम ख़ुद खाते हो, उन्हें पहनाओ जो तुम ख़ुद पहनते हो, और उनमें से जो तुम्हारे मिज़ाज के मुताबिक़ न हो, उसे बेच दो और अल्लाह की मख़लूक़ पर ज़ुल्म न करो। (अबू दाऊद)

कभी-कभी ऐसा भी होता था कि माँ और बच्चा या दो भाई किसी एक आदमी की मिलकियत में होते। वह उन दोनों में से किसी एक को बेच देता और वह किसी दूसरे मालिक के पास चला जाता तो इस तरह माँ और बच्चे और भाई-भाई के बीच जुदाई हो जाती। नबी (सल्ल०) ने इसे बहुत नापसन्द किया है।

हज़रत अय्यूब (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने नबी (सल्ल०) को कहते सुना कि जिसने माँ और बच्चे के बीच जुदाई डाली, ख़ुदा क़ियामत के दिन उसके और उसके अपनों के बीच जुदाई डाल देगा। (तिरमिज़ी)

हज़रत अली (रज़ि०) कहते हैं कि नबी (सल्ल०) ने मुझे दो गुलाम दिए जो आपस में भाई थे। मैंने उनमें से एक को बेच दिया। नबी (सल्ल०) ने मुझसे पूछा कि ऐ अली! तेरा (एक) गुलाम क्या हुआ? मैंने नबी (सल्ल०) को ख़बर दी (कि मैंने उसे बेच दिया)। तो आपने हुक्म दिया कि उसे वापस ले ले, उसे वापस ले ले। (तिरमिज़ी)

6. गुलाम आज़ाद करने की फ़ज़ीलत

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि जिस आदमी ने किसी ईमानवाले (गुलाम) को आज़ाद किया तो अल्लाह तआला उस (गुलाम) के हर हिस्से के बदले आज़ाद करनेवाले के हिस्से को आग (जहन्नम) से

छुटकारा देगा। (इमाम ज़ैनुल आबिदीन अली बिन हुसैन रज़ि॰ के एक ख़ास साथी) सईद बिन मरजाना कहते हैं कि मैं (इमाम) अली बिन हुसैन (रज़ि॰) के पास गया (और उनसे यह हदीस बयान की) तो उन्होंने ने अपने एक गुलाम का इरादा किया (जो इतना क़ीमती था कि) अब्दुल्लाह बिन जाफ़र (रज़ि॰) उसके लिए दस हज़ार दिरहम या एक हज़ार दीनार देने को तैयार थे, मगर इमाम अली (रह॰) बिन हुसैन ने (यह हदीस सुनकर) उसे आज़ाद कर दिया। (बुख़ारी)

अबू मूसा (रज़ि॰) कहते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने कहा कि जिसके पास कोई लौंडी हो, फिर वह उसकी परवरिश करे और उससे अच्छा बरताव करे, फिर उसे आज़ाद करके उससे शादी कर ले तो उसको दुगुना सवाब होगा। (बुख़ारी)

गुलाम के आज़ाद करने को बहुत बड़ा सवाब बताकर इस्लाम में इस बात का बन्दोबस्त किया गया है कि ज़्यादा से ज़्यादा लोग अपनी आज़ादी हासिल कर लें, कुछ गुनाहों का कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) यह रखा गया है कि गुलाम आज़ाद किया जाए, जैसे —

> "—जो शख़्स किसी मोमिन को ग़लती से क़त्ल कर दे तो उसका प्रायश्चित यह है कि एक मोमिन को गुलामी से आज़ाद करे और क़त्ल होनेवाले के वारिसों को ख़ून के बदले में रक़म दे।"
>
> (क़ुरआन, 4:92)

ऐसे ही ख़ास-ख़ास मौक़ों पर भी गुलाम आज़ाद करने की हिदायत दी गई है। मिसाल के तौर पर —

हज़रत असमा बिन्त अबी बक्र (रज़ि॰) कहती हैं कि नबी (सल्ल॰) ने सूरज ग्रहण में गुलाम को आज़ाद करने का हुक्म दिया है। (बुख़ारी)

मरे हुए लोगों (मैयतों) को सवाब पहुँचाने के लिए भी गुलाम आज़ाद किए जाते थे। हज़रत अब्दुर्रहमान बिन अबी उमरा अंसारी (रज़ि॰) कहते हैं कि उनकी माँ ने गुलाम आज़ाद करने का इरादा किया। फिर इस काम में देर लगाई, यहाँ तक कि सुबह हो गई और उनका इंतिक़ाल हो गया। हज़रत अब्दुर्रहमान (रज़ि॰) कहते हैं कि मैंने क़ासिम बिन मुहम्मद से कहा कि अगर मैं अपनी माँ की तरफ़ से गुलाम

आज़ाद कर दूँ तो क्या यह बात उन्हें फ़ायदा पहुँचाएगी । इसपर क़ासिम बिन मुहम्मद ने कहा कि हज़रत साद बिन उबादा (रज़ि॰) नबी (सल्ल॰) के पास गए थे और मालूम किया था कि मेरी माँ का इन्तिक़ाल हो गया है तो क्या यह बात उन्हें फ़ायदा देगी कि मैं उनकी तरफ़ से गुलाम आज़ाद कर दूँ, तो नबी (सल्ल॰) ने कहा था कि हाँ । (मिशकात)

यहया बिन सईद बयान करते हैं कि हज़रत अब्दुर्रहमान बिन अबी बक्र (रज़ि॰) का इंतिक़ाल सोने की हालत में हो गया तो उनकी बहन हज़रत आइशा (रज़ि॰) ने उनकी तरफ़ से बहुत-से गुलाम आज़ाद किए । (मिशकात)

7. गुलामों का दरजा

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि मेरे सामने वे तीन आदमी लाए गए जो जन्नत में सबसे पहले दाख़िल होनेवाले थे, (उनमें एक) शहीद (था, दूसरा), वह पाक दामन जो हराम और संदिग्ध चीज़ों से बचता है, और (तीसरा) वह गुलाम जिसने अच्छी तरह अल्लाह की बन्दगी की और अपने मालिक का भला चाहा । (तिरमिज़ी)

इस्लाम में नमाज़ की इमामत करना बड़ी इज़्ज़त की बात है, और यह इज़्ज़त उन लोगों को भी मिली है जो कभी गुलाम रह चुके थे ।

हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि॰) ने बताया कि हज़रत अबू हुज़ैफ़ा (रज़ि॰) के आज़ाद किए हुए गुलाम सालिम मसजिदे क़ुबा में सबसे पहले हिजरत करनेवालों और नबी (सल्ल॰) के प्यारे साथियों की इमामत किया करते थे, हालाँकि उनमें हज़रत अबू बक्र, हज़रत उमर, हज़रत अबू सलमा, हज़रत ज़ैद और हज़रत आमिर बिन रबिया, अल्लाह उन सबसे राज़ी हो, (जैसे बुज़ुर्ग) मौजूद होते थे । (बुख़ारी)

इस्लाम के आलिमों में एक लम्बी लिस्ट उन बुज़ुर्गों की है जो गुलाम रह चुके थे । उनमें से कुछ नाम ये हैं —

इमाम हसन बसरी (रह॰)

आप इल्मी हैसियत से आलिमों के सरदार और रूहानी और अख़लाक़ी हैसियत से औलिया के सरताज थे । आप के माँ-बाप भी गुलाम थे । आपकी माँ

उम्मुल मोमिनीन हज़रत उम्मे सलमा (रज़ि॰) की दासी थीं । इसलिए आप हज़रत उम्मे सलमा (रज़ि॰) के साये में पले और उनकी मुहब्बत और मेहरबानियाँ आपको हासिल रहीं । उनका आना-जाना प्यारे नबी (सल्ल॰) की दूसरी बीवियों के घरों में भी रहा । अल्लामा इब्न साद (रह॰) आपके बारे में लिखते हैं कि "हसन के अन्दर बहुत सारी ख़ूबियाँ थीं, वे अलिम थे, ऊँचे दरजेवाले थे, बड़ी शानवाले थे, फ़िक़्ह और शरीअत में बड़ी महारत रखते थे, अम्न-पसन्द थे, इबादत-गुज़ार और परहेज़गार थे, बड़े इल्मवाले थे, असर करनेवाली बेहतरीन ज़बान बोलते और लिखते थे और बहुत-ही ख़ूबसूरत थे ।"

मशहूर ताबिई आलिम हज़रत इकरमा (रह॰) जो हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि॰) के गुलाम थे, तफ़सीर (टीका), हदीस, फ़िक़्ह (धर्मशास्त्र) और इतिहास में इमामत का मक़ाम रखते थे । मशहूर मुहद्दिस इब्न साद (रह॰) ने आपको 'इल्म का समुद्र' कहा है । इमाम बुख़ारी (रह॰) ने आपको हुज्जत (फ़ैसलाकुन) और सनद (प्रमाण) माना है ।

हज़रत सईद बिन जुबैर (रह॰)

गुलामी से उठकर आख़िर आप इल्मी दुनिया के बादशाह बन गए । मैमून बिन मेहरान कहते हैं कि सईद ने ऐसे वक़्त में इंतिक़ाल किया कि धरती पर कोई ऐसा आदमी न था जो उनके इल्म का मुहताज न रहा हो ।

हज़रत अता बिन अबी रबाह (रह॰)

फ़ज़्ल व कमाल और तक़्वा व परहेज़गारी के लिहाज़ से बहुत बड़े ताबिई थे । इमाम औज़ाई (रह॰) उनके बारे में कहते हैं कि 'अता' ने जिस वक़्त इन्तिक़ाल किया उस वक़्त वे लोगों में ज़मीन पर रहनेवालों में सबसे ज़्यादा पसन्दीदा आदमी थे । इमाम अहमद बिन हंबल (रह॰) कहते हैं कि "अगर इल्म किसी के साथ मख़सूस (विशिष्ट) होता तो ऊँची नसबवाले इसके ज़्यादा हक़दार थे, लेकिन 'अता' हबशी गुलाम थे, यज़ीद बिन हबीब नौली (रह॰) हसन बसरी (रह॰) और इब्न सीरीन (रह॰) भी गुलाम थे ।"

हज़रत अबू आलिया रियाही (रह०)

हज़रत अबू आलिया (रह०) क़बीला बनी रियाह की एक औरत के गुलाम थे । अपनी आज़ादी का हाल इस तरह बताते हैं —

"मैं एक औरत का गुलाम था । जब उसने मुझे आज़ाद करने का इरादा किया तो उसके चचेरे भाइयों ने रोका .... मगर वह मुझे आज़ाद करने का फ़ैसला कर चुकी थी .... एक जुमा वह मेरे पास आई और मुझसे पूछकर जामा मसजिद की तरफ़ चली, मैं भी साथ हो लिया । मसजिद में पहुँचने के बाद इमाम ने हमें मिम्बर पर खड़ा कर दिया । औरत ने मेरा हाथ पकड़कर इन शब्दों में मेरी आज़ादी का एलान किया — खुदाया! मैं तेरे पास इसको (आख़िरत के लिए) जमा करती हूँ। मसजिदवालो! गवाह रहना, यह गुलाम खुदा के लिए आज़ाद है । आगे आम हक़ के अलावा इसपर किसी का कोई हक़ नहीं । यह कहकर वह मुझे आज़ाद करके चली गई । इसके बाद फिर वह दिखाई नहीं दी ।"

हज़रत अबू आलिया की इल्मी ख़ूबियों और कमाल की वजह से बड़े-बड़े सहाबा (रज़ि०) उनकी इज़्ज़त करते थे । हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि०) उनकी इतनी इज़्ज़त करते थे कि अबू आलिया जब उनके पास जाते तो इब्न अब्बास (रज़ि०) उनको ऊँची जगह पर बिठाते और क़ुरैश के इज़्ज़तदार लोग उनसे नीचे होते । इस सम्मान के साथ बिठाने के बाद कहते कि "इल्म इसी तरह शरीफ़ की शराफ़त में बढ़ोतरी करता है और गुलाम को तख़्त पर बिठाता है ।" ये कुछ मिसालें हैं । इस आसमान पर तो अनगिनत चमकते सितारे हैं जिनसे एक आलम (जगत) ने रौशनी हासिल की और जिन्होंने लफ़्ज़ 'गुलामी' ही को चार चाँद लगा दिए!

यतीम और बेवा के हक़

जिस बच्चे के सिर से बाप का साया उठ जाए, शरीअत की ज़बान में उसे 'यतीम' कहा जाता है । और चूँकि यतीम की हिफ़ाज़त करनेवाला, उसकी ज़रूरतों को पूरी करनेवाला और उसे कमाकर खिलानेवाला कोई मौजूद नहीं होता, इसलिए अल्लाह तआला ने उसके ख़ास हक़ रखे हैं, ताकि उसकी ज़िन्दगी में जो महरूमी आ गई है उसकी पूर्ति हो सके ।

कुरआन मजीद और नबी (सल्ल०) की हदीसों की रौशनी में यतीम एक ऐसी हस्ती है जिसका पालन-पोषण करनेवाले, देख-भाल करनेवाले और उससे अच्छा बरताव करनेवाले को बेहद सवाब की ख़ुशख़बरी दी गई है । यतीम ग़रीब भी हो सकता है और अमीर भी, मगर दोनों तरह के यतीमों की देख-भाल करने या उनसे अच्छा बरताव करने को बहुत बड़ा सवाब ठहराया गया है और यतीम की देख-भाल करनेवाले को ख़ास हिदायतें दी गई हैं कि वह उसके बारे में ऐसा रवैया अपनाए जिससे यतीम का फ़ायदा हो ।

अमीर यतीम की देख-भाल करनेवाले की एक ज़िम्मेदारी तो यह है कि वह उस यतीम की हिफ़ाज़त करे और उसके कामों का बन्दोबस्त करे, और दूसरे उसके लिए यह भी ज़रूरी है कि यतीम के माल की भी हिफ़ाज़त करे, ताकि उसके बड़े होने तक वह माल ख़त्म ही न हो जाए । अमीर यतीम की देख-भाल करनेवाले को तंबीह की गई है कि वह यतीम के माल को धोखे और बेईमानी से हड़प न कर ले । अगर उसने ऐसा किया तो वह बहुत बड़े अज़ाब का हक़दार होगा । अगर निगराँ की अपनी माली हालत अच्छी है तो उसे यतीम के माल में से कुछ भी नहीं लेना चाहिए । लेकिन अगर वह ग़रीब और मुहताज है तो उसे शरीअत की तरफ़ से इजाज़त है कि यतीम की देख-भाल करने के बदले में उसके माल में से मुनासिब मुआवज़ा ले ले । यतीम के साथ अच्छे बरताव को इतनी बड़ी नेकी समझा गया है कि बेवा माँ अगर ख़ुद अपने ही यतीम बच्चों पर ख़र्च करे और उनसे अच्छा सुलूक

और उनकी ख़ैरख़ाही करे तो वह भी सवाब की हक़दार होगी । आगे की आयतों और हदीसों में इन सब हिदायतों को खोलकर बयान कर दिया गया है ।

1. यतीम की सरपरस्ती और उससे अच्छे बरताव की ताकीद और फ़ज़ीलत

कुरआन में कहा गया है —

"अल्लाह तुम्हें हिदायत देता है कि यतीमों के बारे में इनसाफ़ पर क़ायम रहो ।"
(कुरआन, 4:127)

सूरा अद-दह्र में अबरार यानी नेक लोगों की ख़ूबी बयान की गई कि वे — "...... नज़्र (मन्नत) पूरी करते हैं और उस दिन से डरते हैं जिसकी आफ़त (आपदा) हर तरफ़ फैली हुई होगी, और अल्लाह की मुहब्बत में ग़रीब और यतीम और क़ैदी को खाना खिलाते हैं ।"

(कुरआन, 76:7-8)

हज़रत सहल (रज़ि॰) बयान करते हैं कि रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि मैं और यतीम की सरपरस्ती करनेवाला जन्नत में इस तरह होंगे, और आप (सल्ल॰) ने शहादत और बीच की उँगुली से इशारा किया और उनके बीच कुछ दूरी रखी ।

(बुख़ारी)

चूँकि ये दोनों उँगलियाँ एक-दूसरे के साथ होती हैं, इसलिए नबी (सल्ल॰) ने उनके साथ इशारा करके कहा कि इस तरह मैं और यतीम का सरपरस्त भी जन्नत में साथ-साथ होंगे जन्नत में नबी (सल्ल॰) का साथ हासिल होना बेहद फ़ख़्र और इज़्ज़त की बात होगी और यह इज़्ज़त उस आदमी को भी हासिल हो जाएगी जिसने ज़िन्दगी में किसी यतीम की सरपरस्ती की होगी । हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि जिसने मुसलमानों में से किसी यतीम को ले लिया और उसे अपने खाने और पीने में शामिल कर लिया ...... उसने अल्लाह तआला ज़रूर से ज़रूर जन्नत में दाख़िल करेगा, सिवाय इसके कि कोई ऐसा जुर्म या गुनाह किया हो जो माफ़ी के क़ाबिल न हो ।

हज़रत अबू उमामा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि

जिस आदमी ने किसी यतीम के सिर पर हाथ फेरा (और) ख़ुदा की ख़ुशी हासिल करने ही के लिए फेरा तो सिर के जितने बालों पर उसका हाथ फिरा, हर-हर बाल के बदले उसे नेकियाँ मिलेंगी, और जिसने अपने पास रहनेवाले किसी यतीम बच्ची या बच्चे से अच्छा सुलूक किया तो मैं और वह जन्नत में इन दो उँगलियों की तरह (पास-पास) होंगे, और आप (सल्ल०) ने अपनी दो उँगलियों को मिलाया (कि इस तरह पास-पास)। (अहमद; तिरमिज़ी)

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) बयान करते हैं कि एक आदमी ने नबी (सल्ल०) के सामने अपने दिल की सख़्ती की शिकायत की। नबी (सल्ल०) ने (उसे दिल की सख़्ती दूर करने का इलाज यह) बताया कि सिर पर (प्यार से) हाथ फेरा कर और ग़रीब को खाना खिलाया कर। (अहमद)

उम्मुल मोमिनीन हज़रत उम्मे सलमा (रज़ि०) के अपने शौहर हज़रत अबू सलमा (रज़ि०) से बच्चे थे। वे कहती हैं कि मैंने मालूम किया कि ऐ अल्लाह के रसूल! अगर मैं अबू सलमा के बच्चों पर ख़र्च करूँ तो क्या मुझे सवाब मिलेगा? मैं उन्हें इस तरह (ग़रीबी की हालत में) छोड़ नहीं सकती कि वे मेरे ही बच्चे हैं। (इसपर) नबी (सल्ल०) ने जवाब दिया कि हाँ, जो कुछ तू उनपर ख़र्च करेगी, तुझे उसका सवाब मिलेगा। (बुख़ारी)

2. यतीम के माल की हिफ़ाज़त

सूरा निसा में अल्लाह ने फ़रमाया—

> "जो लोग ज़ुल्म के साथ यतीमों के माल खाते हैं, सही मानो में वह पेट को आग से भरते हैं और वह ज़रूर जहन्नम की भड़कती हुई आग में झोंके जाएँगे।" (क़ुरआन, 4:10)

"हदीस में आया है कि जंगे उहुद के बाद हज़रत साद बिन रबीअ (रज़ि०) की बीवी अपनी दो बच्चियों को लिए हुए नबी (सल्ल०) की सेवा में हाज़िर हुईं और कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! यह साद की बच्चियाँ हैं जो आप (सल्ल०) के साथ उहुद में शहीद हुए हैं। इनके चचा ने पूरी जायदाद पर क़ब्ज़ा कर लिया है और इनके लिए एक दाना तक नहीं छोड़ा है। अब भला इन बच्चियों से कौन निकाह करेगा। इस

पर यह आयत उतरी ।''

(तफ़हीमुल क़ुरआन, जिल्द-1, पेज-325)

'' यतीमों के माल उनको वापस दो, अच्छे माल को बुरे माल से न बदलो, और उनके माल अपने माल के साथ मिलाकर न खाओ, यह बहुत बड़ा गुनाह है ।'' (क़ुरआन, 4:2)

यहाँ यतीम के माल के बारे में तीन हुक्म दिए गए हैं –

1. यतीम को उसका माल वापस दो । इसका मतलब यह है कि जब तक यतीम नाबालिग़ है उसके माल की हिफ़ाज़त करो और उसके फ़ायदे पर ख़र्च करो । फिर जब यतीम बालिग़ हो जाए तो ...... ईमानदारी से उसका माल उसके हवाले कर दो ।

2. दूसरा हुक्म यह है कि अच्छे माल को बुरे माल से न बदल लो । इसकी तशरीह (व्याख्या) में यह बताया गया है कि इसका एक मतलब तो यह हो सकता है कि हलाल की कमाई के बजाय हरामख़ोरी न करने लगो और दूसरा मतलब यह है कि यतीम के अच्छे माल को खुद लेकर उसकी जगह बुरा माल न दो ।

3. तीसरा हुक्म यह है कि उसके माल को अपने माल में मिलाकर न खाओ । इसकी एक शक्ल तो यह हो सकती है कि यतीम का माल और अपना माल मिलाकर ख़र्च किया जाए, मगर ख़र्च इस तरह किया जाए कि अपना माल कम ख़र्च हो और उसका ज़्यादा हो जाए, और इस तरह यतीम का नुक़सान हो । या फिर दूसरी शक्ल यह भी हो सकती है कि यतीम के माल पर क़ब्ज़ा करके उसे अपने माल में मिला लिया जाए और अपने ऊपर ख़र्च किया जाए ।

यतीम के माल में ख़यानत करने की इन सब शक्लों के बारे में कहा गया है कि ऐसा करना बहुत बड़ा गुनाह है ।

क़ुरआन में कहा गया है –

''और यतीम के माल के क़रीब न जाओ मगर ऐसे तरीक़े से जो सबसे अच्छा हो, यहाँ तक कि वह बालिग़ हो जाए ।'' (क़ुरआन, 6:152)

यहाँ भी इस बात का हुक्म दिया गया है कि यतीम के माल के मामले में ऐसा तरीक़ा अपनाओ जो बेग़रज़ी और नेक नीयती पर आधारित हो और जो यतीम के लिए ज़्यादा से ज़्यादा फ़ायदेमन्द हो । इसी तरह उसको फ़ायदा पहुँचानेवाला तरीक़ा अपनाए रखो; यहाँ तक कि यतीम इस क़ाबिल हो जाए कि अपने माल को ख़ुद सँभाल सके ।

क़ुरआन में हुक्म दिया गया है —

"ऐसा कभी न करना कि इनसाफ़ की सीमा से आगे बढ़कर इस डर से उनके माल जल्दी-जल्दी खा जाओ कि वे बड़े होकर अपने हक़ की माँग करेंगे ।" (क़ुरआन, 4:6)

आयत अपने मतलब में बिलकुल साफ़ है कि यतीमों के सरपरस्तों को इस ख़ायनत और बेईमानी से बचना चाहिए कि यतीमों के बड़े होने और अपने हक़ की माँग करने के क़ाबिल होने से पहले-पहले ही उनके माल को खा-उड़ाकर ख़त्म कर दें ।

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि सात हलाक और तबाह कर देनेवाली चीज़ों से बचो । सहाबा (रज़ि॰) ने मालूम किया कि ऐ अल्लाह के रसूल (सल्ल॰)! वे क्या हैं? आप (सल्ल॰) ने बताया —

1. अल्लाह के साथ शिर्क करना,
2. और जादू,
3. और उस जान को क़त्ल करना जिसे अल्लाह ने मुहतरम ठहरा दिया हो सिवाय इसके कि उसको क़त्ल करना हक़ का तक़ाज़ा हो,
4. और सूद खाना,
5. और यतीम का माल खाना,
6. और काफ़िरों से जंग करते हुए पीठ दिखाना,
7. और पाक दामन, मोमिन, भोली-भाली औरतों पर तोहमत लगाना ।

(मुसलिम, बुख़ारी)

यहाँ नबी (सल्ल॰) ने यतीम का माल खाने को उन सात चीज़ों में गिना है जो

हलाक और तबाह कर देनेवाली हैं । यतीमों के माल के बारे में नबी (सल्ल०) के ज़माने में एक मसला और पैदा हो गया था, वह यह कि जब ऐसे हुक्म उतरने शुरू हुए कि "यतीम के माल के पास न फटको" और यह कि "जो लोग यतीमों का माल ज़ुल्म से खाते हैं वे अपने पेट आग से भरते हैं" तो इससे वे लोग जिनकी सरपरस्ती में यतीम बच्चे थे, इतना डर गए कि उन्होंने उनका खाना-पीना तक अपने से अलग कर दिया । इससे पहले यतीमों के मालदार निगराँ उन्हें उनके माल से खिलाते-पिलाते थे और यूँ भी होता था कि उनका खाना और अपना खाना इकट्ठा तैयार कर लिया गया और उसमें से उन्हें भी खिला दिया गया और ख़ुद भी खा लिया । मगर अब देख-भाल करनेवाले डरने लगे कि कहीं खाना-पीना इकट्ठा रखने से यतीम के माल का कोई छोटा-मोटा हिस्सा भी हमारे माल में न मिल जाए । इसी लिए उन्होंने उनका खाना-पीना अलग कर दिया और नबी (सल्ल०) से पूछा कि यतीमों के मामले में हमारा रवैया क्या होना चाहिए? इसपर अल्लाह तआला की तरफ़ से यह हुक्म आया –

> "(ये लोग) पूछते हैं कि यतीमों के साथ क्या मामला किया जाए? कहो, जिस काम में उनके लिए भलाई हो वही अपनाना ठीक है । अगर तुम अपना और उनका ख़र्च और रहना-सहना एक साथ मिलाकर रखो, तो इसमें कोई हरज नहीं, आख़िर वे तुम्हारे भाई-बन्ध ही तो हैं । बुराई करनेवाले और भलाई करनेवाले दोनों का हाल अल्लाह पर ज़ाहिर है । अल्लाह चाहता तो इस मामले में तुमपर सख़्ती करता, मगर वह बाइख़्तियार (प्रभुत्वशाली) होने के साथ ही सूझ-बूझवाला भी है ।"
>
> (क़ुरआन, 2:220)

ज़ाहिर है कि ख़र्च और रहना-सहना एक साथ रखने में देख-भाल करनेवालों के लिए ज़्यादा आसानी थी । इसलिए अल्लाह ने साफ़ कह दिया कि इसमें कोई हरज नहीं, शर्त यह है कि ईमानदारी से काम लिया जाए । असल चीज़ यह है कि यतीमों के माल की हिफ़ाज़त की जाए और उसे एक मुक़द्दस अमानत समझकर उसके मामले में पूरी-पूरी ख़ुदातरसी और ख़ैरख़ाही से काम लिया जाए । अगर इस बात का ध्यान रखा गया तो एक साथ मिलाकर ख़र्च कर लेने में कोई हरज नहीं ।

इसके अलावा यतीमों के मामले में एक और सहूलत दी गई है । वह यह है कि अगर यतीमों का निगराँ कोई ग़रीब आदमी है तो इसमें कोई हरज नहीं कि वह यतीमों की निगरानी करने की मुनासिब उजरत (मज़दूरी) ले ले । यह उजरत यतीम के माल ही से ली जाएगी और उसके मामले में भी यह ख़याल रखना ज़रूरी है कि यह 'मुनासिब' हो, इतनी ज़्यादा न हो कि यतीम को माली नुक़सान पहुँचे । और फिर जो कुछ वह ले, चोरी-छिपे न ले, बल्कि एलान करके ले और उसका हिसाब रखे । लेकिन अगर यतीमों की देख-भाल करनेवाला हैसियतवाला और अमीर आदमी है तो उसे यह भलाई का काम सिर्फ़ ख़ुदा की ख़ुशी के लिए करना चाहिए और उसकी मज़दूरी नहीं लेनी चाहिए ।

क़ुरआन की सूरा निसा में इसके बारे में यूँ कहा गया —

> "(यतीम का) जो (निगराँ) मालदार हो, वह परहेज़गारी से काम ले और जो ग़रीब हो वह भले तरीक़े से खाए ।" (क़ुरआन,4:6)

हज़रत आइशा (रज़ि०) कहती हैं कि यह आयत यतीम के निगराँ के बारे में उतरी है जो उसकी निगरानी करता है और उसके माल की देख-भाल करता है, अगर वह फ़क़ीर हो तो दस्तूर के मुताबिक़ यतीम के माल में से खा ले। (बुख़ारी)

फिर जब यतीम बालिग़ हो जाए और अपने माल को ख़ुद सँभालने के क़ाबिल हो जाए तो फिर निगराँ का काम ख़त्म हो गया । अब उसे चाहिए कि ईमानदारी से यतीम का माल उसके हवाले कर दे । सूरा निसा में इस बारे में यूँ हिदायत दी गई है—

> "और यतीमों को जाँचते रहो यहाँ तक कि वे निकाह की उम्र को पहुँच जाएँ । फिर अगर तुम उनके अन्दर सलाहियत पाओ तो उनके माल उनके हवाले कर दो ।" (क़ुरआन, 4:6)
>
> यानी "जब वह बालिग़ होने की उम्र को पहुँच रहे हों तो देखते रहो कि उनकी दिमाग़ी सलाहियत कैसी है और उनमें अपने मामलात को ख़ुद अपनी ज़िम्मेदारी पर चलाने की सलाहियत कितनी पैदा हो रही है, माल उनके हवाले करने के लिए दो शर्तें रखी गई हैं — एक बालिग़ होना,

दूसरे रुश्द यानी माल के सही इस्तेमाल की क़ाबिलियत। पहली शर्त के बारे में फ़ुक़हा में इत्तिफ़ाक़ है (कि यतीम का माल उसके हवाले किए जाने के लिए उसका बालिग़ होना ज़रूरी है)। दूसरी शर्त के बारे में इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) की राय यह है कि अगर बालिग़ होने की उम्र को पहुँचने पर यतीम में माल के सही इस्तेमाल की समझ न पाई जाए तो यतीम के निगराँ को ज़्यादा से ज़्यादा सात साल और इन्तिज़ार करना चाहिए। फिर चाहे समझदारी पाई जाए या न पाई जाए, उसका माल उसके हवाले कर देना चाहिए। इमाम अबू यूसुफ़ (रह०), इमाम मुहम्मद (रह०) और इमाम शाफ़ई (रह०) की राय यह है कि माल के हवाले किए जाने के लिए हर हाल में समझदारी का पाया जाना ज़रूरी है। शायद इन हज़रात की राय के मुताबिक़ यह बात ज़्यादा सही और मुनासिब होगी कि इस मामले में क़ाज़ी से राबता क़ायम किया जाए और अगर क़ाज़ी पर यह साबित हो जाए कि उसमें समझदारी नहीं है, तो वह उसके मामलों की निगरानी के लिए खुद कोई मुनासिब इंतिज़ाम कर दे।'' (तफ़हीमुल क़ुरआन, भाग-1, पृ०-323)

क़ुरआन पाक ने यह भी हुक्म दिया है कि यतीम का माल उसके हवाले किया जाए तो उसपर गवाह बना लिए जाएँ।

सूरा निसा में कहा गया है —

''फिर जब उनके माल उनके हवाले करने लगो तो लोगों को उसपर गवाह बना लो, और हिसाब लेने के लिए अल्लाह काफ़ी है।''

(क़ुरआन, 4:6)

इस तरह अल्लाह यतीम के मामले में हर तरह की सावधानी सिखाता है ताकि न यतीम को कोई नुक़सान पहुँचे और न उसके सरपरस्त को।

3. यतीम से बुरा सुलूक करने की मनाही

सूरा अज़्-ज़ुहा में कहा गया है —

''इसलिए जो यतीम हो उसपर सख़्ती न करना।'' (क़ुरआन, 93:9)

कुरआन की सूरा अल-माऊन में आख़िरत की सज़ा व इनाम को झुठलानेवाले आदमी की एक निशानी यह भी बताई गई है कि वह —

"यतीम को धक्के देता है ।" (कुरआन, 107:2)

तफ़हीमुल कुरआन, भाग-6, में इस बारे में बयान हुआ है —

"'यतीम को धक्के देता है' के कई मानी हैं : एक यह कि वह यतीम का हक़ हड़प कर जाता है और उसे उसके बाप की छोड़ी हुई जायदाद से बेदख़ल करके उसे धक्के मारकर निकाल देता है । दूसरे यह कि यतीम अगर उससे मदद माँगने आता है तो रहम करने के बजाए उसे धुतकार देता है और फ़िर भी अगर वह अपनी परेशानी की बिना पर मदद और रहम की उम्मीद लिए खड़ा रहे तो उसे धक्के देकर भगा देता है । तीसरे यह कि वह यतीम पर ज़ुल्म ढाता है । मिसाल के तौर पर, उसके घर में अपना ही कोई रिश्तेदार यतीम हो तो उसके नसीब में सारे घर की सेवा करने और बात-बात पर झिड़कियाँ और ठोकरें खाने के सिवा कुछ नहीं होता । इसके अलावा इसमें ये मानी भी छिपे हैं कि उस आदमी से कभी-कभार यह ज़ालिमाना हरकत हो नहीं जाती, बल्कि उसकी आदत और उसका हमेशा का रवैया यही है । उसे यह एहसास ही नहीं है कि यह कोई बुरा काम है जो वह कर रहा है, बल्कि वह बड़े ही इतमीनान से यह तरीक़ा अपनाए रखता है और यह समझता है कि यतीम एक बेबस और बेसहारा इनसान है । इसलिए कोई हरज नहीं अगर उसका हक़ मार खाया जाए या उसे ज़ुल्म व सितम का तख़्त-ए-मश्क़ बनाकर रखा जाए या वह मदद माँगने के लिए आए तो उसे धुतकारा जाए — इस सिलसिले में एक बड़ा अजीब वाक़िआ क़ाज़ी अबुल हसन अल-मादरदी ने अपनी किताब 'आलामुन-नबुव्वह' में लिखा है । अबू जहल एक यतीम का सरपरस्त था । वह बच्चा एक दिन इस दशा में उसके पास आया कि उसके बदन पर कपड़े तक न थे और उसने गिड़गिड़ाते हुए कहा कि उसके बाप के छोड़े हुए माल में से वह उसे कुछ दे दे । मगर उस ज़ालिम ने उसकी तरफ़ ध्यान तक न दिया

और वह खड़े-खड़े, आख़िर में मायूस होकर, पलट गया। क़ुरैश के सरदारों ने शरारत के तौर पर उससे कहा कि मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) के पास जाकर शिकायत करो, वे अबू जहल से सिफ़ारिश करके तुझे तेरा माल दिलवा देंगे। बच्चा बेचारा अनजान था कि अबू जहल का नबी (सल्ल०) से क्या ताल्लुक़ है और ये दुराचारी उसे किस ग़रज़ के लिए यह मशविरा दे रहे हैं। वह सीधा नबी (सल्ल०) के पास पहुँचा और अपना हाल बयान किया। नबी (सल्ल०) उसी वक़्त उठ खड़े हुए और उसे साथ लेकर अपने सख़्त दुश्मन अबू जहल के यहाँ गए। आप (सल्ल०) को देखकर उसने आपका स्वागत किया और जब आपने कहा कि इस बच्चे का हक़ दे दो तो वह तुरंत मान गया और उसका माल लाकर उसे दे दिया। क़ुरैश के सरदार ताक में लगे हुए थे कि देखें इन दोनों के बीच क्या मामला पेश आता है। वे किसी मज़ेदार झड़प की उम्मीद कर रहे थे, मगर जब उन्होंने यह मामला देखा तो हैरान होकर अबू जहल के पास आए और उसे ताना मारा कि तुम भी अपना दीन छोड़ गए। उसने कहा कि ख़ुदा की क़सम! मैंने अपना दीन नहीं छोड़ा, मगर मुझे ऐसा महसूस हुआ कि मुहम्मद के दाएँ और बाएँ एक-एक हथियार है जो मेरे अन्दर घुस जाएगा, अगर मैंने थोड़ा-सा भी उनकी मरज़ी के ख़िलाफ़ काम किया। — इस घटना से न सिर्फ़ यह मालूम होता है कि उस ज़माने में अरब के सबसे ज़्यादा तरक़्क़ीयाफ़ता (विकसित) और इज़्ज़तदार क़बीले तक के बड़े-बड़े सरदारों का यतीमों और दूसरे बेसहारा लोगों के साथ क्या बरताव था, बल्कि यह भी मालूम होता है कि नबी (सल्ल०) किस उँचे अख़लाक़ के मालिक थे और आपके इस अख़लाक़ का आपके सख़्त दुश्मनों तक पर क्या दबदबा था!''

नबी (सल्ल०) की तालीमात (शिक्षाओं) ने उन सख़्त मिज़ाज लोगों की फ़ितरत (प्रकृति) को कैसे बदल दिया —

सीरतुन्नबी, जिल्द-6 में यतीमों के हक़ बयान करते हुए सैयद सुलैमान नदवी इसकी यूँ वज़ाहत (व्याख्या) करते हैं —

''नबी (सल्ल०) की इन शिक्षाओं ने अरब की फ़ितरत बदल दी। वही दिल जो ग़रीब और कमज़ोर यतीमों के लिए पत्थर से ज़्यादा सख़्त थे, मोम से ज़्यादा नरम हो गए। हर सहाबी (रज़ि०) का घर एक यतीमख़ाना बन गया। एक-एक यतीम पर नरमी और मुहब्बत के लिए कई-कई हाथ आगे बढ़ने लगे। हर एक उसकी परवरिश और देख-भाल के लिए अपनी मुहब्बत भरी गोद को पेश करने लगा। जंगे बद्र के यतीमों के मुक़ाबले में नबी (सल्ल०) के दिल का टुकड़ा फ़ातिमा बतूल (रज़ि०) अपने दावे को उठा लेती हैं। हज़रत आइशा सिद्दीक़ा (रज़ि०) अपने ख़ानदान और अनसार वग़ैरा की यतीम लड़कियों को अपने घर ले जाकर दिल व जान से पालती हैं। हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि०) का यह हाल था कि वे किसी यतीम बच्चे को साथ लिए बिना कभी खाना नहीं खाते थे ...... । आज दुनिया के शहर-शहर में यतीमख़ाने क़ायम हैं; मगर, यदि यह सवाल किया जाए कि क्या मुहम्मद (सल्ल०) से पहले भी यह बदक़िस्मत गिरोह इस नेमत से वाक़िफ़ था, तो इतिहास की ज़बान से जवाब नहीं में मिलेगा। इस्लाम पहला धर्म है जिसने इस मज़लूम गिरोह की फ़रियाद सुनी, अरब पहली जगह है जहाँ किसी यतीमख़ाने की बुनियाद पड़ी और इस्लाम की हुकूमत दुनिया की पहली हुकूमत है जिसने इस ज़िम्मेदारी को महसूस किया और अरब, मिस्र, शाम (सीरिया), इराक़, हिन्दुस्तान, जहाँ मुसलमानों ने अपनी हुकूमतों की बुनियादें डालीं, साथ-साथ उन मज़लूमों और पीड़ितों के लिए भी अमन व चैन के घर बनाए, उनके ख़र्चों के लिए वज़ीफ़े (पेंशन) तय किए, स्कूल क़ायम किए, जायदादें वक़्फ़ कीं और दुनिया में एक नई संस्था (Institute) की बुनियाद डाली, और अपने क़ाज़ियों (न्यायधीशों) की यह ज़िम्मेदारी ठहराई कि वे उन यतीमों के सरपरस्त बनें जिनके सरपरस्त और ज़िम्मेदार मौजूद न हों और उनकी जायदादों की निगरानी, उनके मामलों की देख-भाल और उनकी शादी-ब्याह का इन्तिज़ाम करें।''

4. बेवा (विधवा) के हुक़ूक़

यतीम बच्चों के बाद सबसे ज़्यादा कमज़ोर, प्यार व हमदर्दी का हक़दार गिरोह

बेवा औरतों का है । वे उन साथियों से महरूम (वंचित) हो चुकी होती हैं जिनके ज़िम्मे उनकी हिफ़ाज़त करना, उनकी ज़रूरतों को पूरा करना और ज़िन्दगी के हर अच्छे-बुरे वक़्त में उनका साथ देना था । शौहर की मौत बीवी के लिए सिर्फ़ जज़्बाती सदमा ही नहीं होती बल्कि इससे उसकी ज़रूरतें भी मुतास्सिर (प्रभावित) होती हैं और औरत भी इनसान होने के नाते रूह और माद्दे दोनों से बनी है, इसलिए वह शौहर से महरूम हो जाने की वजह से जज़्बाती और माद्दी दोनों तरह के ग़म और अन्देशों का शिकार हो जाती है । ऐसे हालात भी आम देखे जा सकते हैं, जहाँ मियाँ-बीवी के रिश्ते अच्छे नहीं थे और ज़िन्दगी नाइत्तिफ़ाक़ी में कट रही थी मगर जब शौहर की मौत हो गई तो बीवी ग़म और दुखों से चूर-चूर हो गई, क्योंकि उस इनसान के उसकी ज़िन्दगी से हमेशा के लिए निकल जाने के बाद उसे पता चला कि उसके ख़ास मेयार पर पूरा न उतरने के बावजूद उसके शौहर ने उसकी और उसके बच्चों की कितनी ज़िम्मेदारियाँ सँभाल रखी थीं । यानी शौहर की मौत बीवी के लिए एक बहुत बड़ा जज़्बाती और माद्दी ग़म है और जो औरत इस ग़म के चंगुल में फँस जाए, समाज का फ़र्ज़ है कि उसके ग़म और तकलीफ़ों को कम करने और उसे महरूमी के एहसास से बचाने के लिए जो कुछ भी कर सकता है, करे ।

इस्लाम ने बेवा को जो हक़ दिए हैं उनको बयान करने से पहले यह बता देना फ़ायदेमन्द होगा कि अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल॰) से पहले विभिन्न क़ौमों में बेवा औरतों के साथ कैसी बदसुलूकी की जाती थी । सैयद सुलैमान नदवी (रह॰) ने इसपर अपनी राय ज़ाहिर करते हुए जो कुछ कहा है उसका खुलासा यह है —

> "यहूदियों में बेवा औरत एक भाई के मरने के बाद दूसरे भाई की जागीर हो जाती थी । वह जिस तरह चाहता था उसके साथ मामला कर सकता था ...... ईसाइयों के यहाँ यह ज़बरदस्ती का क़ानून तो जाता रहा; मगर वे कोई दूसरा ईजाबी (सकारात्मक) पहलू भी पेश न कर सके ...... हिन्दुओं में शौहर की मौत के बाद बीवी की ज़िन्दगी की ज़रूरत ही नहीं समभी जाती थी, अब उसके लिए यही मुनासिब था कि अपने शौहर की चिता से लिपटकर बेमौत मर जाए, और अगर वह ज़िन्दा रहे भी तो इस हालत में कि दुनिया के सारे आराम और लज़्ज़तों से अलग होकर सारी

शौहर के वारिसों की मिलकियत बन जाती थी और वे जो चाहते थे उसके साथ कर सकते थे । उसको तकलीफें दे-देकर उससे महर माफ़ कराते थे और उसको अपनी मरज़ी के बिना कहीं शादी नहीं करने देते थे ।'' (सीरतुन-नबी, जिल्द-6)

इस्लाम आया तो जहाँ और बहुत-से मज़लूम गिरोहों की फ़रियाद सुनी गई, वहीं बेवा औरतों की भी सुनी गई । इस्लाम ने बेवा औरतों को जो हक़ दिए हैं वे संक्षेप में इस तरह हैं :–

1. दूसरा निकाह

सबसे पहली बात तो यही है कि बेवा औरत के बारे में पसन्द यही किया गया है कि वह दोबारा निकाह करके फिर उसी इज़्ज़त व आबरू और आराम व हिफ़ाज़त की ज़िन्दगी में चली जाए जिससे वह शौहर की मौत की वजह से महरूम हो गई थी । सूरा अन-नूर में फ़रमाया गया है –

''अपनी विधवाओं और विधुरों (जिनकी बीवी मर चुकी हों) के निकाह कर दो ।'' (क़ुरआन, 24:32)

यह बहुत अफ़सोस की बात है कि मुसलमानों में अनगिनत ख़ानदान ऐसे हैं जो दूसरी जाहिली तहज़ीबों के असर से बेवा के दूसरे निकाह को एतिराज़ की निगाह से देखते हैं । ऐसे लोगों को ऊपर लिखी क़ुरआन की आयत पर नज़र डालनी चाहिए और ख़ुदा से डरना चाहिए कि वे एक ऐसी बात को एतिराज़ के क़ाबिल ठहराते हैं जिसका ख़ुदा ने साफ़ लफ़्ज़ों में हुक्म दिया है । हाँ, अलबत्ता अगर कोई बेवा औरत अपने बच्चों की ख़ैरख़ाही की ख़ातिर या किसी और शरई मजबूरी की वजह से दूसरा निकाह न करे और नेकी से ज़िन्दगी गुज़ारे तो ऐसा करना बिलकुल जाइज़ है लेकिन दूसरे निकाह से सिर्फ़ इसलिए परहेज़ करना कि लोग उँगलियाँ उठाएँगे, अल्लाह तआला के मुक़ाबले में लोगों को ज़्यादा अहमियत देना है । इस बात को याद रखना चाहिए कि लोगों के डर के मारे अल्लाह की एक हलाल ही नहीं बल्कि पसन्दीदा चीज़ को हराम कर लेना बेदीनी और बेवक़ूफ़ी की बात है । क्योंकि जब कोई नौजवान बेवा बेहिफ़ाज़त होने की वजह से, अल्लाह न करे, किसी आज़माइश का शिकार होगी तो यही लोग जिनके डर के मारे उसने अकेले ज़िन्दगी गुज़ारने का

इरादा किया था, दुगनी ताक़त से उसपर उँगलियाँ उठाएँगे ।

सच यह है कि दूसरे निकाह की इजाज़त औरत के लिए ख़ुदा की एक रहमत है और उसका एक फ़ायदेमन्द हक़ है । इसलिए यह अजीब बात है कि औरत एक तरफ़ तो अपने हक़ के लिए चीख़-पुकार करे और दूसरी तरफ़ एक ऐसे हक़ को जो अल्लाह तआला ने उसे दिया हुआ है, इस्तेमाल न करने पर अड़ी रहे । दूसरे निकाह का मतलब यह है कि जो कुछ उससे छिन गया है, वह सब कुछ दोबारा हासिल कर ले । इसी लिए बेवा का पहला हक़ जो इस्लाम ने अपनी रहमत से उसे दिया है यही है कि वह बेवा होने के ग़मनाक और एक हद तक ख़तरनाक माहौल से बाहर निकल आए और दोबारा सुहागिनों की महफ़ूज़ और बहुत हद तक पुरसुकून और आरामदेह ज़िन्दगी को अपना ले । हाँ, अलबत्ता जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि अगर उसके पास कोई ऐसी शरई रुकावट है जिसकी वजह से वह दूसरा निकाह नहीं करना चाहती और उसे ख़तरा है कि दूसरे निकाह से उसके यतीम बच्चों को किसी क़िस्म का नुक़सान पहुँचेगा और अपनी तबीयत के रुझान की बिना पर उसे यक़ीन है कि इनशा-अल्लाह नेकी की ज़िन्दगी गुज़ारेगी, तो फिर उसे मजबूर भी नहीं किया गया है कि वह दूसरा निकाह करे ही । पहले निकाह से उसने सुन्नत की पैरवी तो कर ही ली है ।

2. रिश्ता चुनने का इख़्तियार

यहाँ इस बात को साफ़ तौर पर बयान कर देना भी ज़रूरी है कि बेवा अपने निकाह के मामले में पूरे तौर पर आज़ाद है और कोई उसे अपनी राय का पाबन्द करने का हक़ नहीं रखता । न मरहूम शौहर के रिश्तेदार और न उसके अपने रिश्तेदार, कोई भी उसे मजबूर नहीं कर सकता कि वह किसी ख़ास रिश्ते को क़बूल कर ले या किसी ख़ास रिश्ते को क़बूल न करे । सरपरस्त की इजाज़त जो आलिमों के एक गिरोह के नज़दीक कुँवारी लड़की के लिए ज़रूरी है, बेवा के लिए ज़रूरी नहीं है । बेवा नेक तरीक़े से अपने लिए जो रिश्ता मुनासिब समझे उसे क़बूल कर सकती है ।

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि कुँवारी लड़की का निकाह न किया जाए, जब तक कि उससे 'इजाज़त' न ली जाए और बेवा का निकाह न किया जाए जब तक कि उससे 'हुक्म' न लिया जाए——। (बुख़ारी)

यहाँ लफ़्ज़ 'हुक्म' निकाह के मामले में बेवा के इख़्तियार को पूरी तरह वाज़ेह कर रहा है।

3. साज-सज्जा और श्रृंगार का हक़

बेवा औरत ज़ब अपनी इद्दत चार महीने और दस दिन गुज़ार ले तो उसके बाद उसे इस बात का पूरा-पूरा हक़ है कि वह शरई हदों के अन्दर साज-सज्जा और बनाव-श्रृंगार से काम ले। बेवा के बारे में यह समझना कि अब उसे बनने-सँवरने और बनाव-श्रृंगार करने का मानो कोई हक़ ही हासिल नहीं रहा, जाहिलाना ख़याल है और ग़ैर-इस्लामी तहज़ीबों (संस्कृतियों) की देखा-देखी अपनाया गया है। बेवा को भी अच्छा खाने, अच्छा पहनने और ख़ुशी-ख़ुशी रहने का उतना ही हक़ हासिल है जितना सुहागिन को या बिन ब्याही को।

4. बेवा से हमदर्दी और अच्छे बरताव की फ़ज़ीलत

अगर कोई बेवा नेक नीयती से बेवा ही की ज़िन्दगी को अपने और अपने बच्चों के लिए मुनासिब समझती है और दूसरा निकाह नहीं करती तो फिर शौहर के बाद जिस रिश्तेदार पर उसकी सरपरस्ती की ज़िम्मेदारी शरई तौर पर आयद होती है, उसका फ़र्ज़ है कि उस ज़िम्मेदारी को पूरा करे। बेवा औरतों से अच्छा बरताव और हमदर्दी करना, उनके बिगड़े काम बनाने की कोशिश करना और उनकी इज़्ज़त करना तो हर मुसलमान के लिए अज्र और सवाब का ज़रिया है। सहीह बुख़ारी में उमर बिन मैमून (रज़ि॰) की एक रिवायत बयान हुई है जिसमें वे बताते हैं कि हज़रत उमर बिन ख़त्ताब (रज़ि॰) ने कहा कि अगर ख़ुदा ने मुझे सलामत रखा तो मैं ईराक़ की बेवा औरतों को इतना ख़ुशहाल कर दूँगा कि फिर मेरे बाद वह कभी भी किसी की मुहताज न होंगी। उमर बिन मैमून कहते हैं कि इस वाक़िआ के चौथे दिन ही हज़रत उमर (रज़ि॰) शहीद कर दिए गए। (बुख़ारी)

ज़ैद बिन असलम अपने बाप से रिवायत करते हैं । वे कहते हैं कि मैं हज़रत उमर बिन ख़त्ताब (रज़ि॰) के साथ बाज़ार की तरफ़ गया । वहाँ हज़रत उमर (रज़ि॰) को एक जवान औरत मिली और कहने लगी कि ऐ अमीरुल मोमिनीन! मेरा शौहर मर गया है और छोटे-छोटे बच्चे छोड़ गया है । खुदा की क़सम! उनके पास बकरी का एक पाया भी पकाने के लिए नहीं है, न उसके पास कोई खेती है, न दूधवाला जानवर । मुझे ख़तरा है कि सूखा और अकाल उन्हें हलाक कर देगा और मैं खुफ़्फ़ाफ़ बिन ऐमा ग़िफ़ारी (रज़ि॰) की बेटी हूँ । मेरा बाप (सुलह) हुदैबिया में नबी (सल्ल॰) के साथ था । (यह सुनकर) हज़रत उमर (रज़ि॰) उसके पास खड़े हो गए और आगे न गए । फिर फ़रमाया, "तुम्हारे लिए इज़्ज़त है तुम्हारा नसब तो मेरे नसब से मिलता हुआ है ।" फिर आप एक ताक़तवर ऊँट की तरफ़ आए जो घर में बँधा हुआ था, और उसपर दो बोरियाँ रखीं और उन्हें अनाज से भर दिया और उनके बीच नक़दी और कपड़े रख दिए, फिर उसकी रस्सी औरत के हाथ में दे दी और कहा कि इसे ले जाओ, इसके ख़त्म होने से पहले अल्लाह तआला तुम लोगों को इससे बेहतर देगा । (इसपर) एक आदमी ने कहा कि ऐ अमीरुल मोमिनीन! आपने तो इस औरत को बहुत दे दिया । हज़रत उमर (रज़ि॰) ने फ़रमाया, "तेरी माँ तुझे खोए, खुदा की क़सम! मैंने इसके बाप और भाई को देखा कि उन्होंने एक मुद्दत तक एक क़िले का घेराव किए रखा, यहाँ तक कि उसे फ़तह कर लिया ।" (बुख़ारी)

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि बेवा और ग़रीब के लिए दौड़-धूप करनेवाला (सवाब मिलने के लिहाज़ से) उस आदमी की तरह है जो अल्लाह की राह में जिहाद करता हो या (उसकी तरह है) जो रात भर खड़ा इबादत करता हो और दिन भर रोज़ा रखता हो ।"

(बुख़ारी)

मुहताज, ग़रीब, मजबूर और परेशानहाल के हक़

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि अल्लाह तआला क़ियामत के दिन कहेगा कि ऐ आदम के बेटे! मैं बीमार हुआ तो तूने मेरी इयादत (बीमारपुर्सी) न की ।

इनसान कहेगा कि ऐ मेरे रब! मैं तेरी किस तरह इयादत करता, जबकि तू ...... सारे जहानों का रब है ।

अल्लाह तआला कहेगा कि क्या तुझे मालूम नहीं कि मेरा फ़लाँ बन्दा बीमार हुआ तो तूने उसकी इयादत न की । क्या तुझे मालूम नहीं कि अगर तू उसकी इयादत करता तो मुझे उसके पास पाता । ऐ आदम के बेटे! मैंने तुझसे खाना माँगा तो तूने मुझे खाना न दिया?

(इनसान) कहेगा कि ऐ मेरे रब! मैं तुझे कैसे खाना देता जबकि तू सारे जहानों का रब है । अल्लाह तआला कहेगा कि क्या तुझे मालूम नहीं कि मेरे फ़लाँ बन्दे ने तुझसे खाना माँगा तो तूने उसे खाना न दिया । क्या तुझे मालूम नहीं कि अगर तू उसे खाना देता तो उसे मेरे पास पाता — ऐ आदम के बेटे! मैंने तुझसे पानी माँगा तो तूने मुझे पानी न पिलाया?

(इनसान) कहेगा कि ऐ मेरे रब! मैं तुझे कैसे पानी पिलाता जबकि तू सारे जहानों का मालिक है — अल्लाह कहेगा कि मेरे फ़लाँ बन्दे ने तुझसे पानी माँगा, मगर तूने उसे पानी न पिलाया । क्या तुझे मालूम नहीं कि अगर तू उसे पानी पिलाता तो उसे मेरे पास पाता । (मुसलिम)

अल्लाह तआला ने इनसान को एक सामाजिक प्राणी बनाया है जिसे क़दम-क़दम पर हमजिंस (सजातीय) की मुहब्बत, हमदर्दी, मदद और ख़ैरख़ाही की ज़रूरत

होती है । इसलिए अल्लाह तआला ने इनसानों की इस आपसी महुब्बत, हमदर्दी, मदद और ख़ैरख़ाही को बहुत बड़ा सवाब बताया है और इनसान के इनसान का दुख-दर्द बाँटने और मुशकिलों में एक-दूसरे के काम आने को अपनी ख़ुशी को हासिल करने का ज़रिया बना दिया है । इनसानी ज़िन्दगी हज़ारों तरह के दुख-दर्द का शिकार रहती है, जिनमें एक बहुत बड़ा दुख मुफ़लिसी यानी ग़रीबी है । अल्लाह के नबी (सल्ल०) ने ग़रीब की मदद की फ़ज़ीलत बयान करने के अलावा खुद ग़रीबी की फ़ज़ीलत भी वाज़ेह (स्पष्ट) कर दी है । वे ग़रीब और महरूम लोग जो अपनी ग़रीबी और महरूमी को सब्र से सहते और नेकी पर क़ायम रहते हैं, अल्लाह के यहाँ बहुत बड़े सवाब के हक़दार होते हैं ।

हज़रत उसामा बिन ज़ैद (रज़ि०) बयान करते हैं कि रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया कि मैं जन्नत के दरवाज़े पर खड़ा हुआ तो देखा कि अन्दर आनेवाले ज़्यादातर ग़रीब लोग हैं ......। (मुसलिम)

सुनन अबी दाऊद में हज़रत अबू सईद ख़ुदरी (रज़ि०) से एक हदीस बयान हुई है कि एक दिन नबी (सल्ल०) ने ग़रीब मुहाजिरीन को मुख़ातिब करके कहा कि ऐ ग़रीब मुहजिरीन की जमाअत! खुश हो जाओ (उस) नूरे कामिल के सबब (जो तुम्हें) क़ियामत के दिन (मिलेगा), तुम दौलतमन्दों से आधा दिन पहले जन्नत में दाख़िल होगे और वह (आधा दिन भी) पाँच सौ साल का होगा ।

हज़रत मआज़ बिन जबल (रज़ि०) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल०) ने कहा कि क्या मैं तुम्हें यह न बताऊँ कि जन्नत के बादशाह कौन होंगे? मैंने अर्ज़ किया कि क्यों नहीं (ऐ अल्लाह के रसूल! ज़रूरत बताइए) । आपने फ़रमाया कि (जन्नत का बादशाह) वह आदमी (होगा) जो कमज़ोर है, लोग उसे कमज़ोर समझते हैं, वह दो पुराने कपड़े पहने हुए है, कोई उसकी परवाह नहीं करता (मगर अल्लाह की नज़र में उसका वह दरजा है कि) अगर वह अल्लाह के भरोसे पर क़सम खा ले तो अल्लाह उसे सच्चा कर देता है । (इब्न माजा)

हज़रत सहल (रज़ि०) बयान करते हैं कि एक आदमी नबी (सल्ल०) के पास से गुज़रा । आप (सल्ल०) ने (सहाबा रज़ि०) से मालूम किया कि तुम इस आदमी के बारे में क्या कहते हो (यानी तुम्हारा क्या ख़याल कि यह आदमी कैसा है)? सहाबा

(रज़ि०) ने अर्ज़ किया कि यह इस क़ाबिल है कि अगर निकाह का पैग़ाम दे तो इससे निकाह किया जाए और सिफ़ारिश करे तो सिफ़ारिश मान ली जाए और अगर बात करे तो उसकी बात को ध्यान से सुना जाए। हज़रत सहल (रज़ि०) कहते हैं कि फिर नबी (सल्ल०) ख़ामोश हो गए। फिर ग़रीब मुसलमानों में से कोई आदमी पास से गुज़रा तो नबी (सल्ल०) ने मालूम किया कि (अच्छा) इसके बारे में तुम क्या कहते हो? सहाबा (रज़ि०) ने जवाब दिया कि (यह तो मामूली आदमी है और) इस क़ाबिल है कि अगर निकाह का पैग़ाम दे तो निकाह न किया जाए, और सिफ़ारिश करे तो इसकी सिफ़ारिश को न माना जाए और अगर बात करे तो बात को ध्यान से न सुना जाए — इसपर नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि अगर दुनिया उस जैसे (अमीरों) से भरी हुई हो तो उन सबसे यह (ग़रीब) अच्छा है। (बुख़ारी)

ग़रीबी की फ़ज़ीलत में जो कुछ बयान हुआ है उसपर ध्यान दें तो पता चलता है कि जो लोग ग़रीब को ग़रीब समझते हुए उसे तुच्छ नज़र से देखते हैं वे सही मानो में कितनी कम नज़री का सुबूत देते हैं। हम देखते हैं कि इस ज़िन्दगी में अगर किसी आदमी के बारे में किसी तरह यह मालूम हो जाए कि अब यह बड़ा आदमी बननेवाला है तो लोग पहले ही उसकी ख़ुशामद शुरू कर देते हैं और उसकी नज़र में अच्छा बनने की कोशिश करते हैं, ताकि जब उसे बड़ाई मिले तो वह उन्हें फ़ायदा पहुँचाए। लेकिन यह अजीब बात है कि जिन नेक ग़रीबों को कल ख़ुदा के यहाँ बहुत बड़ा आदमी बन जाना है, उनकी नज़र में अच्छा बनने की कोई कोशिश नहीं करता, बल्कि उन्हें इस क़ाबिल ही नहीं समझता कि उनकी नज़र में अच्छा बनने के बारे में सोचा भी जाए। आपको क्या मालूम कि यह ग़रीब आदमी जो इस वक़्त मिन्नत-समाजत की तस्वीर नज़र आ रहा है, —"कमज़ोर है, लोग उसे कमज़ोर समझते हैं, वह दो पुराने कपड़े पहने हुए है और कोई उसकी परवाह नहीं करता," — कल अल्लाह तआला के यहाँ कितना बड़ा बादशाह होगा! उस वक़्त शायद आपके दिल में यह तमन्ना पैदा हो कि काश इस बादशाह से हमारा कोई ताल्लुक़ होता जो आज हमारे लिए इज़्ज़त की वजह बनता! तो फिर आप अभी से क्यों नहीं उसके साथ इज़्ज़त, मुहब्बत और हमदर्दी का ताल्लुक़ क़ायम कर लेते?

यही नहीं बल्कि एक सच्चाई और भी है जो कम-नज़रों को शायद कभी दिखाई न देती हो। मगर दूर तक नज़र रखनेवाले इससे अच्छी तरह वाक़िफ़ हैं और

वह यह है कि बड़े को छोटा और छोटे को बड़ा बनने में कुछ भी देर नहीं लगा करती। आपको क्या पता कि मुहताज, ग़रीब, मजबूर और परेशानहाल इनसान जो इस वक़्त आपकी मदद का ख़ाहिशमन्द है, जो इस वक़्त आपको इतना मामूली नज़र आ रहा है कि आपके ख़याल में वह इसी क़ाबिल है कि —

> "अगर निकाह का पैग़ाम दे तो उससे निकाह न किया जाए और अगर सिफ़ारिश करे तो उसकी सिफ़ारिश क़बूल न की जाए और अगर बात करे तो उसकी बात को ग़ौर से न सुना जाए"

— कल आख़िरत ही में नहीं बल्कि ख़ुद इस दुनियवी ज़िन्दगी में ही इतना बड़ा आदमी बन जाएगा कि आपको उसके ठाट-बाट और शान व शौकत के मुक़ाबिले में अपना आप घटिया नज़र आने लगे। दुनिया में आए दिन यह नज़ारे (दृश्य) देखने को मिलते हैं कि अल्लाह तआला ने किसी धूल-मिट्टी में रहनेवाले को धूल-मिट्टी से उठाकर तख़्त पर बिठा दिया और किसी तख़्त पर बैठे हुए को तख़्त से गिराकर मिट्टी में मिला दिया।

यानी जिस निगाह से भी देखा जाए अपने मुहताज़, ग़रीब, मजबूर और परेशानहाल भाइयों से इज़्ज़त और मुहब्बत का बरताव करना और उनकी मदद करके उनके दुखों को कम करने की कोशिश करना ख़ुद अपने साथ भलाई करना है। इसी लिए नबी (सल्ल॰) ने नेक काम की बहुत ताकीद की है और असरदार लफ़्ज़ों में इसकी बड़ाई बयान की है।

हज़रत अबू दरदा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि मैंने नबी (सल्ल॰) को कहते सुना कि मुझे अपने कमज़ोर और ग़रीब लोगों में तलाश करो, क्योंकि तुम्हारे कमज़ोर और ग़रीब लोगों ही की वजह से तुम्हें रोज़ी दी जाती है और (दुश्मनों के मुक़ाबले में) तुम्हारी मदद की जाती है। (तिरमिज़ी)

इस हदीस में बताया गया है कि कमज़ोर और ग़रीब लोगों की वजह से रोज़ी और इमदाद के दिए जाने से या तो यह मतलब है कि उनकी बरकत से ख़ुदा तुम्हें रोज़ी और इमदाद देता है या यह कि उनकी दुआ की वजह से तुम्हें रोज़ी और मदद मिलती है।

सहीह मुसलिम में हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि॰) से एक हदीस बयान हुई है जिसके शुरू के हिस्से में इसी बात को बताया गया है कि ज़रूरतमन्दों की मदद करना बहुत ज़्यादा फ़ज़ीलत की बात है।

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि जिस इनसान ने किसी मोमिन की दुनियावी तकलीफ़ों में से कोई तकलीफ़ दूर की तो अल्लाह तआला उससे क़ियामत की सख़्तियों में से कोई सख़्ती दूर करेगा। और जिसने किसी ग़रीब पर आसानी की, अल्लाह तआला उसपर दुनिया और आख़िरत में आसानी करेगा। और जिसने किसी मुसलमान की परदापोशी की, अल्लाह तआला दुनिया और आख़िरत में उसकी ऐबपोशी करेगा। और जब तक बन्दा अपने (इनसानी) भाई की मदद में लगा रहता है, अल्लाह तआला भी उसकी मदद करता रहता है ......।

(मुसलिम)

अबू उमामा बिन सहल बिन हनीफ़ से रिवायत है कि एक ग़रीब औरत बीमार हुई तो नबी (सल्ल॰) को उसकी बीमारी की ख़बर दी गई। अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) की आदत थी कि आप ग़रीबों की अयादत किया करते थे और उनका हाल पूछा करते थे। इसलिए आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि अगर इसकी मौत हो जाए तो मुझे ख़बर करना। (वह औरत मर गई) और उसका जनाज़ा रात को उठाया गया और लोगों ने इस बात को पसन्द न किया कि नबी (सल्ल॰) को (रात के वक़्त) जगाएँ (इसलिए उन्होंने नबी सल्ल॰ को ख़बर दिए बिना ही उसे दफ़न कर दिया)। जब सुबह हुई तो उसके बारे में नबी (सल्ल॰) को बताया गया तो आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि मैंने तुम्हें हुक्म नहीं दिया था कि इस (की मौत) के बारे में मुझे ख़बर करना। सहाबा (रज़ि॰) ने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल (सल्ल॰)! हमें यह बात पसन्द न आई कि रात के वक़्त आपको जगाएँ (इसलिए आपको ख़बर न दी)। फिर नबी (सल्ल॰) निकले और उसकी क़ब्र के पास लोगों की सफ़ बनाई और चार तकबीरें कहीं।

(नसई)

हज़रत अब्दुल्लाह बिन अबी औफ़ा बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) कसरत से ज़िक्रे इलाही किया करते थे और बेकार बातें न किया करते थे, और नमाज़ को लम्बा करते थे और ख़ुत्बा छोटा रखते थे और इस बात को बुरा नहीं जानते थे कि

वे किसी बेवा और ग़रीब के साथ चलें और उसका काम कर दें । (नसई)

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि (हज़रत अली रज़ि॰ के भाई) हज़रत जाफ़र बिन अबी तालिब (रज़ि॰) ग़रीबों से मुहब्बत रखते थे और उनके पास बैठते थे और उनसे बातें करते थे और ग़रीब उनसे बातें करते थे । (उनकी इस ख़ूबी की वजह से) नबी (सल्ल॰) ने उनकी कुन्यत (उपनाम) 'अबुल मसाकीन' रखी थी (यानी मिसकीनों का बाप) । (इब्न माजा)

हज़रत अबू ज़र (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि तुम्हारा अपने भाई के सामने मुसकराना तुम्हारे लिए सदक़ा (दान) है और तुम्हारा नेकी का हुक्म देना और बुराई से रोकना (भी) सदक़ा है और तुम्हारा किसी शख़्स को ऐसी सरज़मीन में रास्ता बताना जहाँ लोग रास्ता भूल जाते हों तुम्हारे लिए सदक़ा है और तुम्हारा किसी ऐसे आदमी की मदद करना जिसकी नज़र ख़राब हो (यानी अंधा हो या कमज़ोर नज़रवाला हो) तुम्हारे लिए सदक़ा है । और तुम्हारा रास्ते से पत्थर, काँटा और हड्डी (आदि) का हटा देना (ताकि लोगों को तकलीफ़ न हो) तुम्हारे लिए सदक़ा है, और तुम्हारा अपने डोल से अपने भाई के डोल में पानी डाल देना (भी) तुम्हारे लिए सदक़ा है । (तिरमिज़ी)

हज़रत अबू मूसा अशअरी (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि भूखे को खिलाओ और बीमार की बीमार-पुर्सी और देख-भाल करो और क़ैदी को रिहाई दिलाओ । (अबू दाऊद)

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने सहाबा किराम (रज़ि॰) से फ़रमाया कि आज तुममें से कौन रोज़ेदार है? हज़रत अबू बक्र (रज़ि॰) ने कहा कि मैं हूँ । नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि आज तुममें से कौन जनाज़े के साथ गया है? हज़रत अबू बक्र (रज़ि॰) ने कहा कि मैं (गया हूँ) । आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि आज तुममें से किसने ग़रीब को खाना खिलाया है? हज़रत अबू बक्र (रज़ि॰) ने कहा कि मैं (ने खिलाया है) । नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि आज तुममें से किसने किसी मरीज़ की इयादत की है? हज़रत अबू बक्र (रज़ि॰) ने कहा कि मैं (ने की है) । उसपर नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि जिस इनसान में ये सारी बातें इकट्ठा हो गईं, वह जन्नत (स्वर्ग) में जाएगा । (मुसलिम)

आरज (रह०) बयान करते हैं कि हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) फ़रमाते थे कि बुरा खाना है उस दावत का जिसमें अमीर बुलाए जाएँ और ग़रीबों को छोड़ दिया जाए......।

(मुसलिम)

कहने का मतलब यह है कि समाज के वे सारे लोग जो मायूसी, परेशानी और मुसीबतों के शिकार हों इस बात का हक़ रखते हैं कि जो लोग इन दुखों से बचे हुए हैं, वे अपनी उम्मीद की हद तक उनके दुख-दर्द और ज़रूरतों को दूर करने की कोशिश करते रहें। ऐसा करके वे महरूम और परेशानहाल लोगों की तो सिर्फ़ दुनियवी तकलीफ़ें ही दूर करेंगे, मगर अपने आपको, अल्लाह ने चाहा तो दुनिया और आख़िरत दोनों की तकलीफ़ों से बचा लेंगे।

हाकिम और जनता के आपसी हक़

हज़रत औफ़ बिन मालिक अशजई (रज़ि॰) बयान करते हैं कि मैंने नबी (सल्ल॰) को कहते सुना कि तुम्हारे सबसे अच्छे हाकिम वे हैं जिनसे तुम मुहब्बत रखते हो और वे तुमसे मुहब्बत रखते हैं, और तुम उनके लिए दुआ करते हो और वे तुम्हारे लिए दुआ करते हैं और तुम्हारे बुरे हाकिम वे हैं कि तुम उनसे नफ़रत करते हो और वे तुमसे नफ़रत करते हैं और तुम उनपर लानत भेजते हो और वे तुमपर लानत भेजते हैं ...... । (मुसलिम)

इस पाक हदीस में बड़ी अच्छी तरह से यह स्पष्ट कर दिया गया है कि एक अच्छे समाज में हाकिम और रिआया के आपसी ताल्लुक़ कैसे होने चाहिएँ । क़ुरआन मजीद, हदीसों और बुज़ुर्गों के अक़वाल (कथनों) में हमें एक इस्लामी राज्य के हाकिम और प्रजा के आपसी हुक़ूक़ और फ़र्ज़ों के बारे में जो कुछ मिलता है उसका निचोड़ यह है कि प्रजा का हक़ है कि —

1. उन्हें सही इस्लामी ज़िन्दगी गुज़ारने का मौक़ा दिया जाए,
2. उनपर ईमानदार, अल्लाह से डरनेवाले और लायक़ अफ़सर मुक़र्रर किए जाएँ,
3. उनकी जान, माल और इज़्ज़त की हिफ़ाज़त का पूरा-पूरा बन्दोबस्त हो,
4. उन्हें अद्ल व इनसाफ़ पहुँचाया जाए, और
5. उन्हें हुक्मरानों की बदचलनी और उनके ज़ुल्मों के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने और फ़रियाद करने का हक़ हासिल हो ।

दूसरी तरफ़ हाकिम को भी हक़ है कि अगर वह प्रजा के हक़ पूरे कर रहा है तो प्रजा भी उसके हक़ पूरे करे, जिनमें नुमायाँ हक़ ये हैं कि प्रजा —

1. तमाम जाइज़ कामों में हाकिम का साथ दे और उसकी फ़रमाँबरदारी से क़दम बाहर न निकाले, और
2. उसकी वफ़ादार और ख़ैरख़्वाह (शुभ-चिंतक) रहे ।

1. जनता के हक़

यह जो कहा जाता है कि जनता का हक़ है कि उन्हें सही इस्लामी ज़िन्दगी गुज़ारने का मौक़ा और हालात मुहैया कराए जाएँ, इसपर यह सवाल किया जा सकता है कि यह तो जनता की अपनी मरज़ी पर निर्भर है कि वे सही इस्लामी ज़िन्दगी गुज़ारें, हाकिम उन्हें इस्लामी ज़िन्दगी कैसे मुहैया कराए। मगर सच्चाई यह है कि किसी समाज में किसी ख़ास तरह के तौर-तरीक़े और रंग-ढंग के राइज हो जाने में समाज के शासकों का बहुत ज़्यादा हाथ होता है। अरबी की एक कहावत है कि "लोग अपने बादशाहों के तरीक़े पर चला करते हैं।" बनू उमैया के शासनकाल के बीच तीन ख़लीफ़ा एक के बाद दूसरे आए। तीनों के ख़ास-ख़ास रुजहान थे। इतिहासकार बताते हैं कि प्रजा का ज़ौक़ उनके साथ-साथ ही बदलता गया। सबसे पहले ख़लीफ़ा वलीद बिन अब्दुल मलिक गद्दी पर बैठा। उसे इमारतें बनाने का बहुत शौक़ था, इसलिए उसके ज़माने में जब कुछ आदमी कहीं इकट्ठा होते तो वे इमारतों ही की बातें करते, फिर सुलैमान बिन अब्दुल मलिक का ज़माना आया। उसे शादियाँ करने का बड़ा शौक़ था। उसके ज़माने में जब कुछ लोग एक जगह इकट्ठा होते तो निकाह, शादी और लौंडियों आदि ही की बातें करते। फिर बनी उमैया के सबसे ज़्यादा दीनदार और नेकोकार ख़लीफ़ा हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रह०) का ज़माना आया तो वही जनता जो पहले सिर्फ़ ईमारतों की तामीर और फिर निकाह और शादियों की बातें किया करती थी, ऐसी बदल गई कि जब कहीं कुछ आदमी इकट्ठा होते तो इबादत, ख़ुदा की राह में मेहनत-मशक़्क़त और क़ुरआन व हदीस ही की बातें करते।

हक़ीक़त यह है कि इस्लामी हुकूमत की सबसे पहली ज़िम्मेदारी दीन को लागू करना है। इस ज़िम्मेदारी को पूरा करने के लिए एक तरफ़ उसे इस्लामी इलाक़े में इस्लामी क़ानून लागू करने होंगे और दूसरी तरफ़ लोगों को इस क़ाबिल बनाने के लिए कि वे इन क़ानूनों को ख़ुशी से क़बूल कर सकें, ऐसे तरीक़े अपनाने होंगे जिनसे अवाम दीनी बातों और हुक्मों से परिचित हों और उनके दिलों में दीन की मुहब्बत जगह पकड़े। जिस तरह औलाद का यह हक़ है कि उनकी परवरिश करने के अलावा उन्हें अच्छी तरबियत भी दी जाए, उसी तरह इस्लामी हुकूमत की प्रजा का भी हक़ है कि उसकी हिफ़ाज़त और भौतिक ज़रूरतों का बन्दोबस्त करने के

अलावा उन्हें ऐसा माहौल भी मुहैया कराया जाए जिसमें इस्लामी हुक्म लागू हों, और उसके लिए ऐसे इदारे (संस्थाएँ) क़ायम किए जाएँ जो उसे दीनी तरबियत दें। अल्लाह तआला जिन लोगों को प्रजा पर बरतरी देकर हुकमरानी का रुतबा देता है, उनके कंधों पर यह भारी बोझ भी डालता है कि वे प्रजा के शुभ-चिंतक हों और उसे सही रास्ते पर चलाएँ। कुरआन में है —

"अल्लाह ज़रूर उन लोगों की मदद करेगा जो उसकी मदद करेंगे — अल्लाह बड़ा ताक़तवर और ज़बरदस्त है — ये वे लोग हैं जिन्हें अगर हम ज़मीन में इक़तिदार (सत्ता) दे दें तो वे नमाज़ क़ायम करेंगे, ज़कात देंगे, नेकी का हुक्म देंगे और बुराई से रोकेंगे, और सभी मामलों का फ़ैसला अल्लाह के हाथ में है।" (कुरआन, 22 :40-41)

इसी तरह प्रजा का यह भी हक़ है कि जो अफ़सर उनपर नियुक्त किए जाएँ वे अपनी ज़िम्मेदारियों को पूरा करने में ईमानदार हों और जो काम उनके हवाले किए जाएँ, उन कामों को करने की क़ाबिलियत रखते हों। हज़रत उमर (रज़ि०) के ज़माने की कामयाबी की वजहों में से एक वजह यह भी बताई जाती है कि उन्हें इनसानों की खूब पहचान थी और वे सल्तनत के विभिन्न कामों के लिए सही लोग चुना करते थे। अफ़सर लोग प्रजा की मुख़्तलिफ़ (विभिन्न) ज़रूरतों को पूरा करने का बन्दोबस्त करने ही के लिए तो मुक़र्रर (नियुक्त) किए जाते हैं। जब उन्हें नियुक्त करते हुए उनकी ईमानदारी और क़ाबिलियत को नहीं देखा जाता है तो वे अपनी ज़िम्मेदारियों को लापरवाई और बेढंगेपन से पूरा करते हैं जिससे प्रजा को परेशानी होती है। इस तरह हुक्मराँ ग़लत तरह के अफ़सर मुक़र्रर करके प्रजा के हक़ों को पामाल करता है। हज़रत उमर (रज़ि०) इस मामले में बहुत फ़िक्रमन्द रहा करते थे कि उनके अफ़सर प्रजा पर ज़ुल्म न करने पाएँ। अबू फ़्रास रावी (रह०) बयान करते हैं कि (एक दिन) हज़रत उमर बिन ख़त्ताब (रज़ि०) ने (लोगों के सामने) ख़ुत्बा (अभिभाषण) दिया और कहा कि मैंने अपने अफ़सरों को इसलिए नहीं भेजा कि वे तुम्हारे जिस्मों को मारें और न इसलिए (भेजा है) कि वे तुम्हारे माल ले लें। तो जिस (अफ़सर) ने भी ऐसा किया, उसका मुक़द्दमा मेरे पास लाना, मैं उससे बदला लूँगा।(अबू दाऊद)

हज़रत उमर (रज़ि०) ख़ुद प्रजा के साथ बड़ी मुहब्बत रखते थे। एक बार सूखे की वजह से लोग परेशानियों में घिर गए। एक आदमी ने आपको बताया कि मैंने

इतने दिनों से घी नहीं खाया। यह सुनकर हज़रत उमर (रज़ि॰) ने कहा कि अब मैं भी घी नहीं खाऊँगा जब तक कि लोगों की हालत पहले की-सी न हो जाए, यानी महँगाई ख़त्म न हो जाए। क़ुरआन में है —

> "(मुसलमानो!) अल्लाह तुम्हें हुक्म देता है कि अमानतें अमानतवालों के हवाले करो।" (क़ुरआन, 4:58)

> "बनी इसराईल की बुनियादी ग़लतियों में से एक यह थी कि उन्होंने अपने इनहितात (पतन) के ज़माने में अमानतें यानी ज़िम्मेदारी के पद और मज़हबी पेशवाई और क़ौमी सरदारी के मर्तबे ऐसे लोगों को देने शुरू कर दिए जो इसके लाइक़ नहीं थे। नीच, बदअख़लाक़, बेईमान और बुरे काम करनेवाले थे। नतीजा यह हुआ कि बुरे लोगों की रहनुमाई में सारी क़ौम ख़राब होती चली गई। यहाँ मुसलमानों को यह हिदायत की जा रही है कि तुम ऐसा न करना, बल्कि अमानतें उन लोगों के हवाले करना जो इसके लाइक़ (योग्य) हों यानी जिनमें अमानत का बोझ उठाने की सलाहियत हो।"
>
> (तफ़हीमुल क़ुरआन, जिल्द-2, पे॰ 362)

ऐसे ही प्रजा का यह हक़ है कि हाकिम ईमानदारी और भलाई के साथ उनकी ख़िदमत करे। अपने इख़तियार से काम लेकर उन्हें ज़ुल्म व सितम का निशाना न बनाए। उनकी जान, माल और इज़्ज़त की पूरी-पूरी हिफ़ाज़त करे, उनके साथ इनसाफ़ करे और उन्हें एक-दूसरे की ज़ुल्म व ज़्यादती से बचाए रखे।

(यज़ीद का गवर्नर) उबैदुल्लाह बिन ज़ियाद हज़रत मअक़िल बिन यसार मुज़नी (रज़ि॰) की सख़्त बीमारी की हालत में उनकी अयादत के लिए गया। हज़रत मअक़िल (रज़ि॰) ने उससे कहा कि मैं तुम्हें एक हदीस सुनाता हूँ जो मैंने नबी (सल्ल॰) से सुनी थी। अगर मैं यह जानता कि मैं (अभी) कुछ देर और ज़िन्दा रहूँगा तो तुझे (यह हदीस) न बताता। (सुनो कि) मैंने नबी (सल्ल॰) को कहते सुना कि जिस बन्दे को ख़ुदा ने किसी (प्रजा) का निगराँ बनाया हो और वह इस हालत में मरे कि अपनी प्रजा के साथ दग़ाबाज़ी कर रहा हो तो अल्लाह उसपर जन्नत हराम कर देगा। (मुसलिम)

इन्हीं उबैदुल्लाह बिन ज़ियाद के बारे में बताया जाता है कि नबी (सल्ल॰) के सहाबी आइज़ बिन अम्र (रज़ि॰) उनके पास गए और कहा कि ऐ बेटा! मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) को कहते सुना है कि सबसे बुरा चरवाहा वह है जो (जानवरों पर) ज़ुल्म करता है, इसलिए तू इस बात से बच कि उन (ज़ालिम) लोगों में से हो ।

(मुसलिम)

यहाँ चरवाहे का मतलब हुक्मराँ (हाकिम) है । हदीस का मतलब यह है कि प्रजा पर ज़ुल्म करनेवाला हाकिम सबसे बुरा हाकिम है ।

हज़रत आइशा (रज़ि॰) ने एक हदीस बयान की है, जिसमें वे बताती हैं कि उन्होंने नबी (सल्ल॰) को कहते सुना —

"ऐ अल्लाह! जो आदमी मेरी उम्मत के मामले में से किसी मामले का वली बनाया जाए और फिर वह उनपर सख़्ती करे तो तू भी उसपर सख़्ती कर और जो मेरी उम्मत के मामले में से किसी मामले का वली बनाया जाए और वह उनपर नरमी करे तो तू भी उसपर नरमी कर ।"

(मुसलिम)

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि इमाम (यानी हुक्मराँ) ढाल (की तरह) होता है जिसकी आड़ में लड़ा जाता है और जिसके ज़रिये (परेशानियों से) बचा जाता है, तो अगर वह ख़ुदा से डरते हुए हुक्म करे तो उसे उसका बदला मिलेगा और अगर वह उसके ख़िलाफ़ करे (यानी ख़ुदा से बेख़ौफ़ होकर हुक्म दे और बेइनसाफ़ी करे) तो उसपर मुसीबत होगी । (नसई)

इस्लाम में हुक्मरानों को प्रजा की तनक़ीद (आलोचना) से आज़ाद नहीं रखा गया है बल्कि अवाम (प्रजा) को यह हक़ दिया गया है कि अगर हुक्मराँ ग़लत रास्तों पर चलें तो वे उन्हें टोकें । इस मामले में भी हज़रत उमर (रज़ि॰) ने बहुत ही रौशन नमूने छोड़े हैं । एक बार किसी आदमी ने हज़रत उमर (रज़ि॰) को टोका । किसी दूसरे आदमी ने उस टोकनेवाले को टोका और कहा कि तुमने हद कर दी, अब बस करो । इसपर हज़रत उमर (रज़ि॰) ने कहा कि टोकने दो । अगर लोग हमें टोकेंगे नहीं तो उनका वुजूद बेकार है, और अगर हम उनकी सुनेंगे नहीं तो हम बेकार हैं ।

हजरत उमर (रज़ि॰) उन मिसाली हुक्मरानों में से थे जो अच्छी तरह जानते थे

कि हुक्मरानी (शासन) का मतलब सही मानों में प्रजा की सेवा होता है। एक दिन आप बैतुलमाल (राजकोष) के किसी ऊँट की सेवा कर रहे थे। किसी शख़्स ने कहा कि ऐ अमीरुल मोमिनीन! किसी गुलाम को हुक्म दिया होता तो वह यह काम कर देता। आपने कहा कि मुझसे बड़ा गुलाम और कौन है!

2. हुक्मराँ (शासक) के हक़

क़ुरआन और सुन्नत में जहाँ एक तरफ़ प्रजा के हक़ क़ायम किए गए हैं वहाँ दूसरी तरफ़ हुक्मराँ के हक़ भी साफ़ तौर पर बयान कर दिए गए हैं, क्योंकि जिस इनसान के कंधों पर प्रजा के हक़ अदा करने की भारी ज़िम्मेदारी डाली गई हो, वह अपने ओहदे (पद) से मुताल्लिक़ कामों को उस वक़्त तक ठीक-ठीक अंजाम नहीं दे सकता, जबतक कि प्रजा भी उसका भला न चाहे और उसके हुक्मों की पूरी-पूरी इताअत (आज्ञापालन) न करे।

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि॰) से रिवायत है कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि —

बेशक दीन ख़ैरख़ाही का नाम है,
बेशक दीन ख़ैरख़ाही का नाम है,
बेशक दीन ख़ैरख़ाही का नाम है।

सहाबा (रज़ि॰) ने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! किसकी (ख़ैरख़ाही)? नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि अल्लाह की और उसकी किताब की और उसके रसूल की, और मुसलमानों के हाकिमों की और मुसलमान प्रजा की। (नसई)

इसी तरह क़ुरआन और हदीस में इस बात की ताकीद की गई है कि सारे जाइज़ कामों में हुक्मरानों की फ़रमाँबरदारी की जाए। क़ुरआन में फ़रमाया गया है —

"फ़रमाँबरदारी करो अल्लाह की और फ़रमाँबरदारी करो रसूल की और उन लोगों की जो तुममें से साहिबे अम्र (अधिकारी लोग) हों।"

(क़ुरआन, 4:59)

तफ़हीमुल क़ुरआन, हिस्सा-1, पे॰-364 पर लफ़्ज़ "उलिल अम्र" की तशरीह (व्याख्या) करते हुए बयान किया गया है — "उलिल अम्र के मानी में वे सब लोग

आ जाते हैं जो मुसलमानों के इजतिमाई (सामूहिक) मामलों के सरबराहकार (प्रबंधक) हों चाहे वह ज़ेहनी और फ़िकरी रहनुमाई करनेवाले उलमा हों या सियासी (राजनैतिक) रहनुमाई करनेवाले लीडर या देश का इंतिज़ाम करनेवाले हाकिम या अदालती फ़ैसले करनेवाले जज या तहज़ीबी और सामाजिक कामों में क़बीलों, बसतियों और मुहल्लों की सरबराही करनेवाले शैख़ और सरदार — मतलब यह कि जो जिस हैसियत से भी मुसलमानों का ज़िम्मेदार है, वह फ़रमाँबरदारी का हक़दार है।''

हज़रत अबू उमामा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि मैंने हिज्जतुल विदाअ के मौक़े पर नबी (सल्ल॰) को ख़ुत्बा देते सुना। नबी (सल्ल॰) ने कहा कि अल्लाह से, जो तुम्हारा रब है, डरो और अपनी पाँच नमाज़ें पढ़ो और अपने महीने के रोज़े रखो और अपने मालों की ज़कात दो और जब (हाकिम) तुम्हें हुक्म दे तो इताअत करो, तो अपने रब की जन्नत में दाख़िल होगे। (तिरमिज़ी)

हज़रब अबू हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि जिसने मेरी इताअत की उसने ख़ुदा की इताअत की और जिसने मेरी नाफ़रमानी की उसने ख़ुदा की नाफ़रमानी की और जिसने हाकिम की इताअत की उसने मेरी इताअत की और जिसने हाकिम की नाफ़रमानी की उसने मेरी नाफ़रमानी की। (मुसलिम)

हज़रत अनस बिन मालिक (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि (हाकिम की बात) सुनो और उसकी इताअत करो चाहे तुमपर एक हबशी ग़ुलाम ही को हाकिम बना दिया जाए जिसका सिर ऐसा हो मानो मुनक़्क़ा है। (बुख़ारी)

हज़रत इब्न अब्बास बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि जिस शख़्स को अपने हाकिम की कोई बात नापसन्द हो तो उसे सब्र करना चाहिए क्योंकि जो हाकिम की इताअत से एक बालिश्त भी बाहर हुआ वह जाहिलियत की मौत मरा। (बुख़ारी)

हज़रत अबू ज़र (रज़ि॰) बयान करते हैं कि मेरे सच्चे दोस्त नबी (सल्ल॰) ने मुझे वसीयत की कि मैं (हाकिम की) बात सुनूँ और इताअत करूँ चाहे वह (हाकिम) एक हाथ-पाँव कटा ग़ुलाम ही क्यों न हो। (मुसलिम)

हज़रत उमर (रज़ि॰) के ज़माने में एक औरत जिसे कोढ़ की बीमारी थी, ख़ानेकाबा का तवाफ़ कर रही थी । हज़रत उमर (रज़ि॰) ने उससे कहा कि ऐ ख़ुदा की कनीज़! लोगों को तकलीफ़ न दे, काश तू अपने घर बैठती! वह औरत यह सुनकर अपने घर बैठ गई । फिर हज़रत उमर (रज़ि॰) की मौत हो गई तो एक आदमी उस औरत के पास से गुज़रा और कहा कि जिसने तुम्हें मना किया था वह इस दुनिया से चला गया है, अब तू घर से बाहर निकल आ । मगर वह फ़रमाँबरदार औरत बोली कि मैं ऐसी नहीं हूँ कि ज़िन्दगी में जिसकी फ़रमाँबरदारी करती रही, अब उसकी मौत के बाद उसकी नाफ़रमानी करने लगूँ ।

मतलब यह कि हाकिम की फ़रमाँबरदारी बेहद ज़रूरी है जबकि यह फ़रमाँबरदारी उसी शक्ल में होगी कि हाकिम किसी नाजाइज़ बात का हुक्म न दे । अगर कोई हाकिम ऐसा हुक्म दे जो अल्लाह के हुक्मों के ख़िलाफ़ हो तो उसमें उसकी इताअत नहीं की जाएगी ।

हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि मुसलमान आदमी पर लाज़िमी है कि (अमीर या अध्यक्ष की) इताअत करे, उस बात में भी जो पसन्द हो और उसमें भी जो पसन्द न हो, शर्त यह है कि उसे किसी गुनाह का हुक्म न दिया जाए । और अगर उसे (अमीर की तरफ़ से) किसी गुनाह का हुक्म दिया जाए तो फिर न उसकी बात सुननी है और न उसकी इताअत करनी है । (बुख़ारी)

सहीह बुख़ारी में नबी (सल्ल॰) के ज़माने का एक दिलचस्प वाक़िआ बयान हुआ है कि नबी (सल्ल॰) ने एक छोटा लश्कर किसी तरफ़ भेजा और एक अंसारी को उसका अमीर बनाया और लश्करवालों को हुक्म दिया कि अपने अमीर (अध्यक्ष) की इताअत करते रहें । एक दिन वह अमीर किसी बात पर नाराज़ हो गए और लोगों से कहने लगे कि क्या अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने तुम लोगों को हुक्म नहीं दिया था कि मेरी बात मानना । लोगों ने कहा कि क्यों नहीं, नबी (सल्ल॰) ने हमें हुक्म दिया था । अमीर कहने लगे कि फिर मैं तुम्हें हुक्म देता हूँ कि लकड़ियाँ इकट्ठी करो और आग जलाओ और फिर उसमें दाख़िल हो जाओ । लोगों ने लकड़ियाँ इकट्ठी कीं और आग जलादी फिर उसमें जाने का इरादा किया तो

एक-दूसरे को देखने लगे। उनमें से कुछ ने कहा कि आग ही से बचने के लिए हमने नबी (सल्ल॰) की पैरवी इख़्तियार की थी, तो क्या हम फिर आग में दाख़िल हो जाएँ! वे इसी सोच-विचार में थे कि आग बुझ गई और अमीर का गुस्सा भी ठंडा हो गया। जब ये लोग वापस आए तो नबी (सल्ल॰) से इस वाक़िआ का ज़िक्र किया गया। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि अगर ये लोग उस आग में दाख़िल हो जाते तो फिर कभी भी उससे न निकलते और आप (सल्ल॰) ने लोगों को समझाया कि अमीर की इताअत (पैरवी) सिर्फ़ नेकी के कामों में होती है, गुनाह के कामों में उसकी इताअत नहीं की जाती।

औरत के हक़

हज़रत उमर (रज़ि॰) बयान करते हैं कि "अल्लाह की क़सम! हम जाहिलियत के ज़माने में औरतों को किसी गिनती में न लाते थे (यानी कुछ न समझते थे), यहाँ तक कि अल्लाह ने उनके हक़ में नाज़िल किया जो कुछ कि नाज़िल किया और मुक़र्रर किया जो कुछ कि मुक़र्रर किया।" (बुख़ारी)

हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि॰) का यह बयान और इसके अलावा जाहिलियत के ज़माने में मिलनेवाले ऐतिहासिक सुबूत से यह बात साफ़ हो जाती है कि इस्लाम से पहले औरतों को गिरी हुई निगाह से देखा जाता था और बेटी की पैदाइश को शर्म और बेइज़्ज़ती की बात समझा जाता था। क़ुरआन में कहा गया है —

> "जब उनमें से किसी को बेटी पैदा होने की ख़ुशख़बरी दी जाती है तो उसके चेहरे पर कलौंस छा जाती है और वह बस ख़ून का घूँट पीकर रह जाता है, लोगों से छिपता फिरता है कि इस बुरी ख़बर के बाद क्या किसी को मुँह दिखाए। सोचता है कि ज़िल्लत के साथ बेटी को लिए रहे या उसे मिट्टी में दबा दे।" (क़ुरआन, 16:58-59)

जाहिलियत के दौर का इतिहास बताता है कि कुछ क़बीलों में संगदिली और बेरहमी इस हद तक पहुँची हुई थी कि बेटी पैदा होने पर उसे ज़िन्दा गाड़ दिया जाता था। सैयद अबुल आला मौदूदी (रह॰) जाहिलियत की इस शर्मनाक रस्म पर तबसिरा (टिप्पणी) करते हुए कहते हैं —

> "अरब में लड़कियों को ज़िन्दा गाड़ने का यह बेरहमीवाला तरीक़ा पुराने ज़माने में कई वजहों से राइज हो गया था। एक मआशी (आर्थिक) बदहाली, जिसकी वजह से लोग चाहते थे कि खानेवाले कम हों और औलाद को पालने-पोसने का बोझ उनपर न पड़े, बेटों को तो इस उम्मीद में पाल लिया जाता था कि बाद में वे रोज़गार में हाथ बटाएँगे, मगर

बेटियों को इसलिए मार डाला जाता था कि उन्हें जवान होने तक पालना पड़ेगा और फिर उन्हें ब्याह देना होगा। दूसरे आम बदअमनी (अशान्ति) और गड़बड़ी जिसकी वजह से बेटों को इस लिए पाला जाता था कि जिसके जितने ज़्यादा बेटे होंगे उसके उतने ही सहायक और मददगार होंगे, मगर बेटियों को इसलिए मार डाला जाता था कि क़बायली लड़ाइयों में उल्टी उनकी हिफ़ाज़त करनी पड़ती थी और बचाव और हिफ़ाज़त में वे किसी काम न आ सकती थीं। तीसरे आम बदअमनी की एक वजह यह भी थी कि दुश्मन क़बीले जब एक-दूसरे पर अचानक छापा मारते थे तो जो लड़कियाँ भी उनके हाथ आती थीं उन्हें ले जाकर वे या तो लौंडियाँ बनाकर रखते थे या कहीं बेच डालते थे। इन वजहों से अरब में यह तरीक़ा चल पड़ा था कि कभी तो बच्चे की पैदाइश के वक़्त ही औरत के आगे एक गढ्ढा खोदकर रखा जाता था, ताकि अगर लड़की पैदा हो तो उसी वक़्त उसे गढ़े में फेंककर ऊपर से मिट्टी डाल दी जाए और कभी अगर माँ उसपर राज़ी न होती या उसके ख़ानदानवाले उसमें रुकावट बनते तो बाप बेदिली से उसे कुछ मुद्दत तक पालता और फिर किसी वक़्त रेगिस्तान या वीराने में ले जाकर ज़िन्दा दफ़न कर देता। इस मामले में जो संगदिली और बेरहमी बरती जाती थी उसका क़िस्सा एक आदमी ने ख़ुद नबी (सल्ल॰) से एक बार बयान किया। 'दारमी' के पहले ही हिस्सा में यह हदीस लिखी है कि एक आदमी ने नबी (सल्ल॰) से अपने जाहिलियत के दौर का एक वाक़िआ इस तरह बयान किया — "मेरी एक बेटी थी जो मुझसे बहुत धुल-मिल गई थी, जब मैं उसे पुकारता तो दौड़ी-दौड़ी मेरे पास आती थी। एक दिन मैंने उसे बुलाया और अपने साथ लेकर चल पड़ा। रास्ते में एक कुआँ आया। मैंने उसका हाथ पकड़कर उसे कुएँ में धक्का दे दिया। आख़िरी आवाज़ जो उसकी मेरे कानों में आई, वह थी — "हाय अब्बा, हाय अब्बा।" यह सुनकर नबी (सल्ल॰) रो दिए और आपके आँसू बहने लगे। बैठे लोगों में से एक सहाबी ने कहा कि ऐ शख़्स! तूने हुज़ूर (सल्ल॰) को ग़मगीन कर दिया। नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि इसे मत रोको, जिस चीज़ का इसे सख़्त एहसास है उसके बारे में इसे सवाल

करने दो । फिर आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि अपना क़िस्सा बयान कर । उसने दोबारा उसे बयान किया और आप (सल्ल॰) सुनकर इस क़द्र रोए की आपकी दाढ़ी आँसुओं से तर हो गई ।''

(तफ़हीमुल कुरआन, जिल्द-6 पे॰-265)

यह हालत तो औरत की बेटी की हैसियत से थी, बीवी की हैसियत से भी वह तरह-तरह की ...... परेशानियों का शिकार थी । मर्दों का उनके साथ यह रवैया था कि निकाहों की गिनती पर कोई रोक न थी चाहे कोई मर्द सौ औरतों से शादी कर ले, न तलाक़ के मामले में कोई पाबन्दी थी चाहे शौहर बीवी को सौ बार तलाक़ दे और सौ बार अपना ले । इस्लाम में तलाक़ का तरीक़ा यह है कि शौहर बीवी को सिर्फ़ दो बार तलाक़ देकर अपना सकता है । जब वह तीसरी बार तलाक़ देगा तो फिर उसे अपनाने का हक़ बाक़ी नहीं रहेगा और वह औरत पूरे तौर पर उसके निकाह की क़ैद से आज़ाद हो जाएगी । जाहिलियत में चूँकि कोई ऐसी सीमा नहीं थी जहाँ जाकर रुजू करना या अपनाना हराम होता, इसलिए कुछ शौहर बीवियों को उम्र भर लटकाए रखते, बार-बार तलाक़ देते, बार-बार अपना लेते और इस तरह न तो उस औरत को ढंग से रखते और न उसे आज़ाद ही करते कि वह कहीं और निकाह कर ले । इस्लाम ने रुजू करने की एक हद (सीमा) तय कर के औरत को बहुत बड़े अज़ाब से छुटकारा दिया है ।

जाहिलियत के ज़माने में औरतों पर जो ज़ुल्म ढाए जाते थे, उनमें से एक यह भी था कि जब कोई आदमी मर जाता तो उसका बेटा बाप की जायदाद के अलावा, बेवा सौतेली माँ का भी मालिक बन बैठता था ।

औरतों के साथ यह मामला सिर्फ़ अरब ही में नहीं था बल्कि इतिहास से पता चलता है कि दूसरे इलाक़ों में भी औरतों की हालत बड़ी ख़राब थी । जैसे — हिन्दुस्तान में बुद्धमत और जैनमत के पैरौ (अनुयायी) औरत को अपनी रूहानी तरक़्क़ी के रास्ते में बहुत बड़ी रुकावट समझते थे और उससे अलग रहने और संन्यासी बनकर ज़िन्दगी गुज़ारने को रूहानी और अख़लाक़ी बुलन्दी का ज़रिया मानते थे । बुद्धमत और जैनमत के अलावा ख़ुद हिन्दुओं के यहाँ सती होने की ज़ालिमाना रस्म का रिवाज रहा जब किसी मर्द की बीवी मर जाती तो उसे पूरा हक़ हासिल

होता कि दूसरी शादी कर ले लेकिन जब किसी औरत का शौहर मर जाता तो बीवी को मैयत के साथ ही चिता में लिटाकर ज़िन्दा जला दिया जाता । जब मुसलमान हिन्दुस्तान में आए तो यह ज़ालिमाना रस्म यहाँ मौजूद थी । इतिहास में एक मशहूर वाक़िआ बयान हुआ है कि किसी हिन्दू रानी ने सती होने से बचने के लिए मुग़ल बादशाह हुमायूँ से मदद माँगी थी और वह उसकी मदद को पहुँचा था ।

कई बार हिन्दू औरत शौहर के मरने पर अपनी ख़ुशी से सती हो जाती थी । इसकी वजह यह थी कि एक औरत की हैसियत के बारे में जो ग़लत सोच उसके दिमाग़ में डाल दी गई थी, उनकी बिना पर वह दिल से यही समझती थी कि पति के बिना उसकी ज़िन्दगी बेकार है और दूसरी वजह यह भी थी कि हिन्दू समाज में विधवा औरत की वह दुरदशा होती थी कि इस तरह उम्र भर जलते रहने से वह यह ज़्यादा अच्छा समझती थी कि एक ही बार जलकर अपनी तकलीफ़ें ख़त्म कर ले । शौहर के बाद अगर वह ज़िन्दा रह भी जाती तो उसे बड़ी भयानक ज़िन्दगी गुज़ारनी पड़ती थी । ज़िन्दा होते हुए भी वह सारी खुशियों से महरूम (वंचित) रहती थी । उसे सजने-सँवरने या अच्छा खाने या अच्छा पहनने का कोई हक़ हासिल न होता था । उसके वुजूद को नहूसत (मनहूसपन) की निशानी समझा जाता था और ख़ुशी के मौक़े पर उसकी परछाईं पड़ जाना भी बहुत बुरा समझा जाता था ।

यही हाल बहुत-से दूसरे इलाक़ों का था । ईसाई पादरी 'औरत' और 'गुनाह' को एक ही चीज़ समझते थे । यहूदियों का यह तरीक़ा था कि कुछ ख़ास हालतों में औरतों को घरों ही से निकाल दिया करते थे और ईरान में मुज़दक ने औरत को 'मुश्तरक मिलकियत' (साझा सम्पत्ति) क़रार दे रखा था । कुछ मुद्दत पहले तक कई ऐसे इलाक़ों में भी, जो अपने आपको बहुत मुहज़्ज़ब (सभ्य) कहते हैं, औरतों को विरासत का हक़ हासिल नहीं था और वह अपनी ज़ाती जायदाद को भी अपनी मरज़ी से इस्तेमाल नहीं कर सकती थी ।

औरत इस मज़लूमी की हालत में थी जब अल्लाह के नबी मुहम्मद (सल्ल॰) अल्लाह का आख़री पैग़ाम लेकर दुनिया में आए और आप (सल्ल॰) ने दूसरे मज़लूमों की तरह इस मज़लूम तबक़े की भी फ़रियाद सुनी और उसे ख़ास हक़ दिए और ख़ास फ़र्ज़ उसके ज़िम्मे लगाकर उसे समाज में एक इज़्ज़तदार और ज़िम्मेदार

रुतबा दिया।

यह मालूम करने के लिए कि किसी निज़ामे ज़िन्दगी (जीवन-व्यवस्था) ने औरतों को कितने हक़ दिए हैं नीचे लिखे मसलों पर ग़ौर करना ज़रूरी होता है —

1. उस निज़ामे ज़िन्दगी (जीवन-व्यवस्था) में औरत का मक़ाम माँ, बेटी, बीवी, बहन और औरत की हैसियत से क्या है?
2. उस निज़ामे ज़िन्दगी ने माली एतिबार से औरत को मज़बूत किया है या कमज़ोर रखा है?
3. उस समाज में औरत को अपना जीवन साथी चुनने का कहाँ तक इख़्तियार हासिल है?
4. अगर वह जीवन साथी ज़ालिम हो तो उससे छुटकारा पाने का कोई रास्ता है या नहीं?
5. वह निज़ामे ज़िन्दगी आम ज़िन्दगी में औरत के साथ किस क़िस्म का सुलूक करने का हुक्म देता है ?
6. उस निज़ामे ज़िन्दगी में औरत को घर से बाहर निकलने और भलाई की मजलिसों और क़ौमी ज़िन्दगी के दूसरे ज़रूरी मामलों में हिस्सा लेने का हक़ कहाँ तक हासिल है?

जहाँ तक पहले चार सवालों का ताल्लुक़ है, पिछले पन्नों में यह बताया जा चुका है कि इस्लाम ने औरत को माँ, बहन, बीवी, बेटी, ख़ाला वग़ैरा की हैसियत से क्या मक़ाम दिया है और किस तरह उसे माँ-बाप, शौहर और बेटे की मीरास का वारिस ठहराकर और उसे महर और दूसरे ज़रूरी ख़र्चों का हक़दार बनाकर उसकी माली हालत को मज़बूत किया है। वह अपनी ज़ाती मिलकियत में बिना किसी शर्त के ख़र्च करने का हक़ रखती है और कोई आदमी भी उसकी इजाज़त और रज़ामन्दी के बिना उसके माल में से कुछ लेने का हक़दार नहीं। इसी तरह 'बीवी के हक़' में यह भी बताया जा चुका है कि अगर कोई औरत शौहर के हाथों परेशान हो और शौहर उसे तलाक़ देने पर भी राज़ी न हो तो वह खुलअ के ज़रिये उससे छुटकारा

पा सकती है । ऐसे ही 'बीवी के हक़' में वह हदीस भी बयान की जा चुकी है जिसमें नबी (सल्ल॰) ने हिदायत की है कि कुँवारी लड़की की शादी न की जाए जब तक कि उसकी इजाज़त न ले ली जाए । और बेवा का निकाह न किया जाए जब तक उसका हुक्म न ले लिया जाए । अब यहाँ कुरआन और हदीस की रौशनी में इस बात की कुछ और वज़ाहत की जा रही है कि ईस्लाम ने किस तरह औरत को समाज में इज़्ज़त का मक़ाम दिया है ।

हज़रत अनस बिन मालिक (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के नबी (सल्ल॰) सफ़र में थे और आपके साथ आपका एक हबशी गुलाम था, जिसे 'अंजशह' कहा जाता था । वह 'हुदी' पढ़ता था (जिससे ऊँट तेज़ चलने लगते)। इसपर आप (सल्ल॰) ने उससे कहा कि तेरी ख़राबी हो, ऐ अंजशह! इन शीशों को आहिस्ता ले चल । (बुख़ारी)

हुदी वह गीत होता है जो सारबान (ऊँट चलानेवाले) गाते हैं तो ऊँट तेज़ चलने लगते हैं और शीशों से वे मुराद औरतें थीं जो ऊँटों पर सवार थीं । आप (सल्ल॰) ने अंजशह को ताकीद की कि ऊँटों को तेज़ न चलाओ ताकि औरतों को तकलीफ़ न हो!

ध्यान रहे कि इस्लाम में औरत को अपने आमाल (कर्मो) की ख़ुद ज़िम्मेदार क़रार दिया गया है और उसे मर्द का ज़मीमा (दुमछल्ला) नहीं बनाया गया है । हज़रत नूह और हज़रत लूत (अलै॰) की बीवियाँ ख़ुदा की नाफ़रमान औरतें थीं; इसलिए नबियों की बीवियाँ होने के बावजूद उन्हें अज़ाब का हक़दार ठहराया गया और आसिया ख़ातून नेक औरत थीं; इसलिए फ़िरऔन जैसे बाग़ी और सरकश इनसान की बीवी होने के बाद भी उन्हें इज़्ज़त और बड़ाई का मक़ाम दिया गया ।

हदीसों से यह बात भी वाज़ेह हो जाती है कि औरत को किसी को पनाह देने का हक़ हासिल है और उसे घर से निकलने, मसजिद की जमाअत में शामिल होने, भलाई की मजलिसों में शरीक होने और जिहाद में हिस्सा लेने की भी इजाज़त है और वह इस बात की हक़दार है कि उसे इल्म के ज़ेवर से सजाया जाए ।

1. पनाह देना

हज़रत अली (रज़ि०) की बहन हज़रत उम्मे हानी बिन्त अबी तालिब कहती हैं कि मैं फ़तह मक्का के साल नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुई और आप (सल्ल०) को गुस्ल करते पाया; इस तरह कि आपकी बेटी हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) आपके सामने परदा किए हुए थीं। मैंने नबी (सल्ल०) को सलाम किया तो आपने पूछा कि कौन है? मैंने कहा कि मैं हूँ उम्मे हानी बिन्त अबी तालिब! तो आपने फ़रमाया — खुश आमदीद उम्मे हानी! — फिर जब आप (सल्ल०) नहा चुके तो आपने खड़े होकर आठ रकअत नमाज़ पढ़ी, इस तरह कि एक ही कपड़ा लपेटे हुए थे। फिर जब आप (सल्ल०) नमाज़ पढ़ चुके तो मैंने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! मैंने इब्न हुबैरा नामी फ़लाँ शख़्स को पनाह दी, मगर मेरा माँ जाया (भाई) कहता है कि मैं उसे क़त्ल कर दूँगा। इसपर नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि ऐ उम्मे हानी! जिसको तूने पनाह दी उसको हमने पनाह दी ......। (बुख़ारी)

2. बाहर निकलना

हज़रत आइशा (रज़ि०) बयान करती हैं कि (उम्मुल मोमिनीन) हज़रत सौदा बिन्त ज़मआ (रज़ि०) रात के वक़्त (किसी काम के लिए) बाहर निकलीं तो हज़रत उमर (रज़ि०) ने उन्हें देखकर पहचान लिया और कहा कि खुदा की क़सम! सौदा आप हमसे छुप नहीं सकतीं (यानी हमें पता चल गया कि आप बाहर निकली हैं)। हज़रत सौदा (रज़ि०) लौटकर नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में आईं और आपसे इस बात का ज़िक्र किया। उस वक़्त नबी (सल्ल०) मेरे हुजरे में शाम का खाना खा रहे थे। (इस हालत में) आपपर वह्य नाज़िल होनी शुरू हो गई और जब आपके ऊपर से वह्य की कैफ़ियत दूर हुई तो आप फ़रमा रहे थे कि (ऐ औरतों!) तुम्हें अपने ज़रूरी कामों के लिए बाहर निकलने की इजाज़त दे दी गई है। (बुख़ारी)

3. मसजिद में जाना

हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि०) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि जब तुममें से किसी की औरत उससे (मसजिद जाने की) इजाज़त माँगे तो वह उसे न रोके। (बुख़ारी)

हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि०) ही की एक रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने कहा कि अपनी औरतों को रात के वक़्त मसजिद जाने की इजाज़त दे दिया करो। (बुख़ारी)

हज़रत उमर (रज़ि०) की बीवी फ़ज्र और इशा की नमाज़ों के लिए मसजिद जाया करती थीं और हज़रत उमर (रज़ि०) चाहते थे कि वह न जाएँ, मगर साफ़ लफ़्ज़ों में मना नहीं करते थे। लोगों ने उनसे कहा कि आप क्यों मसजिद जाती हैं जबकि आपको मालूम है कि हज़रत उमर इसे पसन्द नहीं करते। इसपर उन्होंने कहा कि फिर वे मुझे रोकते क्यों नहीं। लोगों ने जवाब दिया कि वे इसलिए नहीं रोकते कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमा दिया है कि खुदा की कनीज़ों (यानी औरतों) को खुदा की मसजिदों में जाने से मत रोको।

4. नेकी और भलाई की मजलिसों में शरीक होना

हफ़सा बिन्त सीरीन (रज़ि०) बयान करती हैं कि हम अपनी लड़कियों को ईद के दिन बाहर निकलने से मना किया करते थे। एक औरत आई जो बनी ख़ल्फ़ की हवेली में उतरी। मैं उसके पास गई तो उसने मुझे बताया कि मेरी बहन का शौहर नबी (सल्ल०) के साथ बारह लड़ाइयों में शामिल हुआ था और मेरी बहन छः लड़ाइयों में उसके साथ थी। उसने बताया कि हम लोग मरीज़ों की देख-भाल करते थे और ज़ख़्मियों का इलाज करते थे। उसने (नबी सल्ल०से) कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! अगर हममें से किसी के पास चादर न हो और इसलिए वह (ईद के दिन) बाहर न निकले तो क्या इसमें उसके लिए कोई हरज है। तो नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि उसकी हमजोली उसे अपनी चादर का एक हिस्सा उढ़ा ले, और औरतों को चाहिए कि वे नेक काम में शरीक हों और मोमिनों की दुआ में हाज़िर हों ......। (बुख़ारी)

हज़रत उम्मे अतिया (रज़ि०) कहती हैं कि हमें हुक्म दिया जाता था कि हम ईद के दिन घर से बाहर निकलें (और ईद की नमाज़ में शरीक हों)। एक और हदीस में आप (रज़ि०) कहती हैं कि हमें हुक्म दिया जाता था कि हम जवान परदेवाली औरतों को (ईद के दिन) घर से बाहर निकालें (ताकि वे नमाज़ में शामिल हों)। (बुख़ारी)

5. जिहाद में शामिल होना

क़ौमी कामों में सबसे बड़ा काम अल्लाह का कलिमा बुलन्द करने के लिए जिहाद करना और इसलामी राज्य की हिफ़ाज़त करना है। सहाबियात (रज़ि॰) की ज़िन्दगियों के हालात से मालूम होता है कि वे मर्दों के साथ जिहाद में भी हिस्सा लेती रही हैं। सहीह बुख़ारी में कई ऐसी हदीसें बयान हुई हैं जिनसे सहाबियात के जिहाद में शामिल होने का पता चलता है।

हज़रत आइशा (रज़ि॰) बयान करती हैं कि जब नबी (सल्ल॰) सफ़र पर जाते तो उम्मेहातुल मोमिनीन के बीच परचियाँ डालते और जिसके नाम की परची निकलती उसे साथ ले जाते। एक बार जब आप (सल्ल॰) जिहाद पर जा रहे थे तो आपने परची डाली तो परची मेरे नाम निकली। इसपर मैं आप (सल्ल॰) के साथ गई।

हज़रत अनस (रज़ि॰) बयान करते हैं कि जंगे उहुद में मैंने हज़रत आइशा (रज़ि॰) और हज़रत उम्मे सुलैम (रज़ि॰) को देखा कि दोनों अपने दामन उठाए हुए थीं। पानी की मशकें अपनी पीठ पर लादे हुए लाती थीं और प्यासे लोगों के मुँह में डाल देती थीं। फिर लौट जाती थीं और उन्हें भरती थीं और फिर लाकर प्यासे लोगों के मुँह में डालती थीं।

हज़रत उमर (रज़ि॰) ने मदीना मुनव्वरा की औरतों को कुछ चादरें बाँटीं तो एक बहुत अच्छी चादर बच गई। पास बैठनेवालों में से किसी ने मशविरा दिया कि यह चादर आप अपनी बीवी को दे दें। हज़रत उमर (रज़ि॰) की बीवी हज़रत अली (रज़ि॰) की बेटी और नबी (सल्ल॰) की नवासी थीं, मगर उमर (रज़ि॰) ने कहा कि हज़रत उम्मे सुलैत (रज़ि॰), एक सहाबिया, इसकी ज़्यादा हक़दार हैं। वे उहुद के दिन हमारे लिए मशकें भर-भरकर लाती थीं।

हज़रत रुबैअ बिन्त मुअव्विज़ (रज़ि॰) फ़रमाती हैं कि हम जिहाद में नबी (सल्ल॰) के साथ जाते थे और पानी पिलाते थे और ज़ख़्मियों का इलाज करते थे और शहीदों को उठाकर मदीना लाते थे।

हज़रत उम्मे हराम (रज़ि॰) बयान करती हैं कि एक दिन नबी (सल्ल॰) उनके घर में दोपहर में सो रहे थे। फिर आप (सल्ल॰) हँसते हुए उठे। हज़रत उम्मे हराम

(रज़ि॰) ने पूछा कि ऐ अल्लाह के रसूल! आप किस बात पर हँसे। आपने कहा कि मैं (ख़ाब में) अपनी उम्मत के एक गिरोह को देखकर खुश हुआ जो समुद्र पर इस तरह सवार होंगे जैसे बादशाह तख़्त पर बैठे होते हैं। (हज़रत उम्मे हराम रज़ि॰ कहती हैं कि) मैंने अर्ज़ किया कि ऐ अल्लाह के रसूल ! दुआ कीजिए कि अल्लाह मुझे उनमें से करे। इसपर नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि तुम उन्हीं में से हो। आप (सल्ल॰) फिर सो गए और फिर हँसते हुए उठे और उसी तरह दो बार या तीन बार कहा। मैंने (फिर) अर्ज़ किया कि ऐ अल्लाह के रसूल! दुआ कीजिए कि अल्लाह मुझे उनमें से करे। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि तुम पहले लोगों में से हो। फिर हज़रत उबादा बिन सामित (रज़ि॰) ने उम्मे हराम (रज़ि॰) से शादी कर ली और उन्हें साथ ले कर जिहाद में गए। फिर जब उम्मे हराम (रज़ि॰) वापस लौटीं तो सवारी को उनके पास लाया गया ताकि वे उसपर सवार हों तो वे गिर पड़ीं और उनकी गर्दन कुचली गई। (बुख़ारी)

6. औरतों को तालीम देना

हज़रत अबू सईद (रज़ि॰) बयान करते हैं कि एक औरत नबी (सल्ल॰) की ख़िदमत में हाज़िर हुई और कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! मर्द तो आपकी बातें सुनकर चले जाते हैं, आप अपनी तरफ़ से हमारे लिए कोई दिन तय कर दीजिए जिसमें हम आपकी ख़िदमत में हाज़िर हों ताकि आप हमें वह इल्म सिखाएँ जो अल्लाह ने आपको सिखाया है। इसपर नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि (अच्छा) तुम फ़लाँ-फ़लाँ दिन, फ़लाँ-फ़लाँ जगह पर इकट्ठी हो जाना, इस तरह वे औरतें इकट्ठी हो गईं और नबी (सल्ल॰) उनके पास आए और जो इल्म (ज्ञान) आपको अल्लाह ने सिखाया था, उसमें से उन्हें तालीम दी ......। (बुख़ारी)

हज़रत जाबिर बिन अब्दुल्लाह (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) खड़े हुए। पहले नमाज़ पढ़ी, फिर लोगों को खुत्बा दिया। फिर जब यह काम पूरा कर लिया तो उतरे और औरतों के पास आए और उन्हें नसीहत की इस हाल में कि आप (सल्ल॰) हज़रत बिलाल (रज़ि॰) के हाथ पर तकिया किए हुए थे और हज़रत बिलाल (रज़ि॰) ने अपना कपड़ा फैला रखा था और औरतें उनमें सदक़े (दान) डाल रही थीं। (रिवायत करनेवाले कहते हैं कि) मैंने अता से पूछा कि क्या अब आप

इमाम पर यह बात वाजिब समझते हैं कि वह नमाज़ पूरी करके औरतों के पास आए और उन्हें नसीहत करे। उन्होंने कहा कि बेशक यह इमामों पर वाजिब है, और उन्हें क्या हो गया है कि वे ऐसा नहीं करते! (बुख़ारी)

हज़रत उम्मे सलमा (रज़ि॰) बयान करती हैं कि एक रात नबी (सल्ल॰) घबराए हुए उठे और आप फ़रमा रहे थे — "सुब्हानल्लाह ! अल्लाह ने कैसे-कैसे ख़ज़ाने उतारे हैं और कैसे-कैसे फ़ितने पैदा किए हैं! कौन है जो उन हुजरेवालियों को जगा दे ताकि नमाज़ पढ़ें। बहुत-सी औरतें ऐसी हैं जो दुनिया में लिबास पहनती हैं मगर आख़िरत में बेलिबास होंगी। (उम्मे सलमा का कहना है कि) हुजरेवालियों से आप (सल्ल॰) की मुराद अपनी अज़वाज-मुतह्हरात (बीवियाँ) थीं। (बुख़ारी)

7. औरत का कमाना

आज के दौर में औरत के हक़ों में से एक बहुत बड़ा हक़ यह समझा जाता है कि उसे कमाने की आज़ादी हासिल हो। हमें कुरआन और हदीस में कोई ऐसी पुख़्ता दलील नहीं मिलती जिससे पता चले कि अगर कोई औरत शौहर की इजाज़त से कमाए तो यह कोई नापसन्दीदा बात है। उम्मुल मोमिनीन हज़रत ख़दीजा (रज़ि॰) ताजिर थीं और हज़रत ज़ैनब (रज़ि॰) के हालात में मिलता है कि आप (रज़ि॰) चमड़ा रंगने का काम करती थीं और उससे जो आमदनी होती थी उसे अल्लाह की राह में ख़र्च करती थीं। इसलिए अगर सरपरस्त की इजाज़त से औरत कमाए तो उसे नाजाइज़ नहीं कहा जा सकता। यह अलग बात है कि इस चीज़ को अगर वबा (महामारी) की शक्ल में फैला दिया जाए तो आख़िरकार औरत को ही नुक़सान पहुँचेगा। अल्लाह ने उसकी गुज़र-बसर की ज़िम्मेदारी दूसरों के कंधों पर डाली है और उसे हक़ दिया है कि वह उनसे अपने जाइज़ ख़र्चे पूरे करवाए। अब अपनी ज़िम्मेदारी को अपने ही कंधों पर लादने पर बेजा ज़िद करना हक़ माँगना नहीं है; बल्कि ज़िम्मेदारियाँ माँगना है।

इस्लाम ने औरत को जो हक़ दिए हैं उनपर ग़ौर करने के बाद ताज्जुब होता है कि मुसलमान औरतों की मज़लूमी की दास्तान किस बुनियाद पर क़ायम की गई है। लेकिन जब आज के मुस्लिम समाज पर नज़र डाली जाए तो यही महसूस होता है कि ये दास्तानें भी बेबुनियाद नहीं। क्योंकि इस्लाम ने तो औरतों को हक़ दिए थे,

मगर मुसलमान कहलानेवाले मर्दों ने उन्हें हड़प लिया। चूँकि लोग दूसरे धर्मों की पाक किताबों को खोल-खोलकर नहीं पढ़ते, बल्कि उन धर्मों को, सुननेवालों के तौर तरीक़े को देखकर अन्दाज़ा लगाते हैं। इसलिए उन्होंने सही तौर पर यही समझा कि मुसलमान औरत मज़लूम है। अब हमारे लिए करने का काम यही है कि ऐसा इस्लामी समाज बनाने की कोशिश करें जिससे दूसरी भलाइयों के साथ-साथ मुसलमान औरत को उसका ठीक और सही मक़ाम और इज़्ज़त हासिल हो।

इस्लामी बिरादरी के हक़

हज़रत अनस (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि तुममें से क़ोई उस वक़्त तक मोमिन नहीं बन सकता जब तक कि अपने भाई के लिए वही कुछ पसन्द न करे जो अपने लिए करता है। (बुख़ारी)

इस छोटे से फ़रमान में नबी (सल्ल॰) ने इस्लामी भाईचारे का निचोड़ बयान कर दिया है। वह कौन-सा इनसान है जो अपने लिए हर तरह की ख़ैर व बरकत चाहनेवाला न हो, जिसे इस बात की ख़ाहिश न हो कि उसे अमन, आफ़ियत, ख़ुशहाली, नेकनामी, जिस्म का आराम और दिल का सुकून हासिल रहे, जो इस बात का ख़ाहिशमन्द न हो कि हर क़िस्म की दुनियवी और उख़रवी तकलीफ़ों से बचा रहे और मौत से पहले और मौत के बाद हर-हर मरहले में उसे कामयाबी और भलाई नसीब हो — बस जो इनसान अपने मुसलमान बहन-भाइयों के लिए यही तमन्नाएँ रखता हो जो वह अपने लिए रखता है, वही ईमानवाला है! — किसी इनसान का सिर्फ़ मुसलमान होना इस बात के लिए काफ़ी है कि आपको उससे दिली मुहब्बत हो, आप दिल से उसकी इज़्ज़त करें, हमेशा उसकी ख़ैरख़ाही का दम भरें, आपकी ज़बान और हाथ से कभी उसे कोई तकलीफ़ न पहुँचे, वह हर दुख और मुसीबत के वक़्त आपकी मदद पर भरोसा कर सके, अगर उसके और किसी दूसरे मुसलमान के बीच कोई रंजिश या दुश्मनी पैदा हो जाए तो आप मुमकिन हद तक कोशिश करें कि उनके आपसी ताल्लुक़ात ठीक हो जाएँ और अगर वह किसी गुनाह के रास्ते पर चल पड़े तो आप उसे सही रास्ते पर लाने की हर मुमकिन कोशिश करें।

1. मुहब्बत, ख़ैरख़ाही और एहतिराम

हज़रत मआज़ बिन जबल (रज़ि॰) बयान करते हैं कि मैंने नबी (सल्ल॰) को कहते सुना कि अल्लाह तआला फ़रमाता है कि जो लोग मेरी बुज़ुर्गी और बड़ाई के

ख़याल से (यानी मेरी ख़ुशी हासिल करने के लिए) आपस में मुहब्बत करते हैं, उनके लिए नूर के मिम्बर (तख़्त) होंगे (और) उनपर नबी और शहीद (भी) रश्क करेंगे। (तिरमिज़ी)

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि॰) नबी (सल्ल॰) से नक़ल करते हैं कि एक आदमी किसी दूसरी बस्ती में अपने किसी भाई से मिलने गया । अल्लाह तआला ने उसके रास्ते में एक फ़रिश्ते को उसके इन्तिज़ार के लिए भेज दिया । जब वह उसके पास आया तो उसने पूछा कि तुम कहाँ का इरादा रखते हो । उसने जवाब दिया कि मैं इस बस्ती में अपने एक भाई से मिलने के इरादे से आया हूँ । फ़रिश्ते ने पूछा कि क्या तेरा उसपर कोई एहसान है जिसको पूरा करना मक़सद है । उसने जवाब दिया कि इसके सिवा कुछ नहीं कि मैं उसे अल्लाह की ख़ातिर चाहता हूँ । फ़रिश्ते ने कहा कि मुझे तेरी तरफ़ ख़ुदा ने भेजा है (और तुझे यह बताने आया हूँ) कि जिस तरह तू उससे ख़ुदा की ख़ातिर मुहब्बत रखता है, उसी तरह ख़ुदा भी तुझसे मुहब्बत रखता है । (मुसलिम)

एक दिन हज़रत जरीर बिन अब्दुल्लाह (रज़ि॰) ने मिम्बर पर खड़े होकर लोगों को मुख़ातब किया और कुछ नसीहतें कीं । आख़िर में आपने फ़रमाया –

"मैं अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) की ख़िदमत में हाज़िर हुआ और अर्ज़ किया कि मैं इस्लाम पर आपसे बैअ़त करता हूँ । आप (सल्ल॰) ने मुझसे मुसलमान रहने और हर मुसलमान की भलाई करने का वादा कराया । फिर मैंने इसपर आप (सल्ल॰) से बैअ़त की, और इस मसजिद के रब की क़सम! मैं तुम्हारा ख़ैरख़्वाह हूँ ।" फिर उन्होंने अल्लाह से मग़फ़िरत की दुआ की और नीचे उतर आए । (बुख़ारी)

हज़रत सफ़वान (रज़ि॰) बयान करते हैं कि मैं शाम (Syria) गया तो हज़रत अबू दरदा (रज़ि॰) के पास उनके मकान पर पहुँचा । मैंने उन्हें (घर पर) न पाया; मगर हज़रत उम्मे दरदा (रज़ि॰) मिल गईं । उन्होंने पूछा कि क्या इस साल हज का इरादा है । मैंने कहा – जी हाँ! कहने लगीं कि फिर अल्लाह से हमारे लिए भलाई की दुआ करना । क्योंकि नबी (सल्ल॰) कहा करते थे कि किसी मुसलमान शख़्स की वह दुआ जो उसने अपने भाई के लिए उसकी ग़ैर हाज़िरी में की हो, (अल्लाह तआला के यहाँ) क़बूल होती है । दुआ करनेवाले के सिर के पास एक मुवक्किल

फ़रिश्ता होता है । जब भी वह अपने भाई के लिए भलाई की दुआ करता है तो उसका मुवक्किल फ़रिश्ता कहता है, "आमीन! और तुझे भी उसी की तरह मिले ।"

(मुसलिम)

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि जो ईमानवाला आदमी किसी मुसलमान के जनाज़े के साथ सवाब समझकर चलता है और जब तक कि नमाज़ न पढ़ ली जाए और दफ़्न न कर दिया जाए, उसके साथ रहता है, तो वह दो क़ीरात (एक निश्चित वज़न) सवाब लेकर लौटता है । (उनमें का) हर क़ीरात उहुद (पहाड़) के बराबर होता है, और जो आदमी जनाज़े की नमाज़ पढ़ ले, फिर इससे पहले कि उसे दफ़्न किया जाए लौट आए तो वह एक क़ीरात सवाब लेकर लौटता है ।

(बुख़ारी)

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि अल्लाह क़ियामत के दिन फ़रमाएगा कि कहाँ हैं वे लोग जो मेरी बुज़ुर्गी और बड़ाई के ख़याल से आपस में मुहब्बत करते थे । आज जब मेरे साये के सिवा और कोई साया नहीं, मैं उन्हें अपने साये में जगह दूँगा ।

(मुवत्ता)

अबू इदरीस ख़ौलानी (रह॰) बयान करते हैं कि मैं दिमिश्क़ की जामा मसजिद में दाख़िल हुआ तो मेरी नज़र एक आदमी पर पड़ी जिसके दाँत ख़ूबसूरत और चमकदार थे । लोग उसके पास बैठे हुए थे । जब उनमें किसी बात पर इख़तिलाफ़ होता तो उसकी तरफ़ रुजू करते और उसकी राय पर अमल करते । मैंने उसके बारे में मालूम किया तो मुझे बताया गया कि वह हज़रत मआज़ बिन जबल (रज़ि॰) थे । दूसरे दिन मैं सवेरे ही (मस्जिद में) जा पहुँचा । मैंने देखा कि वे मुझसे भी पहले आ चुके थे और नमाज़ पढ़ रहे थे । मैं इन्तिज़ार में बैठ गया । यहाँ तक कि उन्होंने अपनी नमाज़ ख़त्म कर ली । फिर मैं उनके सामने से उनके पास आया और उन्हें सलाम किया और कहा –

"ख़ुदा की क़सम ! मैं आपसे मुहब्बत रखता हूँ ।" उन्होंने पूछा, "क्या ख़ुदा के लिए?" मैंने जवाब दिया, "हाँ, ख़ुदा के लिए ।" उन्होंने (फिर) पूछा, "क्या ख़ुदा के लिए? " मैंने (फिर) जवाब दिया, "हाँ, ख़ुदा के लिए ।"

उन्होंने मेरी चादर का किनारा पकड़कर मुझे अपनी तरफ़ खींचा, फिर कहा –

"ख़ुशख़बरी हासिल करो, बेशक मैंने नबी (सल्ल०) को कहते सुना है कि अल्लाह तआला फ़रमाता है कि जो लोग मेरे लिए एक-दूसरे से मुहब्बत करते हैं, और मेरे लिए एक-दूसरे के पास बैठते हैं, और मेरे लिए एक-दूसरे से मिलने को जाते हैं और मेरे लिए एक-दूसरे पर माल ख़र्च करते हैं, उनसे मुहब्बत करना मेरे लिए वाजिब है।" (मुवत्ता)

हज़रत अबू ज़र (रज़ि०) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल०) ने मुझसे कहा कि नेकी में से किसी चीज़ को मामूली न समझना चाहे वह इतनी ही हो कि तू अपने भाई से कुशादा पेशानी से मिले। (मुसलिम)

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि जो हमारे छोटों पर रहम न करे और हमारे बड़ों की इज़्ज़त को न पहचाने वह हममें से नहीं है। (तिरमिज़ी)

2. हमदर्दी और आपसी मदद

हज़रत अबू मूसा (रज़ि०) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि (एक) मोमिन (दूसरे) मोमिन के लिए एक इमारत की तरह है कि उसका एक हिस्सा दूसरे हिस्से को मज़बूत करता है। (मुसलिम)

हज़रत नोमान बिन बशीर (रज़ि०) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि मोमिन एक-दूसरे से मुहब्बत करने में, और एक-दूसरे पर रहम करने में और एक-दूसरे पर मेहरबानी करने में एक जिस्म की तरह हैं, जिसका कोई हिस्सा किसी तकलीफ़ में होता है तो बाक़ी सारा जिस्म जागते रहने में और बुख़ार में हो जाने में शरीक होता है (यानी जब जिस्म के किसी एक हिस्से को कोई दुख-दर्द पहुँचता है तो सारा जिस्म जागता रहता है और बुख़ार में मुब्तिला हो जाता है।)

हज़रत अबू दरदा (रज़ि०) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि जिसने अपने भाई की इज़्ज़त को तंगी से रोका (यानी उसे तंगदस्त होकर बेइज़्ज़त न होने दिया), अल्लाह तआला क़ियामत के दिन उसके मुँह से आग को रोकेगा। (तिरमिज़ी)

हज़रत जाबिर बिन अब्दुल्लाह (रज़ि०) और हज़रत अबू तलहा बिन सहल अंसारी (रज़ि०) बयान करते हैं कि अल्लाह के नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि जो

शख़्स किसी मुसलमान को ज़लील करेगा, किसी ऐसी जगह पर कि उस (मुसलमान) की आबरू जाती रहे और इज़्ज़त घट जाए, तो अल्लाह उसे रुस्वा करेगा ऐसी जगह में जहाँ वह उसकी मदद का उम्मीदवार होगा। और जो शख़्स मदद करेगा किसी मुसलमान की किसी ऐसी जगह में जहाँ उसकी इज़्ज़त घटती हो और उसकी आबरू जा रही हो तो अल्लाह मदद करेगा उसकी ऐसी जगह में जहाँ उसकी मदद पसन्द होगी। (अबू दाऊद)

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) बयान करते हैं कि मैंने (नबी सल्ल०) से कहा कि ऐ अल्लाह के नबी! मुझे कोई ऐसी चीज़ सिखाइए जिससे मैं फ़ायदा हासिल करूँ। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया कि मुसलमानों के रास्ते से तकलीफ़ देनेवाली चीज़ को एक तरफ़ कर दिया करो। (मुसलिम)

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि एक पेड़ मुसलमानों को तकलीफ़ दिया करता था। एक आदमी आया और उसने उसे काट दिया (जिससे मुसलमान तकलीफ़ से बच गए) तो वह आदमी जन्नत में चला गया। (मुसलिम)

हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि०) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि मुसलमान, मुसलमान का भाई है। न वह उसपर ज़ुल्म करता है और न उसे दुश्मन के हवाले करता है। और जो कोई अपने भाई की ज़रूरत पूरी करने में लगा होगा तो अल्लाह तआला उसकी ज़रूरत पूरी करने में लगा होगा और जिसने किसी मुसलमान का कोई दुख दूर किया, अल्लाह तआला क़ियामत के दिन दुखों में से उसका कोई दुख दूर करेगा और जिसने किसी मुसलमान के ऐब को छुपाया तो अल्लाह तआला क़ियामत के दिन उसके ऐब को छुपाएगा। (तिरमिज़ी)

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि मुसलमान के मुसलमान पर छः हक़ हैं। पूछा गया कि ऐ अल्लाह के नबी! वे क्या हैं ? आपने कहा —

1. जब तू उसे मिले तो सलाम कर,
2. और जब वह तेरी दावत करे ते क़बूल कर,
3. और जब वह तुझसे नसीहत चाहे तो उसे नसीहत कर (या जब वह तुझसे

भलाई चाहे तो उसकी भलाई कर),

4. और जब वह छींके और 'अलहम्दुलिल्लाह' कहे तो उसे 'यरहमुकल्लाह' कह (जिसका मतलब है अल्लाह तुमपर रहम करे),
5. और जब वह बीमार हो तो उसका हाल मालूम कर, और
6. जब वह मर जाए तो उसके जनाज़े के साथ जा। (मुसलिम)

हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि०) के पास एक माँगनेवाला आया और आपसे सवाल किया। हज़रत इब्न अब्बास (रज़ि०) ने उससे फ़रमाया कि क्या तू गवाही देता है कि खुदा के सिवा कोई माबूद (पूज्य) नहीं है? उसने कहा कि जी हाँ! आपने फ़रमाया कि क्या तू गवाही देता है कि मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम अल्लाह के रसूल हैं। उसने कहा कि जी हाँ! हज़रत इब्न अब्बास (रज़ि०) ने फ़रमाया कि क्या तू रमज़ान के रोज़े रखता है? उसने कहा कि जी हाँ! (इसपर) हज़रत इब्न अब्बास (रज़ि०) बोले कि तूने सवाल किया है और सवाल करनेवाले का भी हक़ होता है। अब हमपर ज़रूरी है कि हम तेरे साथ अच्छा सुलूक करें। फिर उसे एक कपड़ा दिया और फिर फ़रमाया कि मैंने रसूल (सल्ल०) को फ़रमाते सुना है कि जिस मुसलमान ने किसी मुसलमान को कोई कपड़ा पहनाया तो जब तक उस कपड़े की कोई धज्जी भी पहननेवाले के जिस्म पर रहेगी पहनानेवाला खुदा की हिफ़ाज़त में रहेगा।

(तिरमिज़ी)

3. आपसी सुलह व मेलजोल

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि पीर (सोमवार) और जुमेरात के दिन जन्नत के दरवाज़े खोले जाते हैं और हर उस बन्दे को बख़्श दिया जाता है जिसने खुदा के साथ किसी को शरीक (शामिल) न किया हो सिवाय उस शख़्स के कि उसके और उसके (मुसलमान) भाई के बीच दुश्मनी हो। कहा जाता है कि उन दोनों को मोहलत दो यहाँ तक कि दोनों आपस में सुलह कर लें। (मुसलिम)

हज़रत अबू अय्यूब (रज़ि०) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि किसी मुसलमान के लिए जाइज़ नहीं कि अपने भाई को तीन रातों से ज़्यादा छोड़े रखे कि दोनों मिलते हैं तो एक इस तरफ़ मुँह कर लेता है और दूसरा उस तरफ़ मुँह

कर लेता है, और उन दोनों में से अच्छा वह है जो पहले सलाम करे (और इस तरह सुलह करने की शुरूआत करे)।   (बुख़ारी, मुसलिम)

अल्लाह तआला का इरशाद है —

"मोमिन तो एक-दूसरे के भाई हैं। इसलिए अपने भाइयों के बीच ताल्लुक़ात को ठीक करो।"   (क़ुरआन, 49:10)

इस फ़रमान से एक मुसलमान के लिए न सिर्फ़ यह ज़रूरी है कि दूसरे मुसलमानों के साथ सुलह और मेलजोल से रहे बल्कि अगर दूसरे मुसलमानों के ताल्लुक़ात आपस में ख़राब हो गए हों तो उनकी आपसी सुलह कराने का भी एहतिमाम करना चाहिए जैसे कि नबी (सल्ल॰) की सुन्नत है।

हज़रत सहल बिन साद (रज़ि॰) बयान करते हैं कि (क़बीला) बनी अम्र बिन औफ़ के कुछ लोगों के बीच कुछ झगड़ा था तो नबी (सल्ल॰) अपने कुछ सहाबा (रज़ि॰) के साथ उनके बीच समझौता कराने के लिए गए ......।   (बुख़ारी)

इसी तरह बुख़ारी में हज़रत आइशा (रज़ि॰) और आपके भांजे हज़रत इब्न ज़ुबैर (रज़ि॰) के बारे में एक वाक़िआ बयान हुआ है कि हज़रत आइशा (रज़ि॰) किसी बात पर उनसे नाराज़ हो गईं और मन्नत मान ली कि अब कभी उनसे बात नहीं करूँगी। जब उनकी नाराज़गी को ज़्यादा देर हो गई तो हज़रत इब्न ज़ुबैर (रज़ि॰) ने सिफ़ारिश कराई, मगर उन्होंने कहा कि खुदा की क़सम! मैं न सिफ़ारिश क़बूल करूँगी और न अपनी मन्नत तोड़ूँगी। हज़रत इब्न ज़ुबैर (रज़ि॰) बहुत परेशान थे। उन्होंने मिस्वर बिन मख़्रमा और हज़रत अब्दुर्रहमान बिन असवद (रज़ि॰) से बात की और कहा कि मैं आपको अल्लाह का वास्ता देता हूँ कि मुझे हज़रत आइशा (रज़ि॰) के पास ले चलें और कहा कि उनको जाइज़ नहीं था कि मुझसे रिश्ता तोड़ने की मन्नत मान लेतीं। हज़रत मिस्वर और हज़रत अब्दुर्रहमान (रज़ि॰) ने अपनी चादरें ओढ़ीं और इब्न ज़ुबैर (रज़ि॰) को लेकर हज़रत आइशा (रज़ि॰) के यहाँ गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने अन्दर आने की इजाज़त माँगी और यूँ कहा कि **'अस्सलामु अलैकुम व रह्मतुल्लाहि व बरकातुहु'**, क्या हम अन्दर आ जाएँ। हज़रत आइशा (रज़ि॰) ने कहा कि आ जाओ। उन्होंने कहा कि क्या हम सब आ जाएँ।

हज़रत आइशा (रज़ि०) ने जवाब दिया कि हाँ, सब के सब आ जाओ । वह नहीं जानती थीं कि उनके साथ हज़रत इब्न ज़ुबैर रज़ि०) भी हैं । इस तरह जब वे सब अन्दर गए तो हज़रत इब्न ज़ुबैर (रज़ि०) परदे के अन्दर घुँसकर ख़ाला के गले लग गए और उन्हें ख़ुदा का वास्ता देने लगे और रोने लगे । हज़रत मिस्वर और हज़रत अब्दुर्रहमान (रज़ि०) भी हज़रत आइशा रजि०) को क़समें देने लगे कि इब्न ज़ुबैर से बात कीजिए और उनकी माफ़ी को क़बूल, कीजिए और कहा कि आप जानती हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने रिश्तों को तोड़ने से मना किया है और ताकीद की है कि किसी मुसलमान के लिए जाइज़ नहीं कि अपने मुसलमान भाई को तीन रातों से ज़्यादा छोड़े रखे । और जब उन दोनों ने बहुत ज़ोर डाला तो हज़रत आइशा (रज़ि०) रोने लगीं कि मैंने तो मन्नत मानी हुई है कि इब्न ज़ुबैर (रज़ि०) से कभी नहीं बोलूँगी और मन्नत (नज़्र) का मामला बड़ा सख़्त होता है । मगर वे दोनों न माने, यहाँ तक कि हज़रत आइशा (रज़ि०) ने हज़रत ज़ुबैर (रज़ि०) से बात कर ली और आपस में सुलह हो गई और हज़रत आइशा (रज़ि०) ने अपनी मन्नत के कफ़्फ़ारे (गुनाह के बदले) में चालीस गुलाम आज़ाद किए ।

4. एक-दूसरे की इस्लाह करना

मुसलमानों की आपसी ख़ैरख़ाही का एक तक़ाज़ा यह भी है कि अगर अपना कोई भाई ग़लत रास्ते पर चल पड़ा हो तो उसे सीधे रास्ते पर लाने की कोशिश की जाए । क्योंकि जिससे इनसान को सही मानों में मुहब्बत होती है उसके बारे में उसे यह गवारा नहीं होता कि वह दुनियवी या उख़्रवी (पारलोकिक) किसी तरह के भी अज़ाब का हक़दार हो जाए ।

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि तुममें से हर कोई अपने भाई का आईना है । तो अगर वह उसमें कोई बुराई देखे तो उसे उससे दूर कर दे । (तिरमिज़ी)

कहने का मतलब यह है कि कोशिश करे कि भाई की वह बुराई दूर हो जाए और वह परहेज़गार और नेक बनकर रहे ।

हज़रत अनस (रज़ि०) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि अपने

भाई की मदद कर चाहे वह ज़ालिम हो या मज़लूम। इसपर एक शख़्स ने पूछा कि ऐ अल्लाह के रसूल! जब वह मज़लूम हो तो मैं उसकी मदद करता हूँ, मगर जब वह ज़ालिम हो तो फ़रमाइए कि मैं किस तरह उसकी मदद करूँ। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया कि तू उसे ज़ुल्म करने से रोक दे कि यही उसकी मदद है। (बुख़ारी)

5. क़ाफ़िर कहने और बनाने की मनाही

एक ख़ास बात जिसकी नबी (सल्ल०) ने मुसलमानों को हिदायत की है, वह यह है कि एक-दूसरे को क़ाफ़िर न कहें। यह बड़ी अफ़सोस और दुख की बात है कि छोटे-छोटे मसले में आपसी इख़तिलाफ़ होने की वजह से लोग बेझिझक एक-दूसरे पर काफ़िर और मुनाफ़िक़ होने का इलज़ाम लगाना शुरू कर देते हैं।

हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि०) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि जिस शख़्स ने अपने मुसलमान भाई को 'ऐ काफ़िर' कहकर पुकारा तो दोनों में से एक (ज़रूर) उसका हक़दार हो गया। (बुख़ारी)

कहने का मतलब यह है कि अगर वह शख़्स जिसे काफ़िर कहा गया है, काफ़िर न होगा तो फिर कहनेवाला कुफ़्र का हक़दार हो जाएगा।

ऐसे ही बुख़ारी की एक और रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि मोमिन पर लानत-मलामत करना उसे क़त्ल करने के बराबर है और जिसने किसी मोमिन पर काफ़िर होने का इलज़ाम लगाया तो यह (भी) उसे क़त्ल करने के बराबर है।

बुख़ारी में एक और हदीस बयान हुई है कि एक दिन नबी (सल्ल०) एक नाबीना (नेत्रहीन) सहाबी के यहाँ थे और उसी घर में मुहल्ले के बहुत-से लोग इकट्ठा थे। उनमें से किसी ने कहा कि मालिक बिन दख़शन कहाँ है। मौजूद लोगों में से कोई बोल उठा कि वह तो 'मुनाफ़िक़' है, अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल०) से मुहब्बत नहीं रखता। इसपर नबी (सल्ल०) ने बात करनेवाले को टोका और कहा कि ऐसा न कहो, क्या तुम देखते नहीं कि उसने **'ला इला-ह इल्लल्लाह'** कहा है और उससे उसका मक़सद अल्लाह की रज़ामन्दी हासिल करना है। (बुख़ारी)

6. एक-दूसरे को तकलीफ़ पहुँचाने से परहेज़

हज़रत अबू मूसा (रह०) बयान करते हैं कि सहाबा (रज़ि०) ने मालूम किया कि ऐ अल्लाह के रसूल! कौन-सा इस्लाम सबसे अच्छा (सर्वश्रेष्ठ) है। नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि (उस शख़्स का इस्लाम) जिसकी ज़बान और हाथ से मुसलमान महफ़ूज़ (सुरक्षित) हों। (बुख़ारी)

हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) बयान करते हैं कि मैंने नबी (सल्ल०) को कहते सुना कि जब दो मुसलमान अपनी तलवारों के साथ आपस में मुक़ाबला करें तो क़ातिल और मक़्तूल (जिसका क़त्ल हुआ हो) दोनों दोज़ख़ में जाएँगे। मैंने मालूम किया कि ऐ अल्लाह के रसूल! क़ातिल तो हुआ, मगर मक़्तूल (के दोज़ख़ में जाने) का क्या सबब? आप (सल्ल०) ने फ़रमाया कि वह भी तो अपने साथी को क़त्ल करने का ख़ाहिशमन्द था। (बुख़ारी)

हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया कि मुसलमान को गाली देना फ़िस्क़ (जुर्म और बड़ा गुनाह) है और उससे जंग करना कुफ़्र है। (बुख़ारी)

हज़रत अबू मूसा (रज़ि०) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया कि जिसने हमपर हथियार उठाया वह हममें से नहीं है। (बुख़ारी)

हज़रत जरीर (रज़ि०) बयान करते हैं कि हिज्जतुल विदाअ के मौक़े पर अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने मुझसे फ़रमाया कि लोगों को चुप करा दो। फिर (लोगों को मुख़ातिब करके) कहा कि मेरे बाद काफ़िर न हो जाना कि एक-दूसरे की गर्दनें मारने लगो। (बुख़ारी)

हज़रत अबू उमामा (रज़ि०) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि जिसने अपनी (झूठी) क़सम से किसी मुसलमान का हक़ मार लिया, अल्लाह उसपर जन्नत हराम कर देगा और उसके लिए दोज़ख़ वाजिब कर देगा। सहाबा (रज़ि०) ने मालूम किया कि चाहे वह हक़ थोड़ा-सा ही हो, ऐ अल्लाह के रसूल .... !

आप (सल्ल०) ने फ़रमाया कि चाहे वह पीलू की एक टहनी हो, चाहे वह पीलू की एक टहनी हो, चाहे वह पीलू की एक टहनी हो। आपने इस बात को तीन बार फ़रमाया। (मुवत्ता)

कुछ दूसरे हक़

मेहमान और मेज़बान के हक़

इनसानी ज़िन्दगी को ख़ूबसूरती और ख़ूबी के साथ गुज़ारने के लिए यह बहुत ज़रूरी है कि इनसान आपस में एक-दूसरे से मिलते-जुलते रहें। इसके लिए एक-दूसरे के घर जाना पड़ता है। ऐसे ही आम तौर पर सफ़र करने की ज़रूरत भी पड़ती रहती है और हर जगह होटलों और सराये वग़ैरा का इन्तिज़ाम नहीं होता, जहाँ मुसाफ़िर जाकर ठहर जाए। फिर यह भी हो सकता है कि मुसाफ़िर होटलों और सरायों के ख़र्च अदा करने की सकत नहीं रखता हो। इसलिए यह चीज़ इनसान के लिए बुहत ज़्यादा सहूलत की वजह बनती है कि वह कुछ देर के लिए किसी दूसरे इनसान के घर ठहर जाए जो उसके रहने और खाने-पीने का बन्दोबस्त कर दे, और इस तरह मुसाफ़िर की ज़रूरतें भी पूरी हो जाएँ और वह तकलीफ़ और परेशानी से भी बच जाए और उसपर माली बोझ भी न पड़े। इस्लाम ने इनसानी ज़िन्दगी की इन ज़रूरतों को बड़ी ख़ूबसूरती और ख़ूबी के साथ पूरा करने के लिए मेहमान और मेज़बान दोनों के हक़ क़ायम (निश्चित) कर दिए हैं। इस्लामी हुक्मों और हिदायतों के मुताबिक़ मेहमान का यह हक़ है कि —

1. मेज़बान उसके आने पर ख़ुशी का इज़हार करे,
2. जहाँ तक हो सके उसकी ख़ातिर करे, और
3. जब तक वह उसके घर में है उसकी इज़्ज़त का ख़याल रखे।

दूसरी तरफ़ मेज़बान का भी यह हक़ है कि —

1. मेहमान उसे परेशान न करे,
2. उसके पास इतना न ठहरे कि वह तंग आ जाए और
3. उसकी मेहरबानी का शुक्रिया अदा करते हुए उसके लिए भलाई की दुआ करे।

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि जो कोई अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान रखता है उसे चाहिए कि अच्छी बात कहे या (फिर) ख़मोश रहे और जो कोई अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान रखता है उसे चाहिए कि अपने पड़ोसी की इज़्ज़त करे और जो कोई अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान रखता है उसे चाहिए कि अपने मेहमानों की ख़ातिर करे।

(मुसलिम)

हज़रत अबू शुरैह अदवी (रज़ि०) बयान करते हैं कि मेरी दोनों आँखों ने अल्लाह के नबी (सल्ल०) को देखा और मेरे दोनों कानों ने सुना, जबकि आपने फ़रमाया कि जो कोई अल्लाह और आख़िरत पर ईमान रखता है उसे चाहिए कि अपने मेहमानों की (हैसियत के मुताबिक़) अच्छी तरह ख़ातिरदारी करे। लोगों ने पूछा कि अच्छी तरह की जानेवाली ख़ातिरदारी की मुद्दत कितनी है? आप (सल्ल०) ने फ़रमाया कि एक दिन और एक रात, (और फिर) फ़रमाया कि (मेहमान को) खाना खिलाना तीन दिन के लिए है और उसके बाद (फिर जो कुछ मेज़बान अपने मेहमान पर ख़र्च करे) तो वह ख़ैरात (में शुमार) है ——। (तिरमिज़ी)

सहीह मुसलिम में भी इसी तरह की एक हदीस बयान हुई है जिसके रावी (हदीस नक़ल करनेवाले) हज़रत अबू शुरैह ख़ुज़ाई (रज़ि०) हैं। इस हदीस के आख़िर में बयान हुआ है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया —

"...... किसी मुसलमान आदमी के लिए यह जाइज़ नहीं कि वह अपने भाई के यहाँ (मेहमान) ठहरा रहे, यहाँ तक कि उसे गुनहगार कर दे। सहाबा (रज़ि०) ने पूछा कि ऐ अल्लाह के रसूल! वह उसे कैसे गुनहगार करेगा? नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया : (इस तरह) कि वह उसके पास ठहरा रहे, यहाँ तक कि उसके पास कोई चीज़ न रहे जिससे वह उसकी मेहमानदारी करे।" (मुसलिम)

अबुल-अहवस (रह०) अपने बाप से रिवायत करते हैं कि उन्होंने नबी (सल्ल०) से अर्ज़ किया कि ऐ अल्लाह के रसूल! मैं किसी शख़्स के पास से गुज़रता हूँ तो वह न मेरी मेज़बानी करता है (और) न मुझे खाने-पीने को देता है, (फिर) वह (कभी) मेरे पास से गुज़रता है तो क्या मैं उसे उसका बदला दूँ? (यानी मैं भी उसकी

मेज़बानी न करूँ) । नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि नहीं (बल्कि) तू उसकी मेज़बानी कर ...... । (तिरमिज़ी)

नबीं (सल्ल॰) की तरबियत से सहाबा किराम (रज़ि॰) में मेहमान-नवाज़ी का इतना जज़्बा पैदा हो गया था कि खुद तकलीफ़ उठाकर भी मेहमानों की ख़ातिरदारी करते थे ।

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि एक शख़्स नबी (सल्ल॰) की ख़िदमत में हाज़िर हुआ और कहा कि मैं भूखा हूँ । नबी (सल्ल॰) ने अपनी मोहतरम बीवियों में से किसी की तरफ़ आदमी भेजा (ताकि इस भूखे इनसान को कुछ खिलाने का इन्तिज़ाम किया जाए) । मगर वहाँ से जवाब आया कि उस ज़ात की क़सम जिसने आप (सल्ल॰) को हक़ के साथ भेजा! मेरे पास तो पानी के सिवा कुछ नहीं । फिर आपने किसी दूसरी मोहतरम बीवी के पास आदमी भेजा मगर उन्होंने भी वैसा ही जवाब भेजा । यहाँ तक कि सब मोहतरम बीवियों ने यही बात कहला भेजी कि उस ज़ात की क़सम जिसने आप (सल्ल॰) को हक़ के साथ भेजा है! मेरे पास तो पानी के सिवा कुछ नहीं है । फिर नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि जो शख़्स आज रात इसकी मेज़बानी करेगा, उसपर अल्लाह तआला रहम फ़रमाएगा । इसपर अंसार में से एक साहब खड़े हो गए और कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! मैं (करूँगा) । फिर वे उसे साथ लेकर अपने घर पहुँचे और अपनी बीवी से पूछा कि तुम्हारे पास कुछ (खाने को) है? बीवी ने जवाब दिया कि बच्चों के खाने के सिवा और कुछ नहीं हैं । अंसारी ने फ़रमाया कि बच्चों को किसी चीज़ से बहला दो और जब मेहमान खाने पर बैठे तुम बत्ती ठीक करने के बहाने चिराग़ बुझा देना और उसपर यह ज़ाहिर करना कि मानो हम (भी) खा रहे हैं । (चुनांचे ऐसा ही किया गया ।) इस तरह वे (सब खाने तो) बैठे मगर खाया (सिर्फ़) मेहमान ने । जब सुबह हुई तो दोनों नबी (सल्ल॰) की ख़िदमत में पहुँचे तो आपने फ़रमाया कि रात तुमने अपने मेहमान से जो सुलूक किया, अल्लाह तआला उसपर बहुत ही खुश हुआ । (मुसलिम)

बीमार के हक़

बीमार चूँकि जिस्मानी तकलीफ़ों और दिमाग़ी परेशानी का शिकार होता है इसलिए इस बात का हक़दार समझा गया है कि उसके दुख को कम करने और

उसके दिल को तसल्ली देने की कोशिश की जाए। नबी (सल्ल०) की ज़िन्दगी से पता चलता है कि आप (सल्ल०) ग़ैर-मुस्लिमों और मुनाफ़िक़ों की भी इयादत करते थे। लोगों को बीमारों का हाल मालूम करने का शौक़ दिलाने के लिए यह साफ़ तौर पर फ़रमा दिया गया है कि इयादत करने से बहुत ज़्यादा अज्र व सवाब मिलता है।

हज़रत सौबान (रज़ि०) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि जब कोई मुसलमान अपने किसी मुसलमान भाई की इयादत करता है तो वह बराबर जन्नत के मेवे खाता रहता है। (तिरमिज़ी)

हज़रत अली (रज़ि०) का बयान है कि जब कोई शख़्स दिन के आख़िरी हिस्से में किसी मरीज़ की इयादत करता है तो उसके साथ सत्तर हज़ार फ़रिश्ते निकलते हैं जो सुबह होने तक उसके लिए मग़फ़िरत माँगते रहते हैं और उसके लिए जन्नत में बाग़ मुक़र्रर किया जाता है, और जो कोई दिन के शुरू हिस्से में मरीज़ की इयादत करता है तो उसके साथ (भी) सत्तर हज़ार फ़रिश्ते निकलते हैं जो शाम तक उसके लिए मग़फ़िरत की दुआ करते रहते हैं, और उसके लिए भी जन्नत में एक बाग़ मुक़र्रर किया जाता है। (अबू दाऊद)

हज़रत जाबिर बिन अब्दुल्लाह (रज़ि०) बयान करते हैं कि अल्लाह के नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि जब कोई शख़्स मरीज़ की इयादत करता है तो वह (अल्लाह तआला की) रहमत में दाख़िल हो जाता है ......। (मुवत्ता)

क़र्ज़ लेनेवाले और क़र्ज़ देनेवाले के हक़

इनसान को अपनी किसी ज़रूरत या तंगदस्ती (निधर्नता) की वजह से क़र्ज़ लेने की ज़रूरत पड़ जाती है। इस तरह दो इनसानों के बीच एक ख़ास क़िस्म का ताल्लुक़ क़ायम हो जाता है। इस्लाम में क़र्ज़ लेनेवाले और क़र्ज़ देनेवाले दोनों के हक़ क़ायम (निश्चित) कर दिए गए हैं, जिनका मक़सद यह है कि एक तरफ़ तो ज़रूरतमन्द आदमी की ज़रूरत पूरी हो जाए और दूसरी तरफ़ जिस आदमी ने ज़रूरत के वक़्त उसकी मदद की है वह भी नुक़सान में न रहे। इसलिए एक तरफ़ तो क़र्ज़ लेनेवाले को यह हिदायत की गई है कि अगर क़र्ज़दार तंगी में है और

तयशुदा वक़्त पर क़र्ज़ नहीं चुका सकता तो वह उसे कुछ और मुहलत दे दे और अगर वह अल्लाह की खुशी के लिए उसके क़र्ज़ को माफ़ कर दे तो यह और भी ज़्यादा बड़ाई और नेकी की बात होगी। दूसरी तरफ़ क़र्ज़दार को भी तकीद की गई है कि जब वह क़र्ज़ ले तो इस नीयत से ले कि उसको उसे चुकाना है, और तयशुदा वक़्त पर पूरी इमानदारी से क़र्ज़ चुकाए और बिला वजह टाल-मटोल करने से बचें, नहीं तो गुनहगार समझा जाएगा।

कुरआन में अल्लाह तआला ने तंगदस्त (निर्धन) क़र्ज़दार के साथ नरमी का हुक्म देते हुए फ़रमाया है –

> "और अगर (तुम्हारा क़र्ज़दार) तंगी में हो तो (हाथ) खुलने तक उसे मुहलत दो और जो सदक़ा कर दो (यानी क़र्ज़ माफ़ कर दो) तो यह तुम्हारे लिए ज़्यादा बेहतर है, अगर तुम समझो।" (कुरआन, 2:280)

सहीह मुसलिम में हज़रत अबुल यसर (रज़ि॰) की एक रिवायत बयान हुई है जिसमें एक जगह वे कहते हैं कि मेरी इन दोनों आँखों ने देखा, और मेरे इन दोनों कानों ने सुना और इस दिल ने याद रखा कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि जिसने किसी तंगदस्त (क़र्ज़दार) को मुहलत दी या उसका क़र्ज़ माफ़ कर दिया तो अल्लाह तआला उसे अपने साये में जगह देगा। (मुसलिम)

मुसलिम ही में एक और हदीस है जिसके रावी हज़रत हुज़ैफ़ा (रज़ि॰) हैं। वे बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि तुमसे पहलेवाले लोगों में से एक आदमी की रूह को फ़रिश्ते लेकर चले तो उससे पूछा कि क्या तूने कोई नेकी का काम किया है? वह बोला कि नहीं। फ़रिश्तों ने कहा कि याद तो करो। वह बोला कि मैं लोगों को क़र्ज़ दिया करता था और अपने नौकरों को इस बात का हुक्म दिया करता था कि तंगदस्त (और मजबूर व परेशानहाल) को मुहलत दो और मालदार पर आसानी करो। (इसपर) अल्लाह तआला ने (फ़रिश्तों से) फ़रमाया कि तुम भी इसपर आसानी करो।

ये तो वे हदीसें हैं जिनमें क़र्ज़दार के साथ अच्छा सुलूक करने की हिदायत दी गई है। दूसरी तरफ़ क़र्ज़दार को भी हिदायत दी गई है कि वे क़र्ज़ देनेवाले के हक़ों को पूरा करने में लापरवाही और सुस्ती से काम न ले।

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि मालदार (क़र्ज़दार) का (क़र्ज़ को अदा करने में) टाल-मटोल करना ज़ुल्म है ।

(बुख़ारी)

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि॰) ही की एक और रिवायत है कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि जिसने लोगों का माल (क़र्ज़) लिया और उसका इरादा वापस लौटाने का था तो अल्लाह तआला उसे वापस करवा देगा और जिसने इस इरादे से लिया कि उसे बरबाद करेगा तो अल्लाह तआला उस (क़र्ज़दार) को तबाह (बरबाद) कर देगा ।

(बुख़ारी)

एक दिन नबी (सल्ल॰) लोगों के बीच खड़े हुए और उनके सामने बयान किया कि अल्लाह की राह में जिहाद (धर्म-युद्ध) करना और अल्लाह पर ईमान लाना सबसे बेहतर अमल हैं । इसपर एक आदमी खड़ा हो गया और पूछा कि ऐ अल्लाह के रसूल! आपका क्या ख़याल है कि अगर मैं अल्लाह की राह में क़त्ल हो जाऊँ तो क्या यह मेरे गुनाहों का कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) हो जाएगा? आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि हाँ, शर्त यह है कि तुम इस हालत में अल्लाह की राह में क़त्ल हो कि तुम सब्र करनेवाले हो, नेक नीयत हो, आगे बढ़नेवाले हो और पीठ दिखानेवाले न हो । फिर नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि (अच्छा फिर कहो) तुमने क्या कहा था? उस आदमी ने (फिर) कहा कि आपका क्या ख़याल है कि अगर मैं अल्लाह की राह में क़त्ल कर दिया जाऊँ तो क्या यह मेरे गुनाहों का कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) हो जाएगा । आप (सल्ल॰) ने (फिर) फ़रमाया कि हाँ, शर्त यह है कि तुम सब्र करनेवाले हो, नेक नीयत हो, आगे बढ़नेवाले हो और पीठ दिखानेवाले न हो (अगर तुम इस तरह अल्लाह के रास्ते में जान दोगे तो तुम्हारे सारे गुनाह माफ़ हो जाएँगे) सिवाय क़र्ज़ के (कि वह उस सूरत में भी माफ़ न होगा) । यह जिबरील (अलै॰) ने मुझसे कहा है।

(तिरमिज़ी)

ज़ाहिर है कि यह सज़ा उन्हीं लोगों के लिए है जो क़र्ज़ अदा करने की कोशिश ही नहीं करते या जो क़र्ज़ अदा करने की सलाहियत रखने के बाद भी उसमें सुस्ती दिखाते हैं या बदनीयती की वजह से देना ही नहीं चाहते । रहे वे लोग जो इतने ग़रीब हैं कि क़र्ज़ अदा करने की नीयत रखने के बाद भी अदा करने की सकत नहीं रखते तो वे अल्लाह तआला के नज़दीक मजबूर समझे जाएँगे ।

मज़दूर के हक़

हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि इससे पहले कि मज़दूर का पसीना सूख जाए, उसे उसकी मज़दूरी दे दो। (इब्न माजा)

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि क़ियामत के दिन मैं तीन आदमियों का दुश्मन हूँगा, और जिसका मैं दुश्मन हूँगा उसपर मैं क़ियामत के दिन ग़ालिब आऊँगा। (एक) वह आदमी जिसने मेरा नाम लेकर वादा और इक़रार किया फिर उसे तोड़ डाला, (दूसरे) वह आदमी जिसने किसी आज़ाद आदमी को (गुलाम बनाकर) बेच डाला और उसकी क़ीमत खाई और (तीसरे) वह आदमी जिसने किसी मज़दूर को काम पर लगाया, फिर उससे काम तो पूरा लिया मगर उसको उसकी मज़दूरी न दी। (इब्न माजा)

इन हदीसों की रौशनी में मज़दूर के जो हक़ तय होते हैं वे ये हैं कि उसे उसकी मेहनत का पूरा-पूरा बदला दिया जाए और जल्द दिया जाए।

ज़िम्मी के हक़

इस्लामी राज्य में रहनेवाले ग़ैर-मुस्लिम "ज़िम्मी" कहलाते हैं, क्योंकि इस्लामी राज्य ने उनकी जान, माल और इज़्ज़त की हिफ़ाज़त का ज़िम्मा लिया हुआ होता है। यह नाम ही साफ़ बता रहा है कि इस्लाम ने ज़िम्मियों को इस बात का हक़ दिया हुआ है कि वह इस्लामी हुकूमत की छाया में सुख-शान्ति की ज़िन्दगी गुज़ारेंगे और उनपर किसी तरह की ज़ुल्म-ज़्यादती न होने पाए। उन्हें इस बात का भी पूरा हक़ है कि वे जिस धर्म को सच्चा समझते हैं, उसपर क़ायम रहें। मुसलमान दीने इस्लाम को उनके सामने पेश तो करें, मगर उन्हें इस्लाम क़बूल करने पर मजबूर नहीं करेंगे। अल्लाह तआला का फ़रमान है —

"दीन के मामले में कोई ज़ोर-ज़बरदस्ती नहीं है।" (क़ुरआन, 2:256)

नबी (सल्ल॰) ने भी ज़िम्मी पर ज़ुल्म करनेवाले को सख़्त सज़ा की ख़बर दी है। नबी (सल्ल॰) का फ़रमान है — "जिसने किसी ज़िम्मी को क़त्ल किया वह जन्नत की खुशबू भी न पाएगा, हालाँकि जन्नत की खुशबू सत्तर साल की मुसाफ़त

(फ़ासिला) से आ रही होगी ।'' (नसई)

आगे आप (सल्ल०) ने फ़रमाया कि ''ख़बरदार रहो कि जिस आदमी ने किसी ज़िम्मी पर ज़ुल्म किया या उसके हक़ में कोई कमी की या उसकी ताक़त से बढ़कर उसपर बोझ डाला या, उसकी खुशी के बिना उससे कोई चीज़ ले ली तो मैं क़ियामत के दिन (उस ज़िम्मी का हिमायती बनकर उस ज़ुल्म-ज़्यादती करनेवाले के साथ बहस करूगाँ और उस) बहस में उसपर ग़ालिब आऊँगा । (अबू दाऊद)

इसी तरह हज़रत उमर (रज़ि०) ने भी ज़िम्मियों के बारे में ताकीद फ़रमाई है । बुख़ारी में आप (रज़ि०) का एक फ़रमान बयान किया गया है —

> ''(जो कोई मेरे बाद ख़लीफ़ा बने) मैं उसे उन लोगों के बारे में वसीयत करता हूँ कि जिनका ज़िम्मा अल्लाह और अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने लिया है उनके साथ किए जानेवाले वादे-वईद को पूरा किया जाए और उनकी तरफ़ से लड़ा जाए और उन्हें इस बात की तकलीफ़ न दी जाए जो उनकी ताक़त से बाहर हो ।'' (बुख़ारी)

मुख़्तसर (संक्षेप) यह कि इस्लामी राज्य की ग़ैर-मुस्लिम जनता को इस बात का पूरा हक़ है कि वह अपने मज़हबी अक़ीदे पर क़ायम रहें, उनके साथ किसी तरह की कोई ज़्यादती न होने पाए, और उनकी जान, माल और इज़्ज़त बिलकुल महफ़ूज़ (सुरक्षित) हो ।

इनसानी बिरादरी के हक़

आख़िर में इस बात की वज़ाहत (स्पष्टीकरण) ज़रूरी है कि इस्लामी हुक्मों के मुताबिक़ किसी इनसान का सिर्फ़ इनसान होना ही इस बात के लिए काफ़ी है कि उससे हमदर्दी की जाए, उसके साथ अच्छा सुलूक किया जाए और बिना किसी वजह के उसकी जान-माल और इज़्ज़त की तरफ़ हाथ न बढ़ाया जाए । सारे ही इनसान आदम (अलै०) की औलाद हैं और इस लिहाज़ से एक-दूसरे के बहन-भाई हैं । इसलिए उन्हें एक-दूसरे का ख़ैरख़ाह होना चाहिए । इस ख़ैरख़ाही की ख़ास शकलें ये हैं —

1. अपने इनसानी भाइयों को बुराई से रोका और सीधे रास्ते की तरफ़ बुलाया

जाए, ताकि वह दुनिया में भी दिल का सुकून हासिल करें और आख़िरत में भी कभी न ख़त्म होनेवाली कामयाबी उन्हें मिले।

2. उनकी जान-माल और इज़्ज़त का पूरा-पूरा एहतिराम किया जाए और उन्हें हलाल न किया जाए, सिवाय इसके की हक़ के मुताबिक़ वैसा करना ज़रूरी हो।

3. मुमकिन हद तक उनके साथ अच्छा सुलूक बनाए रखा जाए और उनके दुख, तकलीफ़ में हमदर्दी का रवैया अपनाया जाए और मदद का हाथ बढ़ाया जाए, वग़ैरह, वग़ैरह।

हज़रत अनस और हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि मख़लूक़ (प्राणी) अल्लाह की 'इयाल' (कुम्बा) है। इसलिए उसे अपनी मख़लूक़ (जानदार) में सबसे ज़्यादा प्यारा वह है जो उसके कुम्बे से अच्छा सुलूक करे। (शोबुल-ईमान-लिल-बैहक़ी)